बाणभट्ट की कृतियों में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति

Society and Culture As Reflected in the works of Banabhatta

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

अनुसन्धाता

रामवर्ण शुक्ल

एम० ए०

शोध-निर्देशक

डॉ० जय नारायण

रीडर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

1991

प्राक्कथन

प्राक्कथन

बाणभट्ट संस्कृत वाङ्मय के उन महान् कवियों में हैं जिन्हें युग का प्रतिनिधित्व करने का श्रेय दिया जा सकता है । उनकी कृतियों में यदि एक ओर कथा के लालित्य का आकर्षण है तो दूसरी ओर वज्रसम कठोर शब्दों की टंकार का विकर्षण। ऐसी परिस्थिति में सांस्कृतिक सामग्री ढूँढना श्रम-साध्य कार्य है । बाण की कृतियाँ एक ऐसे युग का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसमें राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक क्षेत्रों में नवीन प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव होता है । मेरे विचार से बाण की कृतियाँ सांस्कृतिक इतिहास के पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। मैंने अपने शोध-प्रबन्ध में इन्हीं नई प्रवृत्तियों को खोजने का प्रयास किया है जिसमें बाण के तथ्यों को उद्घाटित किया गया है । बाण की कृतियों से तथ्यों को निकालने के लिए शोध की निर्गमनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है जिसमें प्रस्तुत साक्ष्य को अन्य समकालीन साक्ष्यों की कसौटी पर कसा जाता है । विषयगत समग्रता की दृष्टि से बाणकी पूर्ववर्ती एवं परवर्ती साहित्यिक कृतियों एवं अभिलेखों को सम्मिलित किया गया है । मेरा प्रयास है कि बाण की कृतियों से उनके समय ।सातवीं शताब्दी ईसवी। की सम्पूर्ण सांस्कृतिक झलक स्पष्ट हो सके ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के भूतपूर्व अध्यक्षों प्रो० जी०सी० पाण्डे, प्रो० जे०एस० नेगी, प्रो० बी०एन०एस० यादव, प्रो० यू०एन० राय, प्रो० एस०एन० राय तथा वर्तमान अध्यक्ष प्रो० एस०सी० भट्टाचार्य, श्री वी०डी० मिश्र, डॉ० आर०के० द्विवेदी, श्री बी०बी० मिश्र, श्री डी० मण्डल, डॉ० गीता सिंह, डॉ० ओ०पी० यादव, डॉ० आर०पी० त्रिपाठी, डॉ० जी०के० राय, डॉ० जे०एन० पाल, श्रीमती डॉ० रंजना बाजपेयी, श्री ओ०पी० श्रीवास्तव, डॉ० ए०पी० ओझा, डॉ० पुष्पा तिवारी, डॉ० सी०डी० पाण्डेय एवं डॉ० डी०पी० दुबे आदि गुरुजनों एवं अग्रजों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनके आशीर्वाद, प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन से प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का लेखन कार्य सम्पन्न हो सका । परम-श्रद्धेय गुरु जी डॉ० जय नारायण, रीडर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व

विभाग जिनके असीम स्नेह, सफल निर्देशन के फलस्वरूप शोध-प्रबन्ध पूरा हो सका, को सादर नमन करता हूँ और जिसके प्रति किसी प्रकार की कृतज्ञता ज्ञापन परम स्नेह के गौरव का विघातक होगा । मैं उन विद्वानों का कृतज्ञ हूँ जिनकी पुस्तकों का शोध लेखन के समय अनुशीलन किया ।

प्रो० सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव, अध्यक्ष संस्कृत-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं श्री शिवनाथ द्विवेदी, साहित्य-विभागाध्यक्ष, श्री रामदेशिक संस्कृत महाविद्यालय का विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ जिनकी प्रेरणा एवं मार्गदर्शन के कारण बाणभट्ट की गुत्थियों को सुलझाने में यत्किंचित सफल हुआ हूँ ।

पूज्यपाद पिता श्री रामदुलार जी शुक्ल और अग्रज श्री कृष्णकुमार जी शुक्ल एवं परिवार जनों जिनके स्नेह एवं आशीर्वाद के प्रभाव से मैं इस कार्य में सफल हो सका, के प्रति मनसः नमन करता हूँ जिसके बिना मैं स्वयं अनृण नहीं हो सकता । अग्रज डॉ० रामकिशोर शास्त्री, प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय जिनकी छत्र-छाया में रहकर प्रेरणा एवं मार्गदर्शन से जीवन में कुछ कर सकने की क्षमता प्राप्त हुई, को नमन करता हूँ जिनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन मेरी धृष्टता होगी । अग्रज तुल्य डॉ० श्री विशाल त्रिपाठी पंचकर्मचिकित्सा विभागाध्यक्ष, मूलचन्द खैराती लाल चिकित्सालय, नई दिल्ली, को नमन करता हूँ जिनके अप्रतिम स्नेह एवं प्रेरणा से शोध-प्रबन्ध पूरा करने का साहस जुटा पाया हूँ । इसके अतिरिक्त जिन अन्य श्रेष्ठ जनों एवं मित्रों से प्रेरणा एवं उत्साह मिला, उनमें श्री दयाशंकर त्रिपाठी, डॉ० योगेश चन्द्र दुबे, डा० रामसेवक दुबे, डॉ० दिनेश कुमार मिश्र, डॉ० बल बहादुर त्रिपाठी, श्री रमाकान्त तिवारी, श्री अतुल मिश्र, श्री छेदीलाल दुबे, श्री राधेरमण पाठक, श्री शिवशंकर द्विवेदी, श्री शिवाकान्त द्विवेदी, श्रीयुत् श्री निवास द्विवेदी, श्री अरुण कुमार तिवारी, श्री अनिल कुमार पाण्डेय, श्री श्याम किशोर पाण्डेय आदि को आभार प्रकट करना एवं साधुवाद देना चाहता हूँ जो समय-समय पर उत्साह वर्द्धन करते रहे ।

इण्डियन काउन्सिल ऑव हिस्टारिकल रिसर्च, नई दिल्ली ने कनिष्ठ शोध-छात्र वृत्ति देकर आर्थिक सहायता प्रदान की जिसके लिए उक्त काउन्सिल के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ ।

अन्त में, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के कर्मचारियों को साधुवाद देना चाहता हूँ, जिन्होंने समय-समय पर सहयोग देकर मेरे कार्य को सरल बना दिया । प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के विभागीय पुस्तकालय, विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय तथा गंगानाथ झा केन्द्रीय विद्यापीठ पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे पुस्तकीय सहायता प्रदान की । टंकणकर्ता श्री राम बरन यादव का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिनके अथक परिश्रम एवं सहयोग से शोध-प्रबन्ध अल्प समय में टंकित हो सका ।

मकर संक्रान्ति
विक्रम संवत् 2047.

रामवर्ण शुक्ल
[रामवर्ण शुक्ल]

विषय-सूची

भूमिका

संस्कृत वाङ्मय में बाणभट्ट गुप्तोत्तर युग के साहित्यिक क्षेत्र में उस काल का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसमें संस्कृत कवियों को प्रचुर राज्याश्रय मिला, जिससे उनके द्वारा काव्य में नई प्रवृत्तियों, उद्भावनाओं, भंगिमाओं का अपूर्व प्रयोग किया गया । गुप्तों के पश्चात् राजनैतिक केन्द्र पाटलिपुत्र नगर से हटकर कन्नौज हो गया, अतएव कला एवं साहित्य का केन्द्र भी कन्नौज की ओर खिसक गया । इन्हीं परिस्थितियों में गुप्तों का स्वर्णिम सूर्य अस्ताचल को प्राप्त हुआ और पुष्यभूति साम्राज्य का अरुणोदय हुआ । पुष्यभूति वंश के एकछत्र सम्राट् हर्ष के व्यक्तित्व ने गुप्तों की लुप्तराजलक्ष्मी और वीणापुस्तकधारिणी शारदा को वापस लौटाया, जिससे संस्कृत साहित्य का प्रखर तेज एक बार पुनः उद्भासित हो उठा, जिसका नेतृत्व बाण के सशक्त करों में था । बाणभट्ट का सम्पूर्ण जीवन कन्नौज के ही उद्यानों में पुष्पित एवं पल्लवित हुआ । यद्यपि बाण के पश्चात् संस्कृत साहित्य का विकास मन्द पड़ गया और काव्य को पाण्डित्य प्रदर्शन ने धर दबोचा । काव्य सामन्ती विलासिता के दर्पण बन गये, शनैः शनैः साहित्य आगामी शताब्दियों में ह्रास के पथ की ओर अग्रसरित होने लगा । बारहवीं शताब्दी ईसवी तक साहित्यिक विधा पतनोन्मुख हो चली, किन्तु ऐसी परिस्थिति में भी कन्नौज साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र बना रहा ।

बाणभट्ट, संस्कृत वाङ्मय के अकेले कवि हैं जिन्होंने अपने जीवन के विषय में हर्षचरित के ढाई उच्छ्वासों तथा कादम्बरी के प्रस्तावना के श्लोकों में पर्याप्त जानकारी प्रदान किया है । बाणभट्ट महाराज हर्षवर्द्धन (606-647 ईसवी) के राजकवि थे । अतएव इनका समय सातवीं शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध माना जाता है । हर्षचरित के अनुशीलन से इस बात को बल मिलता है कि हर्ष के राज्यारोहण के समय बाणभट्ट युवा थे । बाणभट्ट का जन्म शोण नद (हिरण्यवाह) के तट पर बसे प्रीतिकूट नामक ग्राम में हुआ था ।[1] प्रीतिकूट की पहचान तथा उसकी वर्तमान भौगोलिक स्थिति को निश्चित करना एक कठिन कार्य है । कतिपय विद्वान् इस स्थान का समीकरण वर्तमान पीडर से करते हैं जो सम्प्रति बिहार के शाहाबाद जिले

में विद्यमान है ।[2] परमेश्वर प्रसाद शर्मा ने च्यवनाश्रम की खोज करते समय बाण के जन्म स्थान के विषय में चर्चा की है । उनके अनुसार च्यवन ऋषि का आश्रम गया जिले में शोण नहर के आस-पास, शोण की वर्तमान धारा से पूर्व की ओर, गया से पश्चिम रफीगंज से लगभग 22.50 किमी0 उत्तर-पश्चिम में बसा हुआ है । उनका ऐसा मत है कि बाण का जन्म स्थान इसी के आस-पास कहीं रहा होगा ।[3] के0 डी0 बाजपेयी ने प्रीतिकूट की पहचान मध्य प्रदेश में की है ।[4] बाणभट्ट के जीवन के विषय में हर्षचरित तथा कादम्बरी की प्रस्तावना में उपलब्ध श्लोकों से प्रकाश पड़ता है । बाण वत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे तथा इनके एक पूर्वज का नाम कुबेर था । कुबेर कर्मकाण्डी तथा श्रुतिशास्त्रसम्पन्न ब्राह्मण थे ।[5] इनके चार पुत्र थे, अच्युत, ईशान, हर तथा पाशुपत । पाशुपत के पुत्र का नाम अर्थपति था । अर्थपति के ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें आठवाँ पुत्र चित्रभानु था । इन्हीं चित्रभानु से बाण का जन्म हुआ । बाण की माता का नाम राजदेवी मिलता है ।[6] बाण के पुत्रों की संख्या पर इन ग्रन्थों से कोई प्रकाश नहीं पड़ता है । मात्र पुलिन्द भट्ट या भूषणभट्ट का उल्लेख कादम्बरी को पूरा करने के सन्दर्भ में मिलता है जिसकी पुष्टि धनपाल की तिलकमंजरी से भी होती है ।[7] बाण की कृतियों से उनकी पत्नी आदि के विषय में कोई सूचना नहीं प्राप्त होती है । हर्षचरित के अनुसार बाण की माता का देहावसान उनके बचपन में ही हो गया था । चौदह वर्ष की अल्पा-वस्था में उनके पिता का भी स्वर्गवास हो गया था । इसके बाद बाण अपने उच्छृंखल जीवन की एक झलक विस्तार से हर्षचरित में प्रस्तुत करते हैं । बाण ने अपने मित्रों की सम्पूर्ण सूची दे दी है जिनके साथ बाण ने अनेक क्षेत्रों का पर्यटन किया था । मित्रों की इस सूची में 44 लोगों के नाम हैं जिनमें भाषा कवि ईशान, विद्वान् वारबाण, प्राकृत कवि वायुविकार के साथ-साथ कतिपय धूर्त नर्तक या नट, जादूगर, स्वर्णकार, लेखक, कथक, साधु-संन्यासी, वैद्य और मन्त्र साधक, परिचारक आदि थे ।[8] पर्यटन के दौरान बाण ने अनेक राजदरबारों एवं गुरुकुलों में गए तथा विभिन्न संस्कृतियों का प्रत्यक्ष अनुभव किया । तत्पश्चात् लौटकर विद्याध्ययन किया और कुलोचित स्थिति को प्राप्त किया ।

बाणभट्ट की कृतियों में 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' के नाम उल्लेखनीय हैं। 'चण्डीशतक' और 'पार्वतीपरिणय' की रचना का श्रेय भी बाणभट्ट को दिया जाता है। चण्डीशतक को अधिकांश विद्वान् बाणकृत मानते हैं। इसमें महिषासुर मर्दिनी का स्तवन 102 श्लोकों में किया गया है। 'पार्वती-परिणय' की भाषा-शैली के आधार पर विद्वानों में मतभेद है। वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस विषय पर प्रकाश डाला है। पार्वती-परिणय नामक नाटक कादम्बरीकार बाण की रचना नहीं है, उसके रचनाकार वामनभट्टबाण नामक एक तैलंगदेशीय वत्सगोत्रीय महाकवि थे जो चौदहवीं शताब्दी में हुए थे। वे दक्षिण के राजा वेमभूप (वीर नारायण) के राजकवि थे जिन्होंने वीरनारायण चरित काव्य भी लिखा।[9] इसी मत का समर्थन रमापति मिश्र ने भी पार्वती-परिणय की हिन्दी टीका करते समय 'रचना वैशिष्ट्य' नामक शीर्षक में किया है।[10]

बाणभट्ट ने अपनी दो कृतियों में से हर्षचरित को ऐतिहासिक तथ्यों से समन्वित होने के कारण 'आख्यायिका' तथा कादम्बरी को कल्पना-प्रसूत होने से 'कथा' की संज्ञा प्रदान की है। आख्यायिका तथा कथा के लक्षणों पर विद्वानों में मतभेद है। भामह (लगभग 700 ई0) के अनुसार आख्यायिका की कथावस्तु वास्तविक होती है। उसका वक्ता स्वयं नायक होता है, आख्यायिका उच्छ्वासों में विभक्त होती है। प्रत्येक उच्छ्वास के आदि या अन्त में भावी घटनाओं को सूचित करने वाले पद्य होते हैं जो वक्त्र या अपरवक्त्र छंद में निबद्ध होते हैं। कथा-वस्तु में कवि कल्पना का समावेश हो सकता है, साथ ही कन्याहरण, युद्ध, वियोग तथा अन्त नायक की विजय से सम्बद्ध होता है। आख्यायिका संस्कृत में निबद्ध होती है।

कथा पूर्णतः कविकल्पना-प्रसूत होती है उसका वक्ता नायक से इतर कोई व्यक्ति होता है। कथा में उच्छ्वास तथा वक्त्र या अपरवक्त्र छन्दों की कोई विनियोजना नहीं होती है। कथा संस्कृत या अपभ्रंश किसी भाषा में निबद्ध की

जा सकती है ।[11] इस लक्षण से ऐसा प्रतीत होता है कि शायद भामह के पूर्व भी आख्यायिकाओं की रचना की परम्परा थी जो बाण की रचना शैली से भिन्न रही होगी । इसके विपरीत दण्डी ने आख्यायिका तथा कथा में कोई विशेष भेद नहीं माना है । उनके अनुसार - कथा वस्तु का वक्ता नायक हो या अन्य कोई, उच्छ्वासों में विभक्त हो या न हो, उसमें वक्त्र या अपरवक्त्र छन्द योजना हो या न हो, इससे कोई मौलिक अन्तर नहीं होता है । वास्तव में आख्यायिका तथा कथा दोनों एक ही गद्यशैली के अन्तर्गत आती हैं, वे अलग-अलग प्रकार नहीं हैं ।[12] इससे इस बात की पुष्टि होती है कि दण्डी के समय तक आते-आते आख्यायिका तथा कथा के रूढ़िगत भेद समाप्त हो चुके थे । इसके अलावा रुद्रट[13] के लक्षण से भी इस बात की पुष्टि हो जाती है कि आख्यायिका तथा कथा का मौलिक भेद एक ही है जो कथावस्तु की प्रकृति से सम्बद्ध है । इस प्रकार निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि आख्यायिका तथ्यपूर्ण कथा को लेकर चलती है जिसमें ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक कथा या आत्मकथा प्राप्त होती है । जबकि कथा कल्पित वस्तु को आधार बनाकर आगे बढ़ती है । हर्षचरित को आख्यायिका के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा जा सकता है कि उसका विभाग उच्छ्वासों में किया गया है । उसमें यत्र तत्र पद्य भी पाये जाते हैं यद्यपि भामह के इस नियम का कि आख्यायिका में प्रत्येक उच्छ्वास के आरम्भ में उसके विषय को सूचित करने वाले वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों में पद्य होने चाहिए, बाण द्वारा पालन नहीं किया गया है । हर्षचरित में प्रथम उच्छ्वास में कविता पर एक अवतरणिका दी हुई है, दूसरों में दो-दो पद्य दिये हुए हैं, परन्तु वे या तो दो आर्याएं हैं या एक श्लोक और एक आर्या । उच्छ्वासों के मध्य में देखने पर प्रथम उच्छ्वास में एक अपरवक्त्र, द्वितीय में तीन पद्य वसन्ततिलक, शार्दूलविक्रीडित और अपरवक्त्र, तृतीय में आर्या और स्रग्धरा छन्दों के दो-दो पद्य, चतुर्थ उच्छ्वास में दो पद्य वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों के और एक आर्या प्रस्तुत की गई है । पंचम् उच्छ्वास में एक श्लोक और एक अपरवक्त्र, छठवें में एक आर्या प्रयुक्त हुई है । अन्तिम दो उच्छ्वासों के मध्य कोई पद्य नहीं आता है ।[14] इसके अतिरिक्त हर्षचरित का वक्ता स्वयं नायक हर्ष न होकर, कम से कम उपनायक बाण है

जिसका इतिहास ग्रन्थ के ढाई उच्छ्वासों में दिया गया है । इसके विपरीत कादम्बरी पद्यात्मक भूमिका के साथ गद्यात्मक कथा है जिसमें आख्यायिका के विशेष लक्षणों का अभाव प्रतीत होता है । वस्तुतः इसका जटिल कथा विन्यास वैशिष्ट्य से युक्त है । इसके बड़ आख्यानों में पात्रों द्वारा प्रयुक्त दूसरे आख्यानों को अन्तर्निविष्ट कर दिया गया है । इस तरह कतिपय लक्षणों के अभाव में भी हर्षचरित को आख्यायिका तथा कादम्बरी को कथा के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है ।

बाणभट्ट का हर्षचरित आठ उच्छ्वासों में विभक्त है । इसके प्रारम्भ में 23 श्लोकों की प्रस्तावना है । इसमें बाण ने कतिपय प्राचीन कवियों का उल्लेख किया है जिसमें सर्वप्रथम व्यास का नाम आता है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार कालिदास के आदर्श महर्षि वाल्मीकि थे उसी प्रकार महर्षि व्यास को इन्होंने अपना आदर्श माना था । बाण ने व्यास का उल्लेख करते हुए कहा है कि इन्होंने अपनी वाणी से भारत नामक ग्रन्थ की रचना करके उसी प्रकार पवित्र किया जैसे सरस्वती नदी भारतवर्ष को ।[15] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सातवीं शताब्दी ईसवी तक देश की संज्ञा भारत वर्ष प्रयुक्त होने लगी थी ।[16] यद्यपि पुराणों में 'भारतवर्ष' शब्द का प्रयोग पर्याप्त स्थानों पर देश के लिए प्रयुक्त किया गया है । विष्णु पुराण में भारतवर्ष को उत्तर में हिमालय और दक्षिण में समुद्र है, की सीमा में बाधा गया है ।[17] सातवीं शताब्दी ईसवी के आस-पास के ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी हिमालय से समुद्र पर्यन्त पुण्य क्षेत्र को 'भारतवर्ष' कहा गया है ।[18] बाणभट्ट ने व्यास के बाद सुबन्धुकृत वासवदत्ता का उल्लेख किया है, जिसकी शैली से बाण अत्यधिक प्रभावित लगते हैं । इसके अलावा भट्टारहरिश्चन्द्र से लेकर कालिदास तक को बाण ने अपनी कृति में सम्मान दिया है ।[19] पूर्ववर्ती कवियों और लेखकों को नमस्कार करने की यह पद्धति गद्य कथाओं का आवश्यक अंग मानी जाती थी । बाण से पूर्व सुबन्धु ने भी इस पद्धति की परम्परा का निर्वाह किया है किंतु

बाण के परवर्ती लेखकों में इस प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है जैसे धनपाल की तिलक मंजरी में । प्राकृत तथा अपभ्रंश के प्राय: सभी कवियों ने इस परम्परा का अनुसरण किया, जैसे महापुराण की उत्थानिका में पुष्पदन्त ने लगभग बाईस पूर्वकवियों के नामों का उल्लेख किया है ।[20]

सातवीं शताब्दी ईसवी में साहित्यिक क्षेत्र में कवियों के द्वारा पूर्ववर्ती क कवियों के भाव-ग्रहण का संक्रमण तेजी से फैल रहा था जिसका संकेत बाणभट्ट ने हर्षचरित में किया है । बाणभट्ट शब्दार्थ-हरण के प्रकारों की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि सहृदय जनों के मध्य अप्रसिद्ध कवि दूसरे कवि के वर्णों को बदल देने से एवं निर्माण के चिह्नों को छिपाने से चोर समझा जाता है, क्योंकि चोर भी लोगों के बीच मुख के अकस्मात् फीके पड़ जाने से और हाथों में लगे बेड़ी के दाग को छिपाने से पहचान लिया जाता है ।[21] विक्रमांकदेवचरित के रचनाकार बिल्हण (ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी का उत्तरार्द्ध) ने अपने ग्रन्थ में कवियों को 'काव्यरूपी अमृत की चोरी करने वाले काव्यरूपी धन के चोरों से सावधान किया है ।[22] बिल्हण के कथन से काव्य में शब्दार्थ हरण की प्रवृत्ति होने का एक अन्य साक्ष्य प्रस्तुत होता है किन्तु इस शब्दार्थ हरणत्व का संकेत बाण के द्वारा किया जाना यह सिद्ध करता है कि बाण के पूर्ववर्ती कवियों में इस प्रवृत्ति का बीजारोपण हो चुका था किन्तु बाण के समय तक संभवत: यह संक्रमण तेजी पकड़ रहा था । बाण के परवर्ती वामन[23] तथा आनन्दवर्धन[24] ने काव्य में शब्दार्थ हरण का उल्लेख अपने-अपने ग्रन्थों में किया है किन्तु इसका विस्तार से वर्णन राजशेखर की काव्यमीमांसा में प्राप्त होता है । राजशेखर का समय नवीं शताब्दी ईसवी का मध्य भाग माना जाता है । राजशेखर की अनेक कृतियों में से अलंकारशास्त्र के ग्रन्थ 'काव्यमीमांसा' का अपना प्रमुख स्थान है । यह ग्रन्थ अठारह अध्यायों में विभक्त है जिसमें ग्यारहवें, बारहवें तथा तेरहवें अध्यायों में लेखक ने शब्दार्थ हरण पर विस्तृत प्रकाश डाला है । भाव ग्रहण के सम्बन्ध में प्राचीन आचार्य एकमत नहीं थे । प्रमुख दो विचार

धाराएँ मिलती हैं। एक विचारधारा का प्रतिनिधित्व आनन्दवर्धन करते हैं और दूसरी का राजशेखर। आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में कहा है कि कवि को अपने पूर्ववर्ती कवि से निःसंकोच रूप से भाव ग्रहण कर लेना चाहिए।[25] उनका मत है कि रचनाओं की समानता में कवि की संवादिनी बुद्धि भी कारण होती है अर्थात् समान वर्णन कवि की प्रतिभा से भी हो जाते हैं।[26] शब्दार्थ ग्रहण करने पर कवि निंदा का पात्र नहीं होता है।[27]

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में आनन्दवर्धन के उक्त मत का विरोध किया है। उन्होंने दूसरे कवि के द्वारा प्रयुक्त शब्दार्थ के उपनिबन्धन मात्र को हरण की संज्ञा प्रदान की है।[28] राजशेखर ने अपने ग्रन्थ में शब्दार्थ हरण के पाँच प्रकार इस तरह से बतलाये हैं : पद, पाद, अर्द्धवृत्त तथा प्रबन्ध।[29] इन्होंने काव्यमीमांसा में स्पष्ट कहा है कि अन्य चोरियाँ तो समय बीतने पर विस्मृत हो जाती हैं किन्तु वाणी की चोरी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती है।[30] शब्दार्थहरण की इस परम्परा की छाया ऐतिहासिक अभिलेखों तथा प्रशस्तियों पर भी पड़ी। वत्स भट्टि ने मन्दसौर अभिलेख में केवल वर्णन की शैली ही कालिदास से नहीं ग्रहण किया अपितु उनके एक श्लोक[31] की आधार-शिला ही मेघदूत का 65वाँ श्लोक माना जाता है।[32] इसी प्रकार चन्देल वंश के अजयगढ़ अभिलेख का एक श्लोक[33] कालिदास के रघुवंश के एक पद्य की याद दिलाता है।[34] इस प्रकार इन तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि शब्दार्थ हरण की परम्परा संस्कृत साहित्य में संक्रमण रोग की भाँति दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी, जिससे बचने के लिए बाण जैसे लेखकों ने समय-समय पर सचेत किया।

इस प्रकार बाण साहित्यिक क्षेत्र में उन कवियों को हेय दृष्टि से देखते थे जो राग-द्वेष के कारण मनमानी बातें कहते थे। बाण के अनुसार वाचाल एवं कामकारी लोग ही कुकवि हो जाते हैं।[35] वस्तुतः नई वस्तु का सृजन करने वाला

ही कवि कहलाने योग्य होता है । इस प्रकार के कवि को बाण 'उत्पादक' की संज्ञा प्रदान करते हैं ।[36] पूर्ववर्ती कवियों के वर्णों को बदलकर उनके स्थान पर नये वर्णों को जोड़कर कविता करने वाले कवियों को बाण अनादर की दृष्टि से देखते हैं । बाण हर्षचरित में प्राचीन स्वभावोक्ति शैली के स्थान पर नये वर्णों को जोड़ कर कविता करने वाले कवियों को बाण अनादर की दृष्टि से देखते हैं । बाण हर्षचरित में प्राचीन स्वभावोक्ति शैली के स्थान पर काव्य के पाँच शैली से युक्त लक्षणों को निर्दिष्ट किया है जिसमें विषय की नवीनता, सुन्दर प्रतीत होने वाली स्वभावोक्ति, अक्लिष्ट श्लेष का प्रयोग, स्फुट रस तथा भारी भरकम शब्दों की योजना ।[37] बाण का कथन है कि सच्चे अर्थों में वही काव्य कहलाने का अधिकारी है जिनमें इन पाँच बातों का समावेश होता है । बाण ने इन बातों का हमेशा ध्यान अपने काव्यों में दिया है जिससे बाण की मौलिकता का संकेत प्राप्त होता है । यद्यपि कादम्बरी का मूल विद्वान् बृहत्कथा में ढूंढते हैं । संभव है कि बाण ने कथा की मूल घटना बृहत्कथा से ग्रहण की हो किन्तु बाण ने अपनी प्रतिभा से उसे सर्वथा नवीन एवं मौलिक रूप प्रदान किया जिसका संकेत कादम्बरी के बीसवें एवं अन्तिम श्लोक में किया गया है जिसमें कादम्बरी को वासवदत्ता और बृहत्कथा को मात करने वाली अतिद्वयी कथा कहा गया है ।[38] हर्षचरित के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि बाण ने अपने भाइयों के आग्रह पर हर्षचरित की रचना की जो मूलतः ऐतिहासिक पुरुष के चरित को लेकर निर्माण की गयी । बाण के पूर्ववर्ती कवियों में अश्वघोष ही ऐसे कवि थे जिन्होंने बुद्धचरित की रचना करके चरित काव्यों की परम्परा की आधारशिला रखी । किन्तु अश्वघोष ने पद्यात्मक रूप में लिखकर काव्य का स्वरूप प्रदान किया परन्तु बाण ने गद्य का सहारा लेकर आख्यायिका के रूप में हर्षचरित का प्रणयन किया जो संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य था । बाण के बाद चरित काव्यों की परम्परा सी चल पड़ी जो अविच्छिन्न रूप से दीर्घ काल तक चलती रही । इस प्रकार काव्य के स्वरूप, शैली तथा नवीन परम्पराओं के साथ हर्षचरित का प्रणयन बाण के अपने मौलिक कृतित्व का बोध कराता है ।

बाण के कृतित्व की जो सबसे बड़ी कमी दृष्टिगोचर होती है वह उनके ग्रन्थों की अपूर्णता है । हर्षचरित एवं कादम्बरी दोनों रचनाएँ अपूर्ण हैं जिसमें कादम्बरी को बाण के पुत्र पुलिन्दभट्ट या भूषणभट्ट ने पूरा किया । कादम्बरी के उत्तरभाग के प्रारम्भ में ही भूषणभट्ट लिखते हैं कि ग्रन्थ की अपूर्णता के कारण सत्पुरुषों को होने वाले कष्ट के कारण ही इन्होंने इसको पूरा किया ।[39] हर्ष-चरित के अपूर्णता के विषय में विद्वान् एकमत नहीं हैं । बी0एस0 पाठक का मानना है कि बाण का मुख्य लक्ष्य (फलावाप्ति) हर्ष के द्वारा राज्यश्री की प्राप्ति ही था ।[40] इसके विपरीत विशुद्धानन्द पाठक का विचार है कि संभवतः बाणभट्ट का देहान्त हो गया हो अथवा किसी तात्कालिक घटना के प्रस्तुतीकरण की अनिच्छा के कारण इसे यहीं समाप्त कर दिया हो ।[41] यह संभावना भी व्यक्त की जा सकती है कि हर्ष के द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकार करने से सनातन धर्मी बाण नाराज हो गया हो और ग्रन्थ का प्रणयन समाप्त कर दिया हो । विशुद्धानन्द पाठक की यह कल्पना कि बाण काल कवलित हो गये, सटीक नहीं प्रतीत होती है क्योंकि अधि-कांश लोग यह मानते हैं कि बाण की अन्तिम रचना कादम्बरी है जिसको बाण पूरा नहीं कर सके । इस सम्बन्ध में कीथ का विचार है कि दोनों ग्रन्थों में से कौन पहले लिखा गया यह नितान्त अस्पष्ट है । यद्यपि हर्षचरित के पूर्वकृतित्व के संबंध में बहुत कुछ कहा जा सकता है किन्तु कीथ का मानना है कि बाण के जीवन काल में दोनों ग्रन्थों में पर्याप्त परिष्कार किया गया था ।[42] कीथ ने हर्षचरित का रचना काल हर्ष के शासन के उत्तरार्द्ध में माना है ।[43] ऐसी परिस्थिति इस ग्रन्थ की अपूर्णता का पुष्ट प्रमाण नहीं प्राप्त होता है । यदि इस तथ्य को ही मान लिया जाय कि ग्रन्थ का प्रणयन शासन के उत्तरार्द्धकाल में हुआ तो हर्ष के काल की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन बाणभट्ट ने क्यों उपेक्षित कर दिया ? क्या यह संभव नहीं हो सकता कि बाण हर्ष की दिग्विजय के समय जीवित रहे हों ? जहाँ तक अनिच्छा का प्रश्न है, संभव है कोई ऐसी घटना हर्ष से नहीं जुड़ी है जो बाण को अभीष्ट न रही हो । जहाँ तक हर्ष के द्वारा बौद्ध धर्म के ग्रहण करने का प्रश्न

है, संभव है कोई ऐसी घटना हर्ष से नहीं जुड़ी है जो बाण को अभीष्ट न रही हो । जहाँ तक हर्ष के द्वारा बौद्ध धर्म के ग्रहण करने का प्रश्न है इसके विषय में निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि बाण ने जिस प्रकार विभिन्न सम्प्रदायों के साथ बौद्ध धर्म का वर्णन हर्षचरित में किया है । उससे बाण के अप्रसन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता । कीथ महोदय का भी मानना है कि बाण स्पष्टतया साम्प्रदायिक पक्षपात से दूर थे, वे बौद्धों और विभिन्न प्रकार के हिन्दू साम्प्रदायों के परस्पर सद्भावना पुरस्कर रहने के सम्बन्ध में पुष्कल और विस्तृत प्रमाण उपस्थित करते हैं ।[44] संभवतः हर्ष-पुलकेशी युद्ध में हर्ष की असफलता को इसका कारण माना जा सकता है । जिसकी तिथि विद्वान् 630-634 ईसवी के बीच कहीं स्वीकार करते हैं ।[45] संभव है कि बाण उस समय तक न रहे हों । काणे का विचार है कि बाण अपने भाइयों से हर्ष का आंशिक चरित सुनाने का संकल्प किया था, वे सम्पूर्ण जीवन चरित एवं उपलब्धि-यों के पक्षधर नहीं थे । बाण ने स्वयं हर्ष के सम्पूर्ण जीवन चरित को दर्शाने में अपनी असमर्थता जताई है ।[46]

बाणभट्ट हर्षचरित का प्रारम्भ विशुद्ध पौराणिक शैली में करते हैं । बाण स्वयं अपने वंश का उद्गम अनुश्रुत परम्परा के आधार पर ब्रह्मा से मानते हैं । इसी लिए हर्षचरित को विद्वान् विशुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं मानते हैं । यह सच है कि हर्षचरित का नायक कवि का समकालीन आश्रयदाता सम्राट् है अतएव बाण ने कथा निर्वाह में महाकाव्य की शैली पूरी तरह से अपनायी है । सम्राट् हर्ष को महाकाव्य के नायकत्व की दृष्टि से देखा गया है । हर्षचरित में ऐतिहासिक सूत्रों और वास्त-विक तथ्यों का निर्वाह है किन्तु इनका प्रयोग एक कवि के द्वारा किया गया है न कि इतिहासकार के द्वारा, अतएव कवि की दृष्टि में आवश्यक होने पर प्राकृतिक तथा महाकाव्यात्मक शैली का प्रयोग नितान्त असंदिग्ध है । यद्यपि हर्ष के ऐति-हासिक व्यक्तित्व से सम्बद्ध होने से हर्षचरित को ऐतिहासिक कहा जा सकता है किन्तु इसमें बाण ने तथ्य तथा कल्पना का सम्मिश्रण कर दिया है । हर्षचरित में

यत्र-तत्र लोक-कथात्मक रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है । ऐतिहासिक ग्रन्थों में इस प्रकार की अलौकिक काल्पनिक कथाओं का समावेश ग्रन्थ को कल्पना का क्षेत्र बनाकर अनैतिहासिक रूप प्रदान कर देता है । हर्षचरित को प्रमुख रूप से काव्य का स्वरूप प्रदान करने में बाणभट्ट की शैली ने भी अहम भूमिका निभाई है । ऐसा प्रतीत होता है कि बाण का मुख्य उद्देश्य कल्पनात्मक ताने-बाने में हर्ष का जीवन वृत्तान्त बुनना था । न कि उनके यथार्थ जीवन की झलक देना । इसके अतिरिक्त हर्षचरित की ऐतिहासिकता पर सन्देह कतिपय अन्य विद्वानों ने भी किया है । ए0बी0 कीथ महोदय का कहना है कि ऐतिहासिक दृष्टि से हर्षचरित का मूल्य बहुत कम है । इसमें काल-क्रम दुर्बल और अव्यवस्थित है ।[47] सुधाकर चट्टोपाध्याय का तर्क है कि बाण ने इस ग्रन्थ की रचना स्मृति के आधार पर किया था । अतएव इसे पूर्णतः प्रामाणिक नहीं माना जाना चाहिए ।[48]

इन विद्वानों के विपरीत कतिपय विद्वान् हर्षचरित को एक ऐतिहासिक कृति सिद्ध करने का प्रयास करते हैं । कॉवेल एवं टॉमस के अनुसार बाण मात्र संस्कृत वाङ्-मय के विद्वान् ही नहीं थे अपितु बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे । वास्तविक घट-नाओं के परिप्रेक्ष्य में बाण ने आख्यान को नया रूप देने का प्रयास किया है । इसमें राजनीतिक घटनाओं के साथ तत्कालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति का वैसे ही बेजोड़ चित्रण किया गया है जैसे एरियन और प्लूटार्क के वर्णनों में सिकन्दर के समय का ।[49] यू0एन0 घोषाल का मत है कि हर्षचरित अपनी सभी सीमाओं के साथ वाङ्मय के किसी भी शासकीय एवं राजवंशीय इतिवृत्त की तुलना में किसी युग विशेष के जन-जीवन एवं रीति-रिवाजों का अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण एवं स्पष्ट विवरण प्रस्तुत करता है ।[50] डी0देवहूति जिन्होंने हर्ष पर विशेष अध्ययन किया है, के अनुसार आश्रयदाता की प्रशंसा एवं अलंकृत शैली में निबद्ध होने के बाद भी हर्षचरित एक ऐति-हासिक रचना है, कतिपय अंशों, जिसमें कवि ने काव्यगत औदार्य का परिचय दिया है, को छोड़कर शेष का हर्षकालीन इतिहास निर्माण में महत्वपूर्ण साक्ष्य के रूप में

उपयोग किया जा सकता है ।[51] इन विद्वानों के अलावा पी0वी0 काणे ने भी हर्ष-चरित की ऐतिहासिकता का जोरदार समर्थन करते हुए लिखा है कि प्राचीन भारतीय इतिहासकारों के हेतु हर्षचरित का विशेष महत्व है । इसमें प्राचीन भारतीय समाज, सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं, लोक रिवाजों, सैन्य-संगठनों, शिविर नगर-जीवन तथा औषधि विज्ञान, कला, शिल्प के विषय में विस्तृत सूचनाएं प्राप्त होती है ।[52]

इस प्रकार बाण हर्षचरित का प्रणयन करके संस्कृत साहित्य के न केवल प्रथम इतिहासकार के रूप में उभरे अपितु आत्मकथा लेखक के रूप में भी ख्याति अर्जित की हर्षचरित के प्रारम्भिक ढाई उच्छ्वासों में बाणभट्ट ने अपनी वंश-परम्परा का विधिवत् उल्लेख किया है किन्तु कादम्बरी के प्रस्तावना श्लोकों में जिस वंश परम्परा का उल्लेख है उसमें बाण की चार पीढ़ियों का उल्लेख आता है जबकि हर्षचरित में कुबेर से लेकर बाण तक पाँच पीढ़ियों का उल्लेख है । इस सन्दर्भ में विद्वान् हर्षचरित की वंश परम्परा को ही प्रामाणिक मानते हैं । संभव है कि कादम्बरी में भूलवश यह गलती हो गयी हो । बाण के द्वारा इस प्रकार वंश परम्परा का उल्लेख करके पूर्ववर्ती कवियों की उस परम्परा का विच्छेदन किया गया जिसके अंतर्गत पूर्ववर्ती कवि अपने ग्रन्थों में परिचय देने से कतराते थे । बाण इस दृष्टि से अपवाद स्वरूप हैं।

बाणभट्ट संस्कृत वाङ्मय के सर्वश्रेष्ठ गद्य लेखक माने जाते हैं । बाण ने स्वयं अपनी कृतियों में गद्य-शैली की ओर संकेत किया है । हर्षचरित में चार प्रकार की गद्य-शैलियों का उल्लेख बाण के द्वारा किया है जिसमें दीर्घसमासवाली शैली का प्राचीन नाम उत्कलिका, छोटे-छोटे समासों से युक्त बिखरी हुई शैली को चूर्णक, समास रहित शैली को आविद्ध तथा बीच-बीच में श्लोकों का पुट देकर गद्य लेखन की शैली को वृत्तगन्धि कहा गया है । बाण के गद्य लेखन में उत्कलिका, चूर्णक तथा यत्र तत्र आविद्ध शैली का प्रयोग किया गया है । वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में बाण

चतुर शिल्पी की भाँति इन शैलियों को अदल-बदल कर इस प्रकार काव्य में सजाते हैं कि वर्णन बोझिल बनकर पाठक के मन को आक्रान्त न कर दे ।'[53] बाण की कृति में वृत्तगन्धि शैली का प्रयोग अनुपलब्ध है । बड़े-बड़े वर्णनों में जिनमें प्रचण्ड गर्मी का वर्णन, वन को जलाती दावाग्नि, विन्ध्याटवी वर्णन आदि में उत्कलिका शैली का उपयोग बाण ने किया है । कभी-कभी एक ही वर्णन में उत्कलिका शैली से प्रारम्भ करके उसका अन्त समास रहित आविद्ध शैली में करते हैं जिसका अनुपम उदाहरण हर्षचरित में युवक दधीचि का वर्णन है ।[54]

बाणभट्ट ने अपनी कृतियों - विशेषकर हर्षचरित में कतिपय कवियों के नामों का उल्लेख किया है जिनकी शैली से वे प्रभावित थे । इनमें भट्टारहरिश्चन्द्र का नाम लिया जा सकता है । उनके पदलालित्य और सुघटित रचना शैली को बाण आदर्शात्मक मानते हैं ।[55] इस प्रकार बाण निश्चय ही विशद चरित्रचित्रण, वर्णन की प्राज्य प्रेशलता, भाषा के अतुल वैभव और मानवहृदय के निभृत भावों के यथार्थ अंकन में अद्वितीय रहे । उनके गद्य में शब्द और अर्थ का अप्रतिम सामंजस्य देखने को मिलता है । उनकी काव्य शैली पांचाली है जिसमें आवश्यकतानुसार कठिन तथा सरल दोनों ही प्रकार के पद-विन्यास का चमत्कार मिल जाता है । कादम्बरी में बाण कथात्मक शैली की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि अभिनव वधू की भाँति कथा होती है, जहाँ तक कलापूर्ण वचनों के विलास की कोमलता का प्रश्न है और हृदय में राग उत्पन्न करने की वृत्ति है । कथा से काव्यरस तथा वधू से लोक-रस की निष्पत्ति होती है ।[56] बाण आगे कहते हैं कि सरलता से अर्थ देने वाला दीपक और उपमालंकारों से युक्त अपूर्व पदार्थों से बनाई हुई और श्लेषालंकार के कारण दुर्बोध मनोहर कथा देदीप्यमान दीपक के समान अभिनव वस्तु के ग्रहण करने में समर्थ, चंपा के फूलों की कलिकाओं से गूँथी हुई चमेली के फूलों से युक्त और आपस में सघन होकर मिली हुई महामाला के समान किसी व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर लेती ।[57] इस प्रकार बाण की रचनाओं में शैलीगत विशेषताओं का संकेत

मिलता है । यह सत्य है कि बाण बड़े-बड़े वाक्यों की रचना में सिद्ध हस्त हैं जिनके कारण कतिपय विद्वान् इनकी आलोचना भी करते हैं । किन्तु बाण की रचना में लम्बे समस्त पदों की छटा स्वभावतः उस युग की देन है । इसे भले हम आज न चाहते हों पर इसके कारण बाण की रचना में हीनता नहीं आती, भले सार्वकालिकता न आती हो । आज बाण की रचना को अधिक समस्त होने के कारण कठिन और अरुचि कर मानने वालों की संख्या अधिक इसलिए है कि ठोस संस्कृत का ज्ञान रखने वालों का अभाव सा होता जा रहा है ।[59] प्रत्येक युग की भाषात्मक रीति वेशभूषात्मक रीति के समान कुछ विशेषताएं लिए हुए होती हैं जो उस युग के बाद कुछ अपरिचित सी भले लगती हो किन्तु अपने युग के लिए वह सर्वोत्तम होती हैं । बाण जैसे लेखकों को अपनी इसी शैली के कारण अपने युग में प्रतिष्ठा मिली । इससे इंगित होता है कि जिस शैली में बाण ने लिखा, उसी शैली में उन्हें प्रतिष्ठा मिल सकती थी, अन्यथा नहीं ।

बाणभट्ट का परवर्ती लेखकों पर क्या प्रभाव पड़ा ? यह एक विचारणीय प्रश्न है । जब हम इस दृष्टि से परवर्ती संस्कृत साहित्य का अवलोकन करते हैं, तो पाते हैं कि बाण के बाद का कोई ऐसा गद्य-लेखक नहीं मिलता जिस पर बाण का प्रभाव न रहा हो । तिलकमंजरीकार धनपाल (1000 ईसवी) ने बाण की शैली को अपनाकर अपने ग्रन्थ की रचना की जिसमें स्थल-स्थल पर बाण की तरह कलाओं का विशद वर्णन मिलता है । वादिभ सिंह (1000 ईसवी) ने 'गद्यचिन्तामणि' की रचना की जिसका इतिवृत्त बाण की कादम्बरी जैसा ही है । वामनभट्ट बाण (चौदहवीं शती ईसवी) का 'वेमभूपालचरित' हर्षचरित से प्रभावित है । इसके बाद पं० अम्बिकादत्त व्यास (1858-1900 ईसवी) को गद्य रचना का श्रेय दिया जाता है । इन्होंने बाण की शैली का अनुकरण करके 'शिवराज-विजय' की रचना की, जो संस्कृत साहित्य में आधुनिक गद्य शैली का प्रतिनिधित्व करता है । इन्हें यदि 'अभिनव-बाण' की संज्ञा दी जाय तो अत्युक्ति न होगी । बाण का प्रभाव न केवल

साहित्य के क्षेत्र में पड़ा अपितु अभिलेखों की लेखन कला भी बाण से प्रभावित रही है । हर्षचरित में बाण जिस प्रकार अनुश्रुत परम्परा के आधार पर अपनी वंश परम्परा का उल्लेख करता है उसी प्रकार की पौराणिक शैली में वंश परम्परा का निरूपण मेहर से प्राप्त अभिलेख में भी मिलता है ।[60]

भारतीय इतिहास में सातवीं शताब्दी ईसवी का कई दृष्टियों से महत्व पूर्ण स्थान है । राजनैतिक दृष्टि से इस शताब्दी में तीन बड़े राज्यों, उत्तर में पुष्यभूति, दकन में चालुक्य और सुदूर दक्षिण में पल्लव राजवंश का उदय होता है । इस काल के साहित्यिक साक्ष्य सौभाग्य से कलात्मक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों से मेल खाते हैं जो तत्कालीन सांस्कृतिक अध्ययनमें विशेष सहायक सिद्ध हुए हैं । इसके साथ गुप्तकाल की पुष्पित एवं पल्लवित संस्कृति की निरन्तरता विशेष रूप से कला के क्षेत्र में सातवीं शताब्दी ईसवी में भी प्रवहमान दिखाई पड़ती है । इस शताब्दी में भारत का वैदेशिक सम्बन्ध भारतीय संस्कृति के पहलुओं पर प्रकाश डालता है ।[61] भारत के इतिहास में सामन्तवाद का विकास इसी युग से माना जाता है जिसके कारण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं । राजाओं द्वारा धार्मिक तथा प्रशासनिक कार्यों के लिए भू-राजस्व तथा भूमि का बड़े पैमाने पर हस्तान्तरण किया गया जिसके फलस्वरूप अनेक स्वतंत्र अस्तित्व वाली वित्तीय और प्रशासनिक इकाइयों का उदय हुआ । राजाओं के अधीनस्थ बड़े सामन्तों के द्वारा भी कालान्तर में दान की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला जिसके फलस्वरूप सामन्तोप-सामन्तीकरण की परम्परा का विकास हुआ । रामशरण शर्मा का विचार है कि सामन्तोपसामन्तीकरण के परिणामस्वरूप आर्थिक इकाइयों का आकार और भी छोटा होता गया इससे एक ऐसी सामाजिक स्तरावली को पनपने का अवसर मिला जिसका आधार कहीं भूमि और कहीं भू-राजस्व का असमान वितरण था ।[62] सातवीं शताब्दी ईसवी में इसी प्रवृत्ति के कारण उत्तर भारत में व्यापारिक ह्रास हुआ । यद्यपि यह माना जाता है कि इस शताब्दी में भी पूर्वी एवं दक्षिणी भारत

का व्यापार दक्षिण पूर्व एशिया तथा चीन के साथ सामुद्रिक मार्ग से होता था किंतु स्थल मार्ग का व्यापार राजनैतिक उथल-पुथल के कारण लगभग समाप्त हो चुका था। रोम के साथ भारत का व्यापार इस काल तक समाप्त हो चुका था जिससे व्यापार वाणिज्य में ह्रास हुआ । रामशरण शर्मा का मत है कि जो व्यापार दक्षिण पूर्व एशिया और चीन के साथ चल रहा था उसका कोई असर आन्तरिक अर्थव्यवस्था पर नहीं पड़ा । व्यापार के समग्र ह्रास के कारण तटवर्ती नगरों और भीतरी नगरों के बीच तथा नगरों एवं ग्रामों के बीच की आर्थिक कड़ी कमजोर पड़ गयी ।[63] यह स्पष्टतया माना जा सकता है कि इस काल में व्यापारिक ह्रास हुआ जिसका प्रमाण इस काल में सिक्कों की कमी के रूप में मिलता है । सिक्कों की कमी से आन्तरिक तथा बाह्य दोनों तरह के व्यापार को बाधा पहुँची इसलिए गाँव स्वयं में आत्म-निर्भर होने लगे । विद्वान् व्यापार की कमी का एक कारण और मानते हैं कि देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो चुका था जिसके कारण अनेक जाँच चौकियों पर व्यापारियों को सीमा शुल्क देना पड़ता था । जिससे व्यापार को धक्का लगा।[64] व्यापार-वाणिज्य के ह्रास के कारण शिल्पियों का महत्व कम हो गया । वास्तविक शहरी केन्द्र, जहाँ कारीगरों से काम लिया जाता था, अवनति की ओर जाने लगे और इनका स्थान अधिकांश स्कन्धावारों या सामन्ती दरबारों ने ले लिया जिनके लिए व्यापार की कोई विशेष उपयोगिता नहीं थी । शिल्पियों एवं कारीगरों को ग्रामों या नगरों से बँध जाना पड़ा जहाँ वे अपने मालिकों की जरूरतें पूरी करते थे ।[65] इस प्रकार अर्थव्यवस्था अवरुद्ध हो गयी और उसका स्थानीयकरण हो गया जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीयता की भावना के बजाय स्थानीयता की भावना का विकास हुआ जो बाद की शताब्दियों के लिए घातक सिद्ध हुई ।

सातवीं शताब्दी ईसवी में गतिशीलता के नाम पर विद्वान् युद्ध के प्रयोजनार्थ सैनिकों, नई भूमि अर्जित करने के लिए पुरोहितों और तीर्थयात्रियों का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । उनका मत है कि यद्यपि यह काल युद्धों का काल था फिर भी सेना के आवागमन से व्यापार-वाणिज्य में कोई गतिशीलता नहीं आयी ।[66]

आर्थिक गतिरोध का प्रभाव समाज पर भी पड़ा । ब्राह्मणों पर सामाजिक प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए अनेक प्रकार के धार्मिक प्रतिबंध लगा दिये गये । रामशरण शर्मा का मन्तव्य है कि पूर्व मध्यकालीन धर्मशास्त्रों में गतिहीन ब्राह्मणों की जो तस्वीर है वह उत्तर गुप्तकाल की अवरुद्ध आर्थिक इकाइयों के अनुरूप ही है ।[67] इसके अलावा भूमिदान तथा शक्ति के असमान वितरण के कारण अनेक नये वर्गों का उदय हुआ, जिनका प्राचीन चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के साथ कोई तालमेल नहीं था । समकालीन स्मृतिग्रन्थों ने इन्हें वर्णव्यवस्था में कोई स्थान नहीं दिया किन्तु इसके विपरीत शिल्पशास्त्र के ग्रन्थों में जन्म पर आधारित श्रेणी का भूमि और शक्ति पर आधारित श्रेणी के साथ समीकरण बैठाने का प्रयास किया गया है । जिसका प्रारम्भ वाराह मिहिर ने किया जिनके द्वारा विभिन्न वर्णों के सदस्यों के मकानों का अलग-अलग आकार निर्धारित किया है ।[68] सातवीं शताब्दी ईसवी में नई-नई जातियों के उद्भव एवं विकास का इतिहास बड़ा रोचक रहा है । ऐसी ही जातियों में कायस्थों का उल्लेख किया जा सकता है । जिसकी चर्चा बाण हर्षचरित में करणिक के रूप में करते हैं ।[69] विद्वानों का मत है कि राजाओं के द्वारा भूमि एवं भू-राजस्व को निरन्तर स्थानान्तरित करने के कारण अभिलेखों के संरक्षण का भार एक विशेष पेशेवर शिक्षित वर्ग पर आ गया जो लिपिक का काम करता था । कालान्तर में इसी वर्ग से कायस्थों का उदय हुआ । समकालीन स्रोतों में इनके अनेक नाम यथा कायस्थ, करणिक, करण, अधिकृत, पुस्तपाल, चित्रगुप्त, लेखक, दिविर, अक्षपटलिक, अक्षपटलाधिकृत आदि प्राप्त होते हैं ।[70] इस प्रकार भूमि विभाजन के कारण कायस्थ नामक एक शिक्षित वर्ग का उदय एवं विकास हुआ जिसका स्थान चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में आज तक निर्धारित नहीं किया जा सका । इस शताब्दी तक आते-आते वैश्यों की सामाजिक स्थिति में गिरावट आयी और शूद्रों का उत्थान होकर कृषक के रूप में प्रतिष्ठित हो गये । रामशरण शर्मा के अनुसार सर्वाधिक उल्लेखनीय विकास जातियों के शाखा-दर-शाखा में विभाजन के रूप में हुआ । इस विभाजन का असर ब्राह्मण, कायस्थ, क्षत्रिय या राजपूत और सबसे बढ़कर शूद्रों पर पड़ा । मिश्रित जातियों की बाढ़ आ गई । अछूतों की संख्या में अपार वृद्धि हुई ।[71]

सातवीं शताब्दी ईसवी में जो जातीय बहुगुणन हुआ उस पर विद्वान् धार्मिक सम्बन्धों का विशेष प्रभाव मानते हैं । रामशरण शर्मा का मन्तव्य है कि धार्मिक सम्प्रदायों और जातियों के बीच बहुगुणन की धाराएँ बहुत निकट-निकट चलीं और धार्मिक सम्प्रदायों का बहुगुणन जातियों के बहुगुणन में सहायक था ।[72] बाणभट्ट ने हर्षचरित में धार्मिक बहुगुणन का चित्र स्पष्ट रूप से खींचा है । राज्यश्री की खोज में हर्ष जब दिवाकर मित्र के आश्रम में पहुँचते हैं उस प्रसंग में बाण ने सातवीं शताब्दी ईसवी के धार्मिक सम्प्रदायों और दार्शनिकों की विस्तृत सूची पेश की है ।[73] इससे इस बात की पुष्टि हो जाती है कि वैष्णव, शैव, बौद्ध, जैन आदि धर्म अनेक छोटे-छोटे सम्प्रदायों में विभक्त हो रहे थे । रामशरण शर्मा के अनुसार विभाजन का कारण सिद्धान्तों का बुनियादी अन्तर उतना नहीं था जितना कि धार्मिक विधि-विधान का मोटा अन्तर, व यहाँ तक कि भोजन और पहनावे का अन्तर था । ये सारे के सारे क्षेत्रीय रिवाजों के द्वारा कायम रखे गये ।[74] इस प्रकार यह देखा गया कि जो धार्मिक सम्प्रदाय जन्म पर आधारित जातिगत असमानता और विशेषाधिकार समाप्त करने के लिए उठे थे उन्हें जाति व्यवस्था ने ही निगल लिया ।[75]

मुझे बाणभट्ट की कृतियों का सांस्कृतिक अध्ययन के अपने शोध "सोसाइटी एण्ड कल्चर एज़ रिफ्लेक्टेड इन द वर्क्स आँव बाणभट्ट" के प्रसंग में पुष्प्त हुआ है । यद्यपि बाण की दो प्रमुख एवं प्रसिद्ध रचनाओं हर्षचरित और कादम्बरी का सांस्कृतिक अध्ययन प्रो० वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा सम्पन्न किया जा चुका है किन्तु विद्वान् लेखक ने मुख्यतः राजदरबार और कला एवं स्थापत्य के विशेष सन्दर्भ में ही विशेष जोर दिया है । कला और स्थापत्य का गुप्त-काल के विशेष सन्दर्भ में लेखक ने अध्ययन किया है जिसकी पुष्टि के लिए स्थान-स्थान पर कालिदास को उद्धृत किया गया है । अग्रवाल महोदय ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि कालिदास से बाण 200 वर्षों बाद हुए । कालिदास स्वर्ण युग के आदि कवि थे तो बाण उसके अन्त का प्रतिनिधित्व करते हैं ।[76]

ग्रामीण जीवन एवं गरीबी के विषय में भी यथेष्ट प्रकाश नहीं डाला गया है। बाण की रचनाओं में वर्णित जनजातियों की जीवनचर्या, शिकार आदि की विधाओं पर विशेष प्रकाश नहीं डाला गया है। जनजातियों की तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में भूमिका पर नये सिरे से विचार किया जायेगा। चातुर्वर्ण्यव्यवस्था से इतर नई-नई मिश्रित जातियों के उद्भव एवं विकास का समाज पर प्रभाव, बाण के द्वारा इस विषय पर कहाँ तक प्रकाश डाला गया है, विषय पर भी शोध-प्रबन्ध में चर्चा की गयी है। इसके अलावा अस्पृश्यों की सामाजिक स्थिति, भूमि एवं शक्ति को आधार बनाकर उदित नवीन वर्गों की सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति के अन्तर्गत व्यापार-वाणिज्य, कृषि, वन्य उपज आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। धार्मिक बहुगुणन की प्रवृत्ति का सामाजिक प्रभाव, तन्त्र में वाममार्गी प्रवृत्तियों का विकास तथा विभिन्न प्रकार के लौकिक कर्मों को शोध प्रबन्ध में समुचित स्थान दिया गया है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य सामाजिक आर्थिक इतिहास के सम्बन्ध में शोध विषयक आधुनिक मान्यताओं के आलोक में इस कार्य को करने की योजना है। गुप्तोत्तर काल के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में जिन नवीन प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं उनकी कहाँ तक और किस सीमा तक बाणभट्ट की कृतियों में झलक मिलती है इस ओर भी ध्यान दिया गया है। इसके अलावा अग्रवाल महोदय ने अपने हर्ष-चरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन में बाणभट्ट पर पूर्ण अध्ययन के लिए सप्तसूत्री साहित्यिक कार्यक्रम सम्पन्न करने की घोषणा की थी जिसमें छठवाँ कार्यक्रम हर्षचरित और कादम्बरी के आधार पर बाण की सम्पूर्ण सांस्कृतिक सामग्री का ऐतिहासिक विवेचन है।[77] मेरा प्रयास होगा कि शोध-प्रबन्ध में अग्रवाल महोदय के सप्तसूत्री कार्यक्रम के छठवें भाग की यथासंभव पूर्ति हो सके। बाण के पूर्ववर्ती कवि कालिदास को साहित्यिक साक्ष्य के रूप में तो अपनाया जा चुका है किन्तु मेरा प्रयास होगा कि बाण के परवर्ती साहित्यिक साक्ष्यों को समुचित स्थान दिया जाय, जिससे बाण के साहित्य में उपलब्ध सांस्कृतिक धारा की निरन्तरता का पता चल सके। बाण

के समकालीन साहित्यिक साक्ष्यों में सम्राट् हर्ष की तीनों नाटिकाएँ प्रियदर्शिका, नागानन्द और रत्नावली तथा दण्डी का दशकुमारचरित आदि प्रमुख हैं । बाण के समकालीन अन्य राजवंशों के अभिलेखों का साक्ष्य भी सांस्कृतिक अध्ययन के महत्व पूर्ण स्रोत हैं । जिनको शोध में समुचित स्थान प्रदान किया गया है । समकालीन विधि-ग्रन्थों में कात्यायन स्मृति, देवलस्मृति (400 ईसवी), कामन्दक नीतिसार (400-800 ईसवी) के अलावा नारदस्मृति की असहाय टीका, पुलस्त्यस्मृति (300-700 ईसवी) तथा पितामहस्मृति (300-700ईसवी) आदि को भी मूल सहायक ग्रंथों के रूप में उपयोग किया गया है ।

शोध-प्रबन्ध में उत्खननों से प्राप्त साक्ष्यों को भी समुचित स्थान दिया गया है । हस्तिनापुर, अतरंजीखेडा, अहिच्छत्रा, श्रावस्ती, कौशाम्बी, श्रृंगवेरपुर आदि स्थानों की खुदाई में प्राप्त सामग्रियों के आधार पर तत्कालीन संस्कृति का जो तथ्य प्रकाश में आये हैं वे शोधकार्य के लिए महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । बाण के समकालीन इतिहास में यद्यपि मुद्राओं का अभाव सा है किन्तु जो भी मुद्रा सम्बंधी साक्ष्य उपलब्ध हैं, उनका समुचित प्रयोग किया गया है । विदेशी साक्ष्य के रूप में ह्वेनसांग के यात्रा विवरण उपयोग किया गया है ।

शोध-कार्य निगमन प्रणाली के आधार पर प्रस्तुत किया गया है जिसमें मूल कृतियों के साक्ष्यों को यथावत् न मानकर समकालीन विभिन्न साक्ष्यों की कसौटी पर कसा गया है । शोध हेतु मूल ग्रन्थों के प्रामाणिक संस्करणों का यथासंभव उपयोग किया गया है । हर्षचरित की सर्वमान्य 'संकेत' टीका जिसका मुद्रण 1912 ईसवी में निर्णय सागर प्रेस बम्बई से हुआ है, का उपयोग महत्वपूर्ण है । हर्षचरित की हिन्दी टीका के लिए चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित आचार्य जगन्नाथ पाठक के टीका का प्रयोग किया गया है । कादम्बरी की महोपाध्याय भानुचन्द्र सिद्धचन्द्र की संस्कृत-टीका जिसका सम्पादन काशीनाथ पाण्डुरंग परब ने किया है और जो नाग पब्लिशर्स दिल्ली से प्रकाशित है, का उपयोग किया है ।

अग्रवाल महोदय ने हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन की भूमिका में कादम्बरी की ग्यारह टीकाओं का उल्लेख किया है।[78] जिसमें भानुचन्द्र सिद्धिचन्द्र की टीका का महत्वपूर्ण टीकाओं में उल्लेख है। कादम्बरी की हिन्दी टीका के लिए शेषराज रेग्मी की टीका का उपयोग किया गया है, जो वाराणसी से प्रकाशित है। इसके अलावा चण्डीशतक की गोस्वामी कपिलदेवगिरि की हिन्दी टीका का उपयोग किया गया है।

बाणभट्ट की कृतियों पर जिन विद्वानों ने अभी तक सम्पादन-लेखन कार्य किया है। उनकी एक लम्बी सूची है।1896 ईसवी में सी०एम० रीडिंग ने कादम्बरी तथा 1897 ईसवी में ई०वी० कॉवेल तथा एफ०डब्ल्यू० टॉमस ने हर्षचरित का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इसके बाद 1906 ईसवी में एम०एल० इटींघाउसन ने 'हर्षवर्द्धन इम्परर एट् पोएट्' नामक ग्रन्थ की रचना की। 1918 ईसवी में पी०वी० काणे ने हर्षचरित पर 'द हर्षचरित ऑव बाणभट्ट विद् एक्सप्लानेटरी नोट्स' का प्रणयन किया। इसके बाद के विद्वानों ने बाण की कृतियों को साक्ष्य बनाकर 1922 ईसवी में के०एम० पणिक्कर ने 'श्री हर्ष ऑव कन्नौज', 1926 ईसवी में आर०के० मुखर्जी ने 'हर्ष', 1937 ईसवी में आर०एस० त्रिपाठी ने 'हिस्ट्री ऑव कन्नौज', 1953 ईसवी में वी०एस० अग्रवाल ने 'हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, 1957 ईसवी में 'कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन' तथा 1969 ईसवी में डीड्स ऑव हर्ष 1954 ईसवी में आर०सी० मजूमदार ने 'हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑव इण्डियन पीपुल के तीसरे खण्ड द क्लासिकल एज' में हर्षवर्द्धन पर एक अध्याय में निरूपण किया है। 1970 ईसवी में डी० देवहूति ने 'हर्ष, ए पोलिटिकल स्टडी', 1970 बैजनाथ शर्मा ने हर्ष एण्ड हिज टाइम्स, वाराणसी, 1972 ईसवी में बी०पी० सिन्हा ने 'पोस्ट-गुप्ता पोलिटी', 1973 ईसवी में वी०पी० पांधरी ने 'राजवंश मौखरि और पुष्यभूति' तथा 1976 ईसवी में बी०एन० श्रीवास्तव ने 'हर्ष एण्ड हिज टाइम नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया। इस प्रकार बाण की रचनाओं का महत्व

8. हर्षचरित, पृ0 41.

9. अग्रवाल, वासुदेवशरण : हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 1, पादटिप्पणी.

10. मिश्र, रमापति : पार्वतीपरिणय [हिन्दी टीका], पृ0 1, वाराणसी-1984.

11. भामह : काव्यालंकार 1.25-28.

12. दण्डी : काव्यादर्श 1.23-28.

13. रुद्रट : काव्यालंकार 16.20-23.

14. कीथ, ए0बी0 : संस्कृत साहित्य का इतिहास [अनु0 मंगलदेव शास्त्री] पृ0 412, दिल्ली-9978.

15. हर्षचरित - श्लोक 9-10.

16. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोक्त, पृ0 5.

17. विष्णु पुराण : 2.3.1

18. ब्रह्मवैवर्त पुराण : हिमालयादासमुद्रं पुण्यक्षेत्र च भारत.

19. हर्षचरित, पृ0 4-5.

20. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोक्त, पादटिप्पणी

21. हर्षचरित : प्रथम उच्छ्वास, पृ0 6.

अन्यवर्णपरावृत्या वन्धाचिह्ननिगूहनैः ।
अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्चौरो विभाव्यते ॥

22. विक्रमांकदेवचरित : अंक 1.11

> साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं कर्णामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः ।
> यदस्य दैत्या इव लुण्ठनाय काव्यार्थ चौराः प्रगुणीभवन्ति ॥

23. वामन संस्कृत वाङ्मय के प्रसिद्ध अलंकारिकों में से हैं । इनके द्वारा रीति सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया गया । इनका समय मोटे तौर पर 750 से 850 ईसवी के बीच माना जाता है । इसका आधार इनके द्वारा भवभूति (750 ईसवी के लगभग) के श्लोकों का उद्धरण देना है । वामन के ग्रन्थ का नाम काव्यालंकारसूत्र है । इसमें पाँच अधिकरण हैं । अधिकरण अध्यायों में विभक्त हैं । ग्रन्थ में पाँच अधिकरण, 12 अध्याय तथा 317 सूत्र हैं ।

24. आनन्दवर्धन का समय 855 ईसवी से 884 ईसवी के लगभग माना जाता है । इनकी रचना 'ध्वन्यालोक' है और ये काव्यशास्त्र में ध्वनि मत के प्रवर्तक माने जाते हैं । ध्वन्यालोक में 4 प्रद्योत हैं । चतुर्थ प्रद्योत में शब्दार्थ हरण पर प्रकाश डाला गया है ।

25. ध्वन्यालोक 4.13, नान्यसाम्यं त्यजेत्कविः ।

26. वही, 4.17,

> 'परस्वादानेच्छाविरतमनसो वस्तु सुकवेः ।
> सरस्वत्येवैषा घटयति यथेष्टं भगवती ॥'

27. वही, 4.16

> 'सुकविस्य निबन्धनिर्वृता' नोपगते ।

28. काव्यमीमांसा : 11वाँ अध्याय,

> परप्रयुक्तयोः शब्दार्थयोरुपनिबन्धो हरणम् ।

29. वही, पृ0 148.

> पुंसः कालातिपातेन चौर्यमन्यद्विशीर्यति ।
> अपि पुत्रेषु पौत्रेषु वाक्चौर्यं च न शीर्यति ॥

30. वही,

तयो शब्दहरणमेव तावत्य यथा पदतः,
पादतः,अर्द्धतः, वृत्ततः प्रबन्धश्च ।

31. सरकार, डी०सी० : सलेक्श इन्सि : मन्दसौर अभिलेख

चलत्पताकान्यबलासनाथान्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि गान्धर्व-
शब्दमुखराणि निविष्टचित्रकर्माणि लोल कदली वनशोभितानि ।

32. मेघदूत : श्लोक 65.

33. एपि० इण्डिका : अजयगढ़ अभिलेख

एकातपत्रं जगती प्रभुत्वं वितीर्य गण्डाय महेश्वराय ।

34. रघुवंश : 2.47

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च ।

35. हर्षचरित : प्रथम उच्छ्वास, 4था श्लोक :

प्रायः कुकवयो लोके रागाधिष्ठितदृष्टयः ।
कोकिला इव जायन्ते वाचालाः कामकारिणः ॥

36. वही, श्लोक 5.

37. वही, श्लोक 8.

नवो र्थो जातिरग्राम्या श्लेषो क्लिष्टः स्फुटोरसः ।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥

38. कादम्बरी : श्लोक, 20.

अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा ।

39. कादम्बरी [उत्तर भाग] : श्लोक 4, पृ० 485.

याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात् ।

40. पाठक, वी0एस0 : एंसिएंट हिस्टारियन्स ऑव इण्डिया : ए स्टडी इन हिस्टारिकल बायोग्राफीज, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, पृ0 30 - 355.

41. पाठक, विशुद्धानन्द : उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी अकादमी, लखनऊ, पृष्ठ 22.

42. कीथ, ए0बी0 : संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु0 मंगलदेव शास्त्री), वाराणसी, 1978, पृ0 392.

43. वही, पृ0 393.

44. वही, पृ0 393.

45. देवहूति, डी0 : हर्ष : ए पोलिटिकल स्टडी, आक्सफोर्ड-लंदन 1970, पृ0 93.

46. काणे, पी0वी0 : द हर्षचरित ऑव बाणभट्ट विद एक्जास्टिव नोट्स,

47. कीथ, ए0बी0 : संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु0 मंगलदेव शास्त्री) पृ0 397.

48. चट्टोपाध्याय, सुधाकर : अर्ली हिस्ट्री ऑव नार्थ इण्डिया, पृ0 283.

49. कावेल एण्ड टामस : हर्षचरित

50. घोषाल, यू0एन0 : स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ0 55.

51. देवहूति, डी0 : हर्ष : ए पोलिटिकल स्टडी, पृ0 10-11.

52. काणे ,पी0वी0 : द हर्षचरित ऑव द बाणभट्ट विद एक्जास्टिव नोट्स, पृ0 27.

53. अग्रवाल वासुदेवशरण : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 4.

54. वही, पृ0 4.

55. वही, पृ0 5.

56. कादम्बरी : श्लोक 8.

57. वही, श्लोक 9.

हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैः
नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः ।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो
महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ॥

58. कीथ ए0बी0 : संस्कृत साहित्य का इतिहास ।हिन्दी। अनु0 मंगलदेवशास्त्री, पृ0 407.

59. उपाध्याय रामजी एवं मिश्र रामगोपाल : संस्कृत के महाकवि और काव्य, पृ0 228-229, इलाहाबाद 1965.

60. एपिग्राफिया इंडिका :

61. अग्रवाल, वासुदेवशरण : डीड्स ऑव हर्ष, पृ0 1, वाराणसी 1969.

62. शर्मा, रामशरण : पूर्व मध्यकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ0 4, दिल्ली 1975.

63. वही, पृ0 5.

64. वही, पृ0 5.

65. वही, पृ0 6.

66. शर्मा, रामशरण : पूर्व मध्यकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ0 8.

67. वही, पृ0 8.

68. वही, पृ0 10.

69. अग्रवाल, वासुदेव शरण : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 141.

70. शर्मा, रामशरण : पूर्व मध्यकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ0 13.

71. वही, पृ0 25.

72. वही, पृ0 24.

73. अग्रवाल, वासुदेव शरण : हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 195.

74. शर्मा, रामशरण : पूर्व मध्यकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ0 24.

75. वही, पृ0 25.

76. अअअग्रवाल, वासुदेव शरण : हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 2.

77. वही, भूमिका पृष्ठ च

78. वही, भूमिका पृष्ठ झ.

--------::0::--------

राजत्व

बाण की कृतियों-हर्षचरित और कादम्बरी-से जिस प्रकार का प्रशासनिक ढाँचा उभरकर सामने आता है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रशासन के प्रत्येक अंग पर धार्मिकता का पुट दिया गया था । राजा को स्वयं प्रशासनिक ढाँचे, जैसे उत्तराधिकार, युद्ध, कर-प्रणाली, और व्यक्तिगत मामलों में भी धर्म का आलम्बन लेना पड़ता था जिसे राजधर्म कहते थे । डी० देवहूति का मन्तव्य है कि राजा को विधायिका शक्ति नहीं प्राप्त थी, उसका मुख्य कार्य कार्यपालिका का था । यद्यपि राजा, मंत्री और सलाहकार विधि का अध्ययन करते थे । न्यायाधीश न्यायालय में उसी विधि का आश्रय लेकर न्याय करते थे ।[1] यह राजधर्म स्मृति ग्रन्थों, नीति-सार ग्रन्थों पर आधारित हुआ करते थे । समय परिवर्तन के साथ जैसे-जैसे राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक और सामाजिक ढाँचों में परिवर्तन आता गया, वैसे-वैसे विधि ग्रन्थों में परिवर्तन आया । इसीलिए प्राय: नये स्मृति ग्रन्थों में साहित्यिक झलक ही दृष्टिगत होती है ।

उत्तराधिकार

प्राचीन भारत में उत्तराधिकार के वंशानुगत होने का सैद्धान्तिक निर्देश उत्तर वैदिक काल तक के साहित्य में देखा जा सकता है जिसमें ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का प्राय: उत्तराधिकारी होता था । व्यावहारिक जीवन में इस परम्परा का विच्छेद ऐतिहासिक काल विभिन्न राजवंशों में देखने को मिलता है । मनु का कथन है कि यदि ज्येष्ठ पुत्र शारीरिक या मानसिक रूप से असमर्थ है तो वह पितृधन का अधिकारी नहीं होता ।[2] गुप्त-काल में उत्तराधिकारी के निर्धारण की परम्परा की शुरुआत हुई । प्रयाग-प्रशस्ति के चौथे श्लोक से चन्द्रगुप्त प्रथम के द्वारा समुद्र-गुप्त का निर्वाचित होना सिद्ध होता है ।[3] इसी प्रकार कुमार गुप्त प्रथम ने स्कन्द गुप्त को अपने पुत्रों में सबसे योग्य जानकर उत्तराधिकारी चुना ।[4] बाण

के हर्षचरित में भी उत्तराधिकार की झलक कुछ इसी प्रकार मिलती है । जिसमें प्रभाकरवर्द्धन के आदेश से ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्द्धन हूणों से युद्ध करने के लिए चला जाता है ।[5] प्रभाकरवर्द्धन के बीमार होने से संदेशवाहक हर्ष को पिता की बीमारी का समाचार देता है[6] जो राज्यवर्द्धन के साथ कुछ दूर तक गया था और पुनः शिकार में प्रवृत्त हो गया था ।[7]

हर्ष के राजधानी वापस पहुँचने पर जिस तरह से प्रभाकरवर्द्धन व्यवहार करता है उससे पिता के हर्ष के प्रति विशेष स्थान की झलक मिलती है । प्रभाकरवर्द्धन कहता है कि मेरे राज्य, वंश, प्राण और परलोक सबके सब तुम्हीं से चलते हैं ।[8] आगे उसके द्वारा पुनः कहा गया कि 'तुम कुल के दीपक हो', 'यह पृथ्वी तुम्हारी है', 'श्री को ग्रहण करो', 'इस संसार में राज्य करो', 'खजाने को स्वीकार करो', 'राज्य समूह को अपनाओ', 'राज्यभार का वहन करो', 'प्रजाओं की रक्षा करो'[9] आदि वाक्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि हर्ष को अपने पिता से राज्य विशिष्ट कृपापात्र होने के कारण मिला । यद्यपि बाण ने हर्षचरित में इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि हर्ष अपने बड़े भाई राज्यवर्द्धन के रहते राज्य ग्रहण करना नहीं चाहते थे । किन्तु राज्यवर्द्धन को भी यह मालूम था कि हर्ष पिता के विशेष कृपापात्र रहे हैं । युद्ध से लौटने के बाद राज्यवर्द्धन जब सभी राजाओं के साथ बैठे तो उन्होंने देव हर्ष से कहा - 'तात' भारी आदेशों के तुम योग्य हो शैशवकाल में गुणवान् जनों के पताका के समान तात की चित्तवृत्ति को तुमने प्रभावित कर लिया है था ।[10] इसी कारण राज्यवर्द्धन वल्कल धारण करके संन्यासी का जीवन व्यतीत करना चाहते थे । राज्यवर्द्धन के इस निर्णय का हर्ष के द्वारा भी प्रतिवाद किया गया और समस्त प्रजाजन के द्वारा इस घटना पर दुःख प्रकट किया गया ।[11] इस तरह बाण ने हर्षचरित में उत्तराधिकार के प्रश्न को उलझा दिया है । जबकि कादम्बरी में राजा तारापीड ने अपने पुत्र चन्द्रापीड का राज्याभिषेक बड़े धूमधाम से किया ।[12] सातवीं शताब्दी ई0 जो कि बाण का समय

है, में अन्य स्रोतों से पता चलता कि राज्य का उत्तराधिकारी मन्त्रियों की सलाह मशविरा से घोषित होता था । इसके पूर्व गुप्त-काल में इस तरह की किसी परम्परा का स्पष्ट साक्ष्य नहीं मिलता है । हर्ष का थानेश्वर राज्य के सिंहासन पर राज्यारोहण मन्त्रियों और अधिकारियों के चुनाव से हुआ था । मुख्य सलाहकार भण्डि एकत्रित मन्त्रियों को सम्बोधित करते हुए कहता है : 'आज राज्य का भाग्य निश्चित करना है । पुराने राजा के पुत्र का देहान्त हो गया है । राजकुमार का भाई जो कि विनम्र और सुशील है, लोग उस पर विश्वास करेंगे क्योंकि वह परिवार से पूरी तरह जुड़ा हुआ है । मैं प्रस्ताव करता हूँ कि वह राज्य का अच्छा उत्तराधिकारी हो सकता है ? प्रत्येक इस पर अपना विचार व्यक्त करे जो वह सोचता है ।'[13] इसी प्रकार जब ग्रहवर्मा की मृत्यु के बाद कन्नौज का कोई उत्तराधिकारी न रहा क्योंकि ग्रहवर्मा के कोई सन्तान नहीं थी इसलिए भण्डि के सलाह पर वहाँ के मन्त्रियों ने हर्ष को कन्नौज की राजगद्दी का उत्तराधिकारी मनोनीत किया जिसे हर्ष बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की आज्ञा से ग्रहण किया ।[14] यहाँ पर हर्ष का उत्तराधिकार वंशानुगत न होकर बहनोई की गद्दी पर चुनाव के माध्यम से हुआ । इससे उत्तराधिकारी के मनोनीत होने की परम्परा की पुष्टि होती है ।

कालान्तर में उत्तर भारत में विशिष्ट एवं विषम परिस्थितियों में जनता के प्रमुख वर्गों द्वारा राजा के चयन का उल्लेख मिलता है । धर्मपाल के खलीमपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि पाल वंश के संस्थापक गोपाल को चुनाव के द्वारा राजगद्दी पर बैठाया गया था ।[15]

बाणभट्ट के समकालीन राजवंशों के अभिलेखों में भी उत्तराधिकार से सम्बन्धित प्रसंगों का उल्लेख हुआ है । अभिलेखों में उपलब्ध 'पादानुध्यात' शब्द का प्रयोग इस प्रसंग में विशेष महत्व रखता है । यह शब्द हर्ष के मधुबन, बाँसखेड़ा, अभिलेखों तथा नालन्दा और सोनपत की मुद्राओं सभी में मिलता है ।[16] इससे

ऐसा प्रतीत होता है कि पुत्र अपने पिता के चरणों में रत होकर वंशानुगत परम्परा के अनुसार सिंहासन ग्रहण करता था । इसी प्रकार का प्रमाण उत्तरगुप्तवंश के जीवितगुप्त द्वितीय के देववर्नार्क अभिलेख[17] तथा मौखरि राजाओं के मुद्रालेखों में असीरगढ़, ताम्र, मुद्रालेख, अवन्तिवर्मा का सोहनाग मुद्रालेख, नालन्दा मृ0मुद्रालेख, कन्नौज मृण्मुद्रालेख, सु का नालन्दा मृण्मुद्रा आदि भी मिलता है ।[18] इन अभि- लेखों के अध्ययन से इस बात पर प्रकाश नहीं पड़ता कि पिता के बाद ज्येष्ठ पुत्र ही राज्याधिकारी होता था । किरण कुमार थपल्याल यह मानते हैं कि अधिकांशतः ज्येष्ठ पुत्र ही उत्तराधिकारी होता था किन्तु पिता की विशेष कृपा के परिणाम स्वरूप छोटे पुत्र को राजगद्दी दे दी जाती थी । उनके अनुसार कुछ अभिलेखों में 'पाणिगृहीता' शब्द के प्रयोग से यह संकेत मिला है कि संभवतः राजा के द्वारा उत्तराधिकारी का चुनाव किया जाता था ।[19]

उत्तराधिकारी मनोनीत करने की परम्परा बाण के समकालीन दक्षिण भारतीय राजवंशों में भी देखने को मिलती है । पल्लववंश के परमेश्वर वर्मा द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उस वंश में कोई उत्तराधिकारी न था जिससे प्रजा में अव्यवस्था फैल गयी । प्रजा ने अपनी रक्षा के लिए एक राजा चुना ।[20] इसी प्रकार राष्ट्र कूटवंश में अमोघवर्ष तृतीय से साम्राज्य के अस्तित्व की रक्षा के लिए सामन्तों ने राज सिंहासन स्वीकार करने के लिए विनय किया था ।[21] इस तरह इतिहास की यदि एक धारा राजाओं के निर्वाचन को महत्व देती है तो अनन्तसदाशिव अल्तेकर जैसे विद्वान् इस मत को मानने के लिए तैयार नहीं है । उनका मत है कि गोपाल को मात्स्य-न्याय को समाप्त करने के लिए विशेष परिस्थितियों में चुना गया था जिसने बंगाल में पालवंश की नींव रखी । गोपाल के उत्तराधिकारी पैतृक परम्परा द्वारा ही अपना राज्य प्राप्त करते रहे । उन्होंने जनता के निर्वाचन की परवाह नहीं किया था । यह संभव है कि प्रजा द्वारा निर्वाचन की बात उसकी स्थिति दृढ़ करने के लिए कही गई है ।[22] उनके अनुसार यह सत्य है कि हर्ष को निर्वाचन द्वारा

राज्य प्राप्त हुआ किन्तु यह राज्य उसका पैतृक राज्य न था अपितु उसके बहनोई का कन्नौज का राज्य था जिस पर उसका कोई हक नहीं था । इसलिए मौखरि अमात्यों ने अपने विधवा रानी के भाई को राज्य देना उचित समझा । इस घटना से यह ज्ञात होता है कि राज्य के उत्तराधिकारी न होने पर अमात्य और अन्य ऊँचे अधिकारी मृत राजा के सम्बन्धियों में से किसी सुयोग्य व्यक्ति को राजा चुनते थे ।[23]

राजाओं में देवत्व

शासकों में देवत्व की भावना का विकास उत्तर वैदिक काल से प्रारम्भ होता है ।[24] अल्तेकर का विचार है कि इस भावना के विकास में ब्राह्मणों का योगदान माना जा सकता है क्योंकि ब्राह्मण स्वयं को भूदेव कहकर अपने लिए देवत्व का दावा कर रहे थे अतः वे राजा को भी उससे कैसे वंचित कर सकते थे क्योंकि वही तो उनके विशेषाधिकारों का संरक्षक था ।[25] उत्तर वैदिक काल की ऐसी ही परिस्थितियों में देवत्व की भावना के विकास की पृष्ठभूमि तैयार हुई । अभिलेखीय साक्ष्य प्रथम शताब्दी ईसवी से मिलने लगते हैं जब कुषाण राजाओं ने चीनी परम्परा के आधार पर अपने को 'देवपुत्र' की पदवी से विभूषित करना प्रारंभ किया ।[26] [illegible] प्रयाग प्रशस्ति में भी कुषाणों के लिए 'देवपुत्र' उपाधि का व्यवहार सम्राटों के लिए किया गया है ।[27] कुषाण मुद्राओं (सिक्कों) पर राजाओं को दैवी ज्योति से आवृत्त बादलों से अवतरित होते हुए अंकित किया गया है । कुषाण सम्राटों ने अपने पूर्वजों के मन्दिर बनवाये जिसमें उनकी प्रतिमाएँ देव के समान पूजी जाती थी ।[28]

रामशरण शर्मा का विचार है कि 'देवपुत्र' की उपाधि कुषाणों को बौद्ध धर्म की महायान शाखा के सुवर्ण प्रभासोत्तम सूत्र की प्रेरणा से प्राप्त हुई । वहाँ कहा गया है कि राजाओं का प्रारम्भिक जीवन देवताओं के बीच में व्यतीत होता है इसलिए राजा 'देव' और 'देवपुत्र' दोनों होते हैं ।[29] इस भावना के विकास

को उस समय और बल मिला जब स्मृतियों तथा पुराणों ने भी राजा के देवत्व को मान्यता प्रदान की । मनु के अनुसार - इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुबेर इन आठ दिक्पालों के नित्य अंश से ईश्वर ने राजा को बनाया इन इन्द्रादि देवताओं के अंशों से निर्मित होने के कारण राजा सब प्राणियों से अधिक तेजस्वी होता है ।[30] प्रयाग प्रशस्ति में समुद्र गुप्त को 'देव' कहा गया है । इस अभिलेख के अनुसार वह मनुष्य उसी सीमा तक था, जहाँ तक वह लौकिक क्रियाओं का अनुसरण करता था । इसमें इसकी तुलना कुबेर, वरुण, इन्द्र और यमराज (अन्तक) से की गयी है । सुवर्ण मुद्राओं पर उसकी उपाधि 'कृतान्त' मिलती है । ये शब्द सम्राट् की दैवी उत्पत्ति में लोकविश्वास की ओर संकेत करते हैं ।[31]

बाण के साहित्य में अनेक स्थलों पर राजा के देवत्व की कल्पना का उल्लेख मिलता है । कादम्बरी में राजा शूद्रक को विष्णु, शिव, कार्तिकेय, ब्रह्मा, सूर्य, इन्द्र से तुलनीय कहा गया है ।[32] वासुदेव शरण अग्रवाल का मानना है कि यह उस काल की रीति थी ।[33] इसके पश्चात् राजा की सर्वदेवमय नारायण के रूप में कल्पना की गयी है । धर्म उस राजा के मन में, यम क्रोध में, कुबेर प्रसन्नता में, अग्नि प्रताप में, पृथ्वी भुजाओं में, लक्ष्मी नेत्रों, सरस्वती वाणी में, चन्द्रमा मुख में, मारुत बल में, बृहस्पति प्रज्ञा में, कामदेव रूप में, सूर्य तेज में, निवास करते थे।[34] वासुदेव शरण अग्रवाल का मन्तव्य है कि नारायण का सर्वदेव मय स्वरूप गुप्त-काल में ही लोकप्रिय हो चुका था । गुप्तकाल में विष्णु की तीन प्रकार की मूर्तियाँ मिलती हैं - गरुडस्थ विष्णु, शेषशायी विष्णु और विश्वरूप विष्णु । विश्वरूप मूर्ति की दो विशेषताएँ होती थीं जिसमें ठीक वैसा एक तो ही जैसा बाण ने कहा है । मूर्ति के परिकर में चारों ओर वसु, रुद्र, आदित्य, ब्रह्मा, चन्द्र, सूर्य आदि अनेक देवताओं की मूर्तियाँ उत्कीर्ण की जाती थीं ।[35] इसके अलावा बाण ने राजा तारापीड को तेज और सौन्दर्य में सूर्य एवं चन्द्र के समान एक तीसरा व्यक्ति कहा है ।[36] अन्यत्र तारापीड को धर्म का अवतार और नारायण का प्रति-

निधिस्वरूप बतलाया गया है ।[37] चन्द्रापीड को भगवान् नारायण का रूपान्तर कहा गया है ।[38] बाण ने कादम्बरी के शुकनाशोपदेश प्रसंग में राजाओं के देवत्व के कारण हुई भूलों को समझाते हुए चन्द्रापीड से कहा है : 'अपने मन में देवतात्व-संस्थापनरूप मिथ्या विचार से ठगाये जाने के कारण जो धारणा उत्पन्न होती है, उसी से बुद्धि विनष्ट हो जाती है अतएव 'मेरी दो भुजाओं के अन्दर दो भुजायें और छिपकर घुसी हुई हैं ऐसा समझकर वे अपने आपको विष्णु के समान मानते हैं । ललाट में एक और तीसरा नेत्र त्वचा से ढका हुआ है, ऐसी शंका करके शिव के समान समझते रहते हैं ।[39]

बाणभट्ट ने हर्षचरित में भी इसी प्रकार राजा में देवत्व की कल्पना की है । पुष्यभूति की तुलना इन्द्र, समुद्र, आकाश, चन्द्रमा, वेद, पृथ्वी, बृहस्पति, बुध, दक्षप्रजापति से की गयी है ।[40] हर्ष के वर्णन में बाणभट्ट पर स्मृतियों की छाया दृष्टिगत होती है । बाणभट्ट ने जब स्कन्धावार में हर्ष का प्रथम दर्शन किया तो उसका वर्णन करते हुए कहते हैं :- 'अपने शरीर से समस्त देवताओं के अवतार को प्रकट कर रहे थे । यहाँ उनकी तुलना अरुण (सूर्य का सारथी), सुगत (बुद्ध), वज्रायुध (इन्द्र) धर्म भास्वत (सूर्य), चन्द्र एवं कृष्ण से की गयी है ।[41] यहाँ पर बुद्ध से तुलना उल्लेखनीय है जो पौराणिक देवमण्डल से भिन्न थे । राजा की समस्त देवताओं के अवतार को प्रकट करने की मान्यता कादम्बरी के शूद्रक वर्णन से मेल खाती है । इससे यह प्रतीत होता है कि बाण के समय तक 'सर्वदेवतावतार' की कल्पना को लोक में ख्याति प्राप्ति हो चुकी थी । अन्यत्र हर्ष को देव हर्ष कहा गया है ।[42] इसके अलावा अनेक स्थलों पर हर्ष की तुलना प्रजापति[43] पुरुषोत्तम[44], परमेश्वर[45] से की गई है । सम्राट् हर्ष की नाटिका रत्नावली में उदयन की तुलना कामदेव और चन्द्रमा से की गई है ।

बाणभट्ट के ग्रन्थों में जहाँ एक ओर राजाओं के लिए देवत्व की कल्पना की गई वहीं दूसरी ओर रानियों को भी देवत्व की गरिमा से मण्डित किया गया

है । प्रभाकरवर्द्धन की पटरानी यशोवती की तुलना पार्वती (शंकर की पत्नी) लक्ष्मी, रोहिणी (चन्द्रमा की पत्नी), गंगा, वेदविद्या, ईश्वर से की गई है ।[47]

समकालीन राजवंशों के अभिलेखों में भी शासकों के देवत्व का प्रमाण मिलता है । मौखरि शासक हरिवर्मा की प्रजा के दुःख निवारण के कारण 'चक्रधर' (विष्णु) से तुलना की गई है ।[48] उत्तरगुप्त शासकों में जीवितगुप्त प्रथम की तुलना 'चन्द्रमा' से की गई है ।[49] इसी प्रकार कुमारगुप्त की तुलना शिखिवाहन, दामोदर गुप्त की दामोदर (कृष्ण) एवं माधवगुप्त की 'माधव' (विष्णु) से की गयी है ।[50] बाण के आश्रयदाता सम्राट हर्ष के पिता प्रभाकरवर्द्धन की तुलना हर्ष के मधुबन एवं बाँसखेड़ा अभिलेखों में एक चक्रधर (सूर्य) से की गई है । इसी अभिलेख में राज्यवर्द्धन द्वितीय को धनद, वरुण तथा इन्द्र के तेज से अभिभूत बताया गया है । परहित निरत होने के कारण राज्यवर्द्धन द्वितीय को 'परमसौगत' कहा गया है और उनकी तुलना बुद्ध से की गयी है । हर्ष को सर्वसत्वानुकम्पी होने के कारण इनकी तुलना शिव से की गई है ।[51] इस प्रकार बाणभट्ट के पूर्व से लेकर परवर्तीकाल तक राजाओं में देवत्व का समावेश करने का प्रयास दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था ।

राजकीय उपाधियाँ

प्राचीन भारत में राजकीय उपाधियों के विकास का भी अपना एक इतिहास है । मौर्यवंश का अशोक जैसा प्रतापी शासक अपने अभिलेखों में अपना परिचय 'देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा' के रूप में देता है ।[52] प्रथम शताब्दी ईसवी से कुषाण शासक 'रजति रजस महारजस (राजाधिराज महाराज) जैसी बड़ी उपाधियाँ धारण करने लगे थे ।[53] रामशरण शर्मा का मन्तव्य है कि कुषाणों की उपाधियाँ वास्तविक सत्ता की अपेक्षा सत्ता के विकेन्द्रीकरण का द्योतक हैं ।[54] गुप्तकाल तक आते आते स्वतंत्र शासकों की उपाधियों में बढ़ोत्तरी होने लगी । गुप्त सम्राटों की प्रशस्तियों एवं मुद्राओं पर उनकी उपाधियाँ उत्कीर्ण की गई हैं । ये उपाधियाँ में

गुप्तकालीन आदर्शों तथा धार्मिक विश्वास एवं प्रचलन का प्रतिबिम्ब मिलता है। प्रयाग प्रशस्ति में समुद्र गुप्त को 'पराक्रमांक' तथा महाराजाधिराज कहा गया है। उसके गरुड़ मुद्रा के ऊपर 'श्री विक्रमः' उपाधि मिलती है। इसके अलावा उसकी मुद्राओं पर 'कृतान्त परशुः' 'सर्वराजोच्छेत्ता' 'व्याघ्रपराक्रमः' आदि उपाधियाँ अंकित है।[55] इसी प्रकार गुप्तकालीन अन्य शासकों ने महाराजाधिराज, महाराज राजाधिराज, परमभट्टारक, परमदैवत तथा परमभागवत, विक्रमादित्य[56], महेन्द्रादित्य,[57] क्रमादित्य[58], विक्रमा प्रकाशादित्य[59] आदि उपाधियाँ धारण करते थे। सातवीं शताब्दी ईसवी तक आते-आते 'महाराज' उपाधि अधीनस्थ शासकों की स्थिति का द्योतक हो चुकी थी। स्वतंत्र शासक 'महाराजाधिराज' या इसके सम कक्ष उपाधियाँ धारण करने लगे थे।

बाणभट्ट के साहित्य में राजाओं के लिए कोई भारी-भरकम उपाधियों का प्रयोग नहीं किया गया है। हर्षचरित में प्रभाकरवर्द्धन तथा हर्ष के लिए अधिकांश स्थानों पर 'राजा' 'नृपति' भूपति' अवनिपति' आदि उपाधियों का प्रयोग किया गया है। हर्ष को अनेक स्थानों पर 'देवहर्ष' की उपाधि प्रदान की गई तथा एक स्थान पर 'महाराजाधिराज' की उपाधि से भी विभूषित किया गया है।[60] राज्यवर्द्धन को भी 'देव' उपाधि ही दी गई है। हर्ष के लिए बाणभट्ट ने 'देवानां प्रिय' उपाधि का प्रयोग किया है।[61] बाण ने महाराज सुस्थिरवर्मा के लिए 'महाराजाधिराज' की उपाधि का प्रयोग किया है।[62]

बाणभट्ट ने हर्ष के लिए 'राजर्षि'[63] उपाधि का प्रयोग अवश्य किया है जिससे हर्ष के आदर्शों एवं कर्तव्यों का बोध होता है। प्राचीन भारतीय इतिहास में 'राजर्षि' की उपाधि का अपना विशेष महत्व था। कौटिल्य ने इन्द्रिय जयी प्रज्ञावान, लोक के योगक्षेम के लिए उत्थित, राजकीय नियमों द्वारा अपने-अपने धर्म पर दृढ़ रहने के लिए प्रजा पर नियंत्रण, पराई स्त्री, पराया धन और हिंसा वृत्ति

का त्याग करने वाला, धर्म के विरुद्ध धर्म और अर्थ का सेवन न करने वाले राजा को राजर्षि की संज्ञा प्रदान की गई है।[64] बाणभट्ट ने हर्ष के राजर्षि रूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि - विषम राजमार्ग पर पैर फिसलने के भय से मानो उन्होंने धर्म का आश्रय लिया था।[65] धन के प्रति लगाव नहीं था। व्यसन के प्रति नीरस थे। इन्द्रियाँ वश में थीं। काम के प्रति उदासीन थे। भीष्म की अपेक्षा वे अधिक जितेन्द्रिय थे।[66] इसके अलावा बाण ने हर्ष को 'चक्रवर्ती' की उपाधि भी प्रदान की है।[67] साथ ही चक्रवर्ती के लक्षणों का भी उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया है कि हर्ष के तलवे में कमल, शंख, मछली और मकर के चिह्न थे जिनसे व्यक्त होता है कि उन्होंने चारों समुद्रों के उपभोग के चिह्नों को प्राप्त किया[68] यह ज्योतिष के प्रभाव का सूचक है। कादम्बरी में भी बाणभट्ट ने शूद्रक के लिए 'राजा' उपाधि का ही प्रयोग किया है।[69] तारापीड के लिए भी 'राजा' अवनिपति आदि साधारण उपाधियाँ ही प्रयुक्त की गई हैं।[70] तारापीड के लिए एक स्थान पर महाराजाधिराज की उपाधि का प्रयोग किया गया है।[71]

बाणभट्ट के आश्रयदाता सम्राट हर्ष के म मधुवन, बाँसखेड़ा अभिलेखों तथा नालन्दा और सोनपत मुद्रालेखों में भारी भरकम उपाधियों का प्रयोग किया गया है। पुष्यभूति वंश के प्रथम तीन शासकों नरवर्द्धन, राज्यवर्द्धन तथा आदित्यवर्द्धन को मात्र 'महाराज'[72] की उपाधि ही प्रदान की गयी है किन्तु चौथे शासक प्रभाकरवर्द्धन को 'परमभट्टारकमहाराजाधिराज' की उपाधि से विभूषित किया गया है। इसके अलावा इसकी शक्ति एवं पराक्रम का संकेत भी किया गया है। अभिलेखों में कहा गया है कि प्रभाकरवर्द्धन का यश चारों समुद्रों को पार कर गया था और उसके प्रताप के समक्ष अन्य शासक नतमस्तक होते थे।[73] इसके अतिरिक्त हर्ष के अभिलेखों एवं मुद्रालेखों में राज्यवर्द्धन द्वितीय को 'परमभट्टारकमहाराजाधिराज'[74] की उपाधि प्रदान की गई है, साथ ही इसकी तुलना परमसौगत होने से सुगत (बुद्ध) से की गई है।[75] हर्ष के अपने अभिलेखों में उसे 'परम माहेश्वर' परमभट्टारकमहा-

राजाधिराज की उपाधि प्रदान की गई है ।[76] बाणभट्ट के समकालीन राजवंशों के अभिलेखों से भी उपाधियों पर प्रकाश पड़ता है । मौखरिवंश के दूसरे शासक शार्दूल वर्मा को बिहार के गया जिले में स्थित बराबर पहाड़ियों की गुफाओं से प्राप्त अभिलेखों में 'सामन्त-चूड़ामणि' की उपाधि प्रदान की गयी है ।[77] पहले शासक यज्ञ वर्मा और तीसरे शासक अनन्तवर्मा को 'नृप' उपाधि दी गई है ।[78] मौखरि शासक हरिवर्मा, आदित्यवर्मा और ईश्वरवर्मा के लिए भी असीरगढ़ ताम्र मुद्रा लेख में 'महाराज' की उपाधि मिलती है ।[79] कन्नौज शाखा के इस मौखरि वंश के चौथे शासक ईशान वर्मा ने सर्वप्रथम 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की जो सर्ववर्मा, अवन्तिवर्मा तथा ग्रहवर्मा तक मिलती है ।[80] उत्तर गुप्त वंश के शासकों में सर्वप्रथम आदित्यसेन ने 'पृथ्वीपति', 'परमभट्टारक' और 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की ।[81] आदित्यसेन के बाद देवगुप्त विष्णुगुप्त और जीवितगुप्त द्वितीय ने शासन किया । देवबर्नार्क अभिलेख में इन तीनों शासकों को 'परमभट्टारक महाराजाधिराज' की उपाधि से विभूषित किया गया है ।[82]

इस काल की एक मुख्य विशेषता यह थी कि शासकों के साथ रानियाँ भी उपाधियाँ धारण करती थी । राजाओं की भाँति ही रानियों की उपाधियों में भी मौखरि अभिलेखों में क्रमिक विकास परिलक्षित होता है । प्रथम तीन शासकों में महाराज हरिवर्मा, आदित्यवर्मा और ईश्वरवर्मा की रानियाँ क्रमशः जयस्वामिनी, हर्षगुप्ता और उपगुप्ता को भट्टारिकादेवी की उपाधि प्रदान की गई है ।[83] शेष दो लक्ष्मीवती और इन्द्रभट्टारिका को 'भट्टारिकामहादेवी' कहा गया है ।[84] उत्तरगुप्त वंश के शासकों के अभिलेखों में इस सम्बन्ध में अपेक्षाकृत कम साक्ष्य मिलते हैं । मन्दर अभिलेख में आदित्यसेन की पत्नी श्रीकोणदेवी को 'भट्टारिका राज्ञी महादेवी[85] की उपाधि से विभूषित किया गया है । देवबर्नार्क अभिलेख में सभी राजाओं की पत्नियों को 'परमभट्टारिका महादेवी' कहा गया है ।[86]

हर्ष के मधुबन एवं बांसखेड़ा अभिलेखों में अधिकांश रानियों के नाम के पूर्व

श्री को छोड़ अन्य कोई उपाधि नहीं मिलती किन्तु प्रभाकरवर्द्धन की पत्नी यशोमती का उल्लेख जब राज्यवर्द्धन की माँ के रूप में किया गया है तो 'परमभट्टारिका महादेवी' उपाधि अंकित की गई है ।[87] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि रानियों की उपाधियों में भी राजाओं की स्थिति में परिवर्तन होने के तदनुरूप परिवर्तन ~~होने~~ किये गये हैं ।

राजा की सुरक्षा

प्राचीन भारत में राजा के सुरक्षा के विषय में विशेष ध्यान दिया जाता था । कौटिल्य ने सर्वप्रथम इस विषय को नीति विशारदों के समक्ष रखा । अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने कहा है कि राजा की सुरक्षा में स्त्रियाँ रहे ।[88] वंश परम्परा से अनुगत, उच्च कुलोत्पन्न, शिक्षित, अनुरक्त और प्रत्येक कार्य को विधिवत समझने वाले पुरुषों को राजा अपना अंगरक्षक नियुक्त करे ।[89] इसके अलावा भोजन में विष से रक्षा के लिए निर्देश है कि भोजन एकान्त में सुरक्षा से तैयार किया जाय तथा पक्षियों को खिलाने के पश्चात् खाये । विष विद्या के जानकार और वैद्य राजा के समीप अवश्य रहें ।[90] आगे कौटिल्य कहते हैं कि परिचारकों में राजा को स्नान कराने, उसके अंगों को दबाने, बिस्तर बिछाने, कपड़े धोने आदि के लिए दासियाँ ही रहें। दासियों को चाहिए कि प्रसाधन सामग्री पहले अपने शरीर पर लगाकर अजमा लें तब राजा को लगाये ।[91] राजा किसी सिद्ध अथवा तपस्वी से अंगरक्षकों के साथ मिले । दूसरे के द्वारा दिये गये कष्टों से वह अपनी रक्षा करे ।[92] मनु ने भी राजा को विष से सावधान किया है । उनके अनुसार दूसरे से नहीं फूटने वाले रसोइयों से भलीभाँति (चकोर आदि को देने से) परीक्षा किये हुए अन्न को विष दूर करने वाले मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके राजा भोजन करे ।[93] मनु ने भी राजा की सेवा में स्त्रियों को प्राथमिकता प्रदान की है ।[94] कामन्दक नीतिसार में भी राजा को विष से सावधान किया गया है और कहा गया है कि अग्नि और पक्षियों को देने के पश्चात् राजा भोजन करे । कामन्दक राजा को रनिवास में जाते समय सचेत रहने

का निर्देश देते हैं तथा कहते हैं कि वाहन, घोड़े, नाव पर बैठते समय एवं किसी भोज में शामिल होते समय सचेत रहना चाहिए ।[95] वह आगे कहते हैं कि राजा को स्त्री और रानी के ऊपर विश्वास नहीं करना चाहिए ।[96]

बाणभट्ट के साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि बाण ने राजा की सुरक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया था । हर्षचरित के छठवें उच्छ्वास में गजसेनाध्यक्ष स्कन्दगुप्त के द्वारा पूर्ववर्ती राजाओं के छल-छद्म के शिकार होने का वर्णन किया गया है । इन प्रसंगों के माध्यम से राजा की सुरक्षा को विशेष महत्व प्रदान करना बाण का अभीष्ट रहा होगा । स्कन्दगुप्त हर्ष से कहता है कि प्रत्येक ग्राम, प्रत्येक नगर, प्रत्येक द्वीप और प्रत्येक दिशा में सारे जनपदों के भिन्न-भिन्न आकार, भिन्न भिन्न आहार तथा विभिन्न बातचीत एवं व्यवहार हो गये हैं अतः स्वभाव से सरलहृदय उत्पन्न अपने देश के आचार के उचित सब पर विश्वास कर लेने की भावना का परित्याग करें ।[97] इसके आगे बाण ने तत्कालीन राजाओं के दृष्टान्त दिये हैं जो सुरक्षा सम्बन्धी विभिन्न असावधानियों के कारण जान गवां बैठे : उनमें पद्मावती नगरी में नागवंशी राजा नागसेन का नाश सारिका के गुप्त विचार देने पर, श्रावस्ती में राजा श्रुतवर्मा की तोते के द्वारा रहस्य जान लेने पर, मृत्तिकावती में राजा सुवर्णचूड़ का निद्रा में बड़बड़ाने से मन्त्रभेद होने जाने पर, सुन्दर सुवर्ण का चामर डुलाने वाली लेख के द्वारा चूड़ामणि में प्रतिबिम्बित मित्र का गुप्त लेख पढ़ने पर, मथुरा के राजा बृहद्रथ को खजाना उखाड़ते हुए विदूरथ की सेना ने मारा, मित्र देव ने नट का वेश बनाकर नृत्य का शौकीन होने पर अग्निमित्र के पुत्र सुमन्त्र को, अश्मक राजा शरभ का संगीत प्रेमी होने पर, मौर्य राजा बृहद्रथ को पुष्यमित्र ने सैनिक निरीक्षण करते हुए, शिशुनाग का पुत्र काकवर्ण शत्रुओं के द्वारा बनाये गये यन्त्र-यान में बैठने पर, राजा शुंभ को उसके अमात्य ने अधिक कामी होने पर, मगधराज को सुन्दरियों के कारण, पुष्णिक वंश के राजा के महाकाल के उत्सव में तालजंघ वंश के पुरुष द्वारा, विदेह के पुत्र गणपति को रसायन रस के शौकीन होने पर, कलिंग के राजा भद्रसेन का स्त्री पर विश्वास करने पर, कारुष के राजा दध्रु को बड़े पुत्र को

उत्तराधिकारी घोषित करने पर, शत्रु के नगर में दूसरे की पत्नी की कामना करने वाले शकपति को चन्द्रगुप्त ने स्त्री वेश बनाकर, सुरक्षा सम्बन्धी असावधानी के कारण मारे गये ।[98] इसके अलावा बाणभट्ट ने उन राजाओं की ओर भी संकेत किया है जिनकी स्त्रियों द्वारा उत्पन्न विपत्ति में फंसकर मृत्यु का आलिंगन करना पड़ा । उनमें सुप्रभा ने पुत्र को राज्य प्राप्त होने के लिए काशिराज महासेन को विष देकर, अयोध्या के राजा जारूध्य को रत्नवती ने कामोत्वेग के कारण, सुह्य के राजा देवसेन को देवकी ने विष सुझाकर, वैरन्ती के राजा रन्तिदेव को सौत-डाह के कारण उसकी रानी ने जादू-टोना का चूर्ण मिलाकर, वृष्णि विदूरथ की हत्या बिन्दुमती ने केशपाश में छिपाये शस्त्र से, सौवीर के राजा वीरसेन की रानी हंसवती ने मणियों में विष का लेपकरके तथा पौरव के राजा सोमक को मदिरा के जहरीले गण्डूष पिलाकर मार दिया ।[99] वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है कि बाण ने यह लम्बी सूची अपने पूर्वकालीन ऐतिहासिक प्रवादों के आधार पर जो सातवीं शताब्दी में प्रचलित थे, प्रस्तुत की है । यह बात ध्यान रखने की है कि इसमें कल्पना का स्थान नहीं जान पड़ता । हमारे प्राचीन इतिहास की परिमित जानकारी के कारण इनमें कुछ ही नामों की पहचान अब तक हो सकी है । शिशुनागवंश, वत्सवंश, प्रद्योतवंश, मौर्यवंश, शुंगवंश, नागवंश, गुप्तवंश आदि जिनके राजाओं का वर्णन बाण ने किया है । भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध राजकुल है ।[100] इस प्रकार स्पष्ट होता जाता है कि बाणभट्ट अपने पूर्व व्यवस्थाकारों की व्यवस्था के पक्षधर थे । इसमें उन्होंने राजा की सुरक्षा में राजनैतिक छल-कपट के साथ-साथ विष, काम के प्रमाद, शत्रु पर विश्वसनीयता, पक्षियों तथा कर्मचारियों से सचेत रहने की अपेक्षा की है । सामन्त प्रथा के उत्कर्ष के फलस्वरूप राजाओं की सुरक्षा की व्यवस्था पर विशेष रूप से सावधानी रखने की आवश्यकता थी ।

बाणभट्ट ने कौटिल्य के उस मत का भी पूरा समर्थन किया है जिसमें राजा की सेवा में स्त्रियों को प्राथमिकता दी गई है । कादम्बरी में राजा शूद्रक की चँवर डुलाने वाली स्त्रियों का ही वर्णन है ।[101] शूद्रक के स्नान के समय स्त्रियाँ ही उन्हें

स्नान कराती है ।[102] राजा तारापीड जब गर्भवती विलासवती को देखने जाते हैं तो परिजनों के साथ अन्तःपुर में प्रवेश करते हैं ।[103] इस प्रकार बाणभट्ट ने अपने साहित्य में राजा की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा है । बी०पी० सिनहा का मत है कि उत्तरगुप्त काल में राजा का महल षड्यन्त्र का अड्डा बन चुका था । इस समय अनेक छोटे-छोटे राज्य थे जो आपस में लड़ते रहते थे, इसलिए राजा का जीवन युद्ध और सामन्तों, मन्त्रियों, अधिकारियों तथा पारिवारिक जनों के आपसी तनाव से खतरे में रहता था ।[104]

राजकुमारों की शिक्षा

जीवन में शिक्षा का विशेष महत्व है । प्राचीन भारत में राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था । कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजा के लिए आन्वीक्षिकी का विशेष महत्व घोषित किया है । इसके अन्तर्गत सांख्य योग और लोकायत ।नास्तिक दर्शन। के साथ-साथ तीनों विद्याओं जिसमें धर्म-अधर्म का, वार्ता में अर्थ-अनर्थ का और दण्डनीति में सुशासन-दुःशासन का ज्ञान प्रतिपादित है । आन्वीक्षिकी को सभी विद्याओं का प्रदीप, सभी कार्यों का साधन और सब धर्मों का आश्रय माना है ।[105] कौटिल्य के अनुसार आन्वीक्षिकी, त्रयी।साम, ऋक् तथा यजुष् का समन्वित नाम।, वार्ता ।कृषि पशुपालन तथा व्यापार।, इन सभी विद्याओं की सुख-समृद्धि दण्ड पर निर्भर है ।[106] मनु ने भी राजा के लिए आन्वीक्षिकी त्रयी, वार्ता और दण्डनीति के अध्ययन पर जोर दिया है ।[107] प्राचीन अभिलेखों से भी राजाओं की शिक्षा पर यत्र-तत्र प्रकाश पड़ता है । खारवेल के हाथीगुम्फा लेख में उसे लेख, रूप ।मुद्रा।, गणना ।लेखा। न्याय प्रशासन और गन्धर्व वेद का ज्ञाता कहा गया है ।[108] इसी प्रकार रुद्रदामन को जूनागढ़ लेख में व्याकरण अर्थ, संगीत और तर्क का जानकार बतलाया गया है । उसमें कहा गया है कि वह घुड़सवारी में, हाथी और रथ की सवारी में प्रवीण था । उसे ढाल, तलवार के प्रयोग में महारथ हासिल थी ।[109] गुप्तकाल में समुद्रगुप्त शस्त्र एवं शास्त्र का ज्ञाता एवं संगीत विशारद था ।[110]

सातवीं शताब्दी ईसवी तक आते-आते शिक्षा के पटल पर अनेक प्रकरण उभर कर आ गये । दण्डी ने दशकुमारचरित में राजकुमारों की शिक्षा में जुआ, चोरी, रत्नों की पहचान, जादू, नशा आदि विषयों को भी स्थान दिया गया था ।[111] इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि ये विषय प्राचीन काल में राजकुमारों की शिक्षा में सम्मिलित नहीं थे । इन विषयों को बदली हुई राजनीतिक परिस्थिति के फलस्वरूप इस समय तक राज्यों में ऊहापोह एवं तनाव का वातावरण हो चुका था । समाज में चोरी, जुआ, जादू, नशा आदि का प्रचलन हो गया था जिस पर काबू पाने के लिए राजकुमारों को इसके विषय में शिक्षा देना आवश्यक हो गया था ।[112]

बाण ने राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा का जैसा चित्रण कादम्बरी में किया गया है वैसा अन्यत्र नहीं है । कादम्बरी में बाण चन्द्रापीड की शिक्षा के बारे में कहते हैं कि जब चन्द्रापीड छः वर्ष का था तभी उसके पिता तारापीड ने गुरुकुल विद्यालय की स्थापना करके आचार्यों को उसे सौंप दिया था ।[113] चन्द्रापीड को जिन विषयों की शिक्षा प्रदान की गयी थी उनकी एक लम्बी सूची बाण ने दिया है जिसमें - व्याकरण, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, न्याय, वैशेषिक दर्शनशास्त्र, स्मृति शास्त्र, नीतिशास्त्र, व्यायाम विद्या, धनुष, चक्र, ढाल, तलवार, शक्ति, तोमर, परशु और गदा आदि आयुधों को चलाने की शिक्षा, रथारोहण, हाथी एवं घोड़े पर चढ़ने की शिक्षा, वीणा, बंशी, मृदंग, मंजीरे, तूती आदि वाद्यों की शिक्षा, नाट्यशास्त्र, गान्धर्ववेद, हस्तिशिक्षा, घोड़ों की उम्र जानने की विद्या, सामुद्रिक शास्त्र, चित्रकर्म, दूरवीक्षणादि द्वारा ग्रह-नक्षत्रादि के निर्णय की विद्या, पुस्तक व्यापार, अक्षर-विन्यास, द्यूत करना, गन्ध-द्रव्य निर्माण, पक्षियों के शब्द से शुभा-शुभ के निर्णय की शिक्षा, ज्योतिषशास्त्र, रत्न परीक्षा, काष्ठ द्वारा वस्तु निर्माण वास्तु विद्या, हाथी दाँत से वस्तु निर्माण, आयुर्वेद, मन्त्रणा करण, विष चिकित्सा, सुरंग निर्माण, तैरने, लाँघने, रतिशास्त्र, इन्द्रजालविद्या (जादू), कथाओं, नाटकों, महाभारत, पुराण, इतिहास, रामायण आदि ग्रन्थों, सब देशों की भाषाओं के ज्ञान,

पारिभाषिक संकेतों, शिल्पकार्य तथा छन्दशास्त्र का उल्लेख किया है ।[114] बाण के द्वारा प्रस्तुत सूची में कुछ नये विषयों का उल्लेख भी किया गया है जिसमें पुस्तक व्यापार शब्द नया है । वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार इससे सचित्र ग्रन्थ लिखवाने की प्रथा का परिचायक माना जा सकता है । इसका एक अन्य अभिप्राय मिट्टी के खिलौनों के निर्माण की विधा से है ।[115] इसी प्रकार सुरंगोपभेद शब्द भी महत्वपूर्ण है । अग्रवाल महोदय के अनुसार यह सुरंग का भेद युद्ध विधा से सम्बन्ध रखता है जो दुर्गों को तोड़ने के लिए आवश्यक थी ।[116] बाण ने सबसे महत्वपूर्ण विषय विदेशी भाषाओं के अध्ययन को प्रस्तुत करके नया आयाम दिया है जिसका उल्लेख उज्जयिनी वर्णन में भी किया गया है कि उज्जयिनी के लोग सभी भाषाओं एवं लिपियों के पारंगत हैं ।[117] अग्रवाल महोदय का मन्तव्य है कि इन विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध तत्कालीन पाठ्यक्रम में रहता होगा तभी व्यापार और राजनीति के सम्बन्ध दूर देशों के साथ जुड़े रहते थे । सर्वदेशभाषासु के साथ सर्वसंज्ञासु का तात्पर्य उन भाँति-भाँति की संज्ञा लिपियों से है जिनमें गुप्त संदेश आते या भेजे जाते थे ।[118] इसके अलावा हर्षचरित में बाण ने हर्ष और राज्यवर्धन के विषय में लिखा - प्रतिदिन शस्त्र के अभ्यास से दाग पड़े हुए तथा अभ्यासकाल में धनुष की टंकार से मानों निकट में उपभोग की भावना से दिगंगनाओं के साथ बात चीत करते थे ।[119] बाण के इन वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय राजकुमारों की शिक्षा में ज्यादा जोर सैनिक शिक्षा पर दिया जाता था ।

हर्षचरित में राजकुमारी की शिक्षा के बारे में भी संकेत है । राज्यश्री को नृत्य, गीत, वाद्य के साथ-साथ समस्त कलाओं की शिक्षा प्रदान की गई थी ।[120] दक्षिण भारत में भी राजकुमारों को शिक्षित करने की परम्परा उत्तर भारत जैसे थी । चालुक्य नरेश पुलकेशिन प्रथम को मनुस्मृति, पुराण, रामायण और महाभारत का ज्ञान था ।[121] मंगलेश को सभी शास्त्रों का ज्ञाता कहा गया है ।[122] विक्रमादित्य ने अपने पुत्र और पौत्र को प्रशासनिक कार्यों की शिक्षा दी ।[123] विजया-

दित्य को सभी शास्त्रों पर अधिकार था ।[124] इस तरह राजकुमारों की शिक्षा पर सदैव कुछ परिवर्तनों के साथ जोर दिया जाता रहा ।

दैनिक कार्य

कौटिल्य ने राजा के दैनिक काम करने की जो सूची पेश की है वह आदर्श राजा की झलक प्रस्तुत करता है । कौटिल्य दिन और रात को आठ-आठ भागों में विभाजित करते हैं जिनको नाडिका कहा गया है । पूर्वार्द्ध के प्रथम भाग में राजा रक्षा-सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण करे और बीते हुए दिन के आय-व्यय की जाँच करे । दूसरे भाग में पुरवासियों तथा जनपदवासियों के कार्यों का निरीक्षण, तीसरे भाग में स्नान, भोजन, स्वाध्याय, चौथे भाग में बीते दिन की अवशिष्ट आमदनी को संभाले तथा विभिन्न कार्यों पर अध्यक्ष आदि की नियुक्ति, उत्तरार्द्ध के पाँचवें भाग में मन्त्रिपरिषद से परामर्श तथा गुप्तचरों से बातचीत, छठवें भाग में स्वतन्त्र विहार एवं विचार करे, सातवें भाग में हाथी, घोड़े, रथ तथा अस्त्र-शस्त्रों का निरीक्षण तथा आठवें भाग में सेनापति से युद्ध आदि के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करे ।[125] रात्रिचर्या के बारे में कौटिल्य कहता है कि रात्रि के पहले भाग में वह गुप्तचरों को देखे, दूसरे भाग में स्नान, भोजन, स्वाध्याय, तीसरे भाग में शयन और चौथे-पाँचवे भाग तक सोता रहे । पुनः रात्रि के छठवें भाग में जागकर अर्थ-शास्त्र सम्बन्धी तथा दिन में किये जाने योग्य कार्यों पर विचार, सातवें भाग में गुप्त मन्त्रणा और गुप्तचरों को यथास्थान भेजे तथा अन्तिम एवं आठवें भाग में आचार्य पुरोहित एवं ऋत्विक् से आशीर्वाद ग्रहण करे ।[126] सिन्हा का मत है कि यह कार्यक्रम एक आदर्श प्रस्तुत करता है जिसमें राजा तीन बजे सुबह उठकर अधिकतम समय राज्य कार्य में देता है और बहुत थोड़ा सा समय अपने व्यक्तिगत मनोरंजन एवं सुख पर खर्च करता है ।[127] राजा के कार्यक्रम पर मनु ने कुछ प्रकाश डाला है । उनके अनुसार राजा रात के पिछले पहर में उठकर शौचादि के अनन्तर सावधान होकर

प्रतिदिन अग्निहोत्र तथा ब्राह्मणों का सत्कार करके श्रेष्ठ सभा में जाय ।[128] सभा में स्थित हो राजा सब प्रजा को सन्तुष्ट करके विदा की और सब प्रजा को विदा करके मन्त्रियों के साथ सलाह करे ।[129] उसके बाद राजा विश्राम करके और खेद रहित होकर अकेला एवं मन्त्रियों सहित मध्याह्न के अर्द्धरात्रि के समय धर्म, अर्थ, काम इनकी चिन्ता करे ।[130] याज्ञवल्क्य के अनुसार राजा को कोश की रक्षा करनी चाहिए और मन्त्रियों के साथ गूढ़ बातों पर विचार करना चाहिए । उसके पश्चात् सेनापति के साथ सेना का निरीक्षण करके प्रगति आख्या लेनी चाहिए । सायंकालीन क्रिया समाप्त करके गुप्तचरों से गोपनीय आख्या लेनी चाहिए, इसके बाद उसे मनो-रंजन तथा वेदाभ्यास में समय लगाना चाहिए । इसके पश्चात् उसे शयन कक्ष में जाना चाहिए ।[131] कामन्दक के समय तक आते-आते राजा के दैनिक कार्यक्रम में अन्तर आ जाता है । कामन्दक के अनुसार - राजा प्रातःकाल उठकर पवित्र होकर देवाराधन करे, तत्पश्चात् वस्त्राभूषण धारण कर मन्त्रियों, पुरोहित, मित्रों तथा विदेशी लोगों से मिले । इसके पश्चात् अच्छे वाहन पर बैठकर राजा को स्वयं घोड़ों, हाथियों तथा सैनिकों की सुख सुविधा का निरीक्षण करे ।[132] गुप्तकाल में राजा के कार्यक्रम का कुछ अच्छा वर्णन मिलता है । मालविकाग्निमित्र नाटक में जब सूर्य आकाश मण्डल के मध्य में पहुँच जाता है तो विदूषक दावे के साथ कहता है कि राजा के स्नान और भोजन का समय हो गया है ।[133]

उत्तरगुप्तकाल के साहित्यिक स्रोतों से राजा के दैनिक कार्यक्रम की एक झाँकी मिलती है । बाण के हर्षचरित एवं कादम्बरी में इसका विस्तृत विवरण मिलता है । बाण कहता है कि जब वह अचिरवती के तट पर मणिपुर नामक स्कन्धावार में हर्ष से मिलने गया तो हर्ष भोजन के बाद जब एक पहर दिन रहा तो लोगों से मिले ।[134] इसके अलावा बाण लिखता है कि चन्द्रापीड सुबह होते ही शिकार के लिए चला जाता था । दोपहर होने पर वह लौटा इसके बाद स्नान किया । देवाराधन के बाद भोजन किया । इसके पश्चात् शूद्रक प्रातःकाल के प्रथम पहर में सभागृह में

में उपस्थित हो जाता था । इसके अनन्तर राजभवन की ओर प्रस्थान किया । वहाँ तारापीड के साथ दर्शनादि कर अपने महल में जाकर रात बिताई ।[135] राजा शूद्रक के वर्णन में बाण लिखता है कि शूद्रक प्रातःकाल के प्रथम पहर में सभा गृह में उपस्थित हो जाता था । इसके अनन्तर जब मध्याह्न की सूचना देते हुए घड़ी की समाप्ति पर बजने वाले नगाड़ों के ध्वनि के साथ ही दोपहर का शंख बज उठा उसे सुनकर स्नान की बेला अति निकट जान सभा विसर्जित कर दी गई । तत्पश्चात् राजा स्नान करने गया वहीं उसने व्यायाम किया इसके बाद स्नान करके देवमन्दिर में आया । देवताराधन के उपरान्त वस्त्रालंकार से विभूषित हो भोजन किया । भोजन के बाद धूमवर्ति का पान करके भुक्तवास्थान मण्डप में गया ।[136] इन वर्णनों के आलोक में सिन्हा[137] का मत है कि कादम्बरी में राजा के कार्यक्रम का विस्तृत ब्यौरा यत्र-तत्र मिलता है । राजा प्रातःकाल उठता था । उसका पाँच नाडिका धार्मिक क्रिया के लिए, पाँच नाडिका हुए काम के परिवीक्षण के लिए, दस नाडिका कानून से सम्बन्धित काम के लिए, पाँच नाडिका स्नान के लिए, तीन नाडिका भोजन के लिए, पाँच नाडिका मनोरंजन के लिए तथा दो नाडिका समय सायंकालीन धार्मिक क्रिया के लिए थी । सायंकाल पुनः सात नाडिका समय नृत्य के लिए, सात नाडिका समय कामक्रीड़ा के लिए और सात नाडिका समय सोने के लिए निश्चित था । सिन्हा का मन्तव्य है कि इस काल तक राज्य के प्रशासनिक कार्य से अधिक महत्वपूर्ण व्यक्तिगत कार्य हो चुके थे ।[138] जिसकी पुष्टि बाण के वर्णन से भी होती है कि राजा शूद्रक का जिस प्रकार नाना प्रकार के क्रीडाओं और परिहासों में कुशल मित्रों की मण्डली से दिन बीतता था उसी प्रकार उन्हीं के बीच उसकी रात बीतती थी ।[139] ह्वेनसांग लिखता है कि हर्ष का दिन तीन भागों में बँटा था जिसमें प्रथम भाग राज्य का प्रशासनिक कार्यों में तथा दो भाग धार्मिक कृत्य में व्यतीत होते थे। वह काम से कभी थकता नहीं था और दिन उसके लिए छोटा पड़ता था ।[140] बाण के हर्षचरित से राजा के दैनिक कर्म एवं कर्तव्यों में गिरावट का आभास मिलता है । प्राचीन काल में जहाँ कौटिल्य ने राजा के लिए काम-क्रोधादि छः शत्रुओं के परित्याग

की सलाह दी है[141] वहीं जहाँ एक ओर बाण राजा के दोष को बताकर तत्कालीन राजत्व का उपहास किया है । बाण के अनुसार बुद्धिहीन राजा कामदेव की भाँति कष्टदायक होता है । मोहवश जीवन सामग्री गलत स्थान में पहुँचा देता है ।[142] वहीं हर्ष को यद्यपि दोषमुक्त दिखाने का प्रयास भी किया है । हर्ष अमृतमय है, न तो इनकी दृष्टि अहंकार के काल कूट विष से भीनी हुई क्रूर है, न वाणी दर्परोग से गला जकड़ जाने से भर्राई है । हर्ष निर्मल चित्त वाले सज्जनों को ही रत्न समझता है अपने प्रभुत्व को अनुचरों का उपकरण मानता है । वैदग्ध्य को विद्वानों का उपकरण मानता है । धन वैभव को बंधु बांधवों का उपकरण मानता है । अपने सर्वस्व को ब्राह्मणों का उपकरण मानता है ।[143] बाण हर्ष के मदिरा से सुवासित मुख का[144] उल्लेख करता है । इससे तत्कालीन राजाओं के विलास का आभास होता है ।

हर्ष के दरबार में राजकार्य के अतिरिक्त हँसी-मजाक का भी वर्णन हर्षचरित में मिलता है ।[145] जिससे राजाओं के दरबार में ऐसा लगता है कि सदैव गम्भीर विषयों पर ही विचार नहीं होता रहता था अपितु हास्य विनोद के क्रम भी दैनिक दिनचर्या के अंग रहे होंगे । इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन काल में राजा देश एवं प्रजा के प्रति जो उत्तरदायित्व थे उनमें शनैः शनैः ह्रास आ रहा था ।

राजा के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व

राजा के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्वों पर प्राचीन भारतीय व्यवस्थाकारों ने विशेष जोर दिया है । कौटिल्य कहता है कि राजा को प्रजा की शिल्पियों से रक्षा करने के लिए तीन मन्त्री ।प्रदेष्टा। नियुक्त करे ।[146] इसके आगे वह कहता है कि प्रजा की रक्षा व्यापारियों[147], दैवी आपत्तियों[148] एवं गुप्त षड्यन्त्रकारियों[149] से करे । इस तरह प्रजा की रक्षा करना राजा का एक आवश्यक कर्तव्य माना जाता था जिसका समर्थन मनु ने भी किया है कि जो राजा मोह से अपने बुरे

को नहीं पहचानकर अपनी प्रजा को कष्ट देता है वह शीघ्र ही राज्य से भ्रष्ट होकर कुल सहित नष्ट हो जाता है।[150] कहा है कि प्रजा की रक्षा करना राजा का परम धर्म है। याज्ञवल्क्य का मन्तव्य है कि राजा को प्रजा की रक्षा पिता की भाँति करना चाहिए।[151] आगे मनु प्रजापालन ही क्षत्रिय का श्रेष्ठ धर्म मानते हैं।

क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम् - 7.144

किनसे प्रजा की रक्षा की जाय इस पर प्रकाश डालते हुए याज्ञवल्क्य आगे कहते हैं कि राजा चाट (सैनिक) तस्कर (चोर), दुश्चरित्र, अपराधी और विशेष रूप से कायस्थ से प्रजा की रक्षा करे।[153] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में राजा के लिए पाँच प्रकार के त्याग बताये गये हैं :- अपराधी को दण्ड देना, भले आदमियों का सम्मान करना सत्पथ से कोष की वृद्धि करना, वादी के साथ निष्पक्ष भाव से विचार करना तथा साम्राज्य की रक्षा करना।[154] कामन्दक का विचार है कि राजा को अपनी प्रजा की रक्षा पुरस्कार और दण्ड को बराबर बाँट कर करना चाहिए।[155] कामन्दक के उक्त विचार अशोक के राजुक अधिकारी के कर्तव्य का स्मरण दिलाता है जिसमें अशोक ने राजुक को प्रजा के लिए पुरस्कार तथा दण्ड दोनों देने के लिए अधिकृत किया था।[156] कामन्दक आगे उन लोगों का उल्लेख करते हैं जिनसे राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिए, इनमें आन्तरिक शत्रु, जैसे चोर, राजा के अधिकारी, राजा के प्रशंसक, सत्ता के लालची और देश के शत्रु प्रमुख हैं।[157]

गुप्तकालीन अभिलेख भी राजा द्वारा प्रजा के संरक्षकत्व की पुष्टि करते हैं। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में उसे सज्जनों के उत्कर्ष एवं दुष्टों के अपकर्ष का कारण तथा आर्त, दीन, अनाथ एवं रुग्ण व्यक्तियों का उद्धारक कहा गया है।[158] कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् में दुष्यन्त स्वीकार करता है कि राजा का कर्तव्य कमजोर विधवा और अनाथों का पिता की तरह सुरक्षा करना है।[159] कात्यायन स्मृति में स्पष्ट निर्देश है कि राजा को अनाथ का रक्षक, गृहविहीन का गृह, पुत्र-विहीन का पुत्र और पिताविहीन का पिता होना चाहिए।[160]

बाणभट्ट के साहित्य से प्रजा संरक्षकत्व की पुष्टि होती है । बाण के अनुसार रुग्ण प्रभाकरवर्धन मृत्यु के पूर्व हर्ष को समझाते हुए कहता है कि राजा तो प्रजाओं से अपने आपको बन्धुमान समझते हैं न कि पिता आदि सगोत्र जनों से ।[161] आगे पुनः कहता है कि पुनः कहता है कि 'प्रजाओं की रक्षा करो' 'परिजन की रक्षा करो' ।[162] बाण कादम्बरी में राजा तारापीड की प्रजा की सुरक्षा में सिद्ध हस्त बताते हुए कहता है कि शुकनाश नामक मन्त्री के ऊपर राज्य का भार सौंपकर प्रजा को स्वस्थ कर राजा अन्य अवशिष्ट कार्यों को देखने लगे ।[163]

तारापीड प्रजावर्ग के अनुराग के कारण बीच-बीच में स्वयं दर्शन देता था[164] कादम्बरी के उत्तर भाग में जो बाण के पुत्र भूषणभट्ट द्वारा प्रणीत है, तारापीड अपने पुत्र चन्द्रापीड को राजतंत्र की शिक्षा देता हुआ कहता है कि प्रजाओं का पालन एक कठिन काम होने के कारण राजा को अनेक व्यवहारों का उपयोग करना पड़ता है ।[165] आगे तारापीड अपने राज्य काल में प्रजा के सुख दुःख पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि हमने लोभ से प्रजाओं को कभी पीड़ित नहीं किया ।[166] बाण-भट्ट के आश्रयदाता सम्राट हर्ष की रत्नावली नाटिका के प्रस्तावना श्लोक एवं भरत वाक्य में राजा एवं प्रजा के लिए सुख की कामना की गई है ।[167] नागानन्द नाटक के भरत वाक्य में प्रजा के सुख के लिए कहा गया है कि मेघगण उचित समय पर वर्षा करें । मयूरगण प्रसन्न होकर नाचें । पृथ्वी उगे हुए हरे भरे शस्यों की चादर सदा ओढ़ा करे । सब विपत्ति नष्ट हो जाय । मत्सरहीन होकर प्रजा लोग सुकृत्यों का संचय किया करें ।[168]

राजाओं का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य देश की सुरक्षा होती थी जिसके लिए राजाओं को युद्ध-अभियान सम्पन्न करना आवश्यक हो जाता था । मौर्य साम्राज्य का संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य ने जहाँ एक ओर एक कुख्यात राजवंश के शासन से देश के एक भाग का उद्धार किया था वहीं दूसरी ओर देश के एक दूसरे भाग को विदेशी

दासता से मुक्ति दिलायी थी। वह युद्ध में जितना स्फूर्तिमान था, शान्ति काल में भी उतना ही कर्मठ था।[169] प्राचीन भारत के महान् शासक युद्ध का आश्रय लेकर समय समय पर देश की प्रजा की रक्षा आक्रमणकारियों तथा आन्तरिक षड्यन्त्रकारियों से करते रहे। राजा के लिए युद्ध की अनिवार्यता मनु ने भी स्वीकार किया है। मनु का कथन है कि जब राजा देखे कि साम, दाम और भेद इन तीन उपायों से भी किसी प्रकार जय की संभावना नहीं है तब वह सब प्रकार से तैयार होकर ऐसा युद्ध करे कि जिससे वह शत्रु को जीत ले।[170] गुप्तकाल में युद्ध की परम्परा जारी रही। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में वर्णित है कि उसने सैकड़ों युद्धों में भाग लिया तथा सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतने के कारण उत्पन्न उसकी कीर्ति निखिल अवनितल में विचरण करती हुई स्वर्ग लोक में पहुँच चुकी थी।[171] कालिदास के रघुवंश में रघु की विजय का विस्तृत उल्लेख किया गया है कि उसके घोड़े पश्चिम में वंक्षु नदी तक पहुँच गये।[172]

गुप्तोत्तर काल में एक शक्तिशाली केन्द्रीय राज्य-सत्ता का अभाव होने के कारण युद्ध प्रायः आये दिन होते रहते थे। कादम्बरी में राजा तारापीड के विषय में बाण लिखता है कि सप्तद्वीपरूपी कंकणवाली पृथ्वी को जीतकर मित्र के समान अत्यन्त विश्वासी शुकनास नामक अपने मन्त्री को राज्य का भार सौंप दिया था।[173] बाण आगे चन्द्रापीड की विजय का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि चन्द्रापीड ने राज्याभिषेक के पश्चात् दिग्विजय करने का संकल्प लिया जिसमें उसने उन्नतों को नीचा करता, नम्रों (अपने से अवनतों) को दान-मानादि द्वारा उन्नत करता भयभीतों का आश्वस्त करता, शरणागतों की रक्षा करता, सम्पदों को निर्मूल करता, दुष्ट शत्रुओं का नाश करता, जगह-जगह राजपुत्रों का अभिषेक करता, रत्नों का उपार्जन करता, वशीभूत राजाओं के समीप से उपहार ग्रहण करता, करों (प्रजा द्वारा राजदेय द्रव्यों) को लेता, विजित देश-समूह में शासक की नियम पद्धति का आदेश देता, जगह जगह अपने विजय-चिन्हों को स्थापित करता, सब देश में अपनी जय घोषणा करता, विजित राजाओं द्वारा अधीनता सूचक शासक पत्र लिखता, समुद्र-

तीरवर्ती वनों को मर्दित करता हुआ पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशा को जीत लिया ।[174] वासुदेवशरण अग्रवाल का मन्तव्य है कि चन्द्रापीड की यह विजय यात्रा 'कृत्स्नपृथ्वीजयार्थ' दण्डयात्रा करने वाले विजिगीषु सम्राटों की विजय यात्रा के समान है ।[175]

बाणभट्ट ने हर्षचरित में भी विजीगीषु राजा का चित्रण मार्मिकता से किया है । प्रभाकरवर्द्धन के अनेक युद्धों में सफलता प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है जिसने हूणों, सिन्धुदेश, गुर्जर, गान्धार, लाटदेश तथा मालवदेश को जीत लिया था ।[176] इसके अलावा राज्यवर्द्धन को सीमा पर हूणों के साथ युद्ध करते हुए वर्णित किया गया है ।[177] बाण ने हर्ष के विषय में महत्वपूर्ण विजयों की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि उसने सिन्धुराज के मद का मंथन करके राजलक्ष्मी को प्राप्त किया ।[178] संभवतः पश्चिम में हर्ष का राज्य सिन्धु नदी के मुहाने तक था ।[179] आगे बाण लिखता है कि हर्ष ने हिमालय के दुर्गम प्रदेश के राजाओं से कर ग्रहण किया ।[180] इसका आशय विद्वानों ने यह निकाला है कि हिमालय का यह क्षेत्र वर्तमान हिमालय प्रदेश के कुल्लू एवं कांगड़ा जिलों तथा नेपाल के कतिपय भूभागों से इसका आशय रहा होगा ।[181] इसके अलावा बाण ने हर्षचरित में दिग्विजय अभियान की तैयारी तथा प्रयाण का उल्लेख किया है[182] किन्तु किन-किन क्षेत्रों को विजित किया गया ? इसके विषय में बाण मौन हैं । ह्वेनसांग के विवरण से ऐसा ज्ञात होता है कि छः वर्षों तक निरन्तर युद्ध के पश्चात् हर्ष ने पाँच गौड़ों पर अधिकार स्थापित कर लिया था ।[183] बाण ने अपने साहित्य में पारम्परिक चक्रवर्तित्व की भावना का उल्लेख किया है । हर्षचरित में बाण लिखता है कि दिग्विजय यात्रा के समय जब हर्ष सरस्वती के तट पर ठहरे, उस समय ग्रामाक्षपटलिक द्वारा वृषभांकित स्वर्ण मुद्रा देते समय भूमि पर गिर गयी जिसका आशय निकाला गया कि भविष्य में पृथ्वी हर्ष की एकछत्र शासन मुद्रा से अंकित होगी ।[184] इस बात से यह संकेत मिलता है कि गुप्तोत्तर काल में भी समस्त पृथ्वी पर सम्पूर्ण भारत अधिकार स्थापित करना राजा अपना परमकर्तव्य मानते थे ।

बाणभट्ट के समकालीन दक्षिणी राजवंशों में भी विजय-उल्लास देखने को मिलता है। चालुक्यवंशी पुलकेशिन द्वितीय ने सकल 'दक्षिणापथ' को अपने झंडे के नीचे ले लिया था।[185] यहाँ तक कि उसने उत्तरापथनाथ हर्ष के साथ युद्ध किया जिसमें हर्ष को मात खानी पड़ी। इस प्रकार प्रत्येक शासक की यह आन्तरिक इच्छा होती थी कि वह अपने साम्राज्य का विस्तार अधिक से अधिक करे और बाह्य शत्रुओं को सैन्यवाद के बल पर परास्त करे।

गुप्तोत्तर काल में प्राप्त साहित्यिक एवं अभिलेखीय प्रमाणों से इस बात का संकेत मिलता है कि राजा वर्णाश्रम व्यवस्था की पुनर्स्थापना करता था। मनु का मन्तव्य है कि क्रमशः से अपना अपना धर्म करने वाले ब्राह्मण आदि चारों वर्णों की और चारों आश्रमों की रक्षा के लिए प्रजापति ने राजा को उत्पन्न किया।[186] बाणभट्ट ने अपने साहित्य में राजाओं को वर्णाश्रम धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा में तत्पर बताया है। वह लिखता है कि राजा तारापीड ने अज्ञान के प्रसार से मलिन शरीर वाले और पाप से भरे कलिकाल द्वारा धर्म मूल से चलायमान किये जाने पर उसे रोककर श्रुति और स्मृति का विधान प्रवर्तित कर उस धर्म को फिर स्थापित किया।[187] हर्षचरित में बाण ने मनु के समान महाराज हर्ष को वर्णाश्रम व्यवस्था का रक्षक कहा है।[188] आगे बाण लिखता है कि श्रीकण्ठ जनपद में ब्राह्मण आदि वर्णों की मर्यादा एक में एक हुली मिली न थी।[189] बाणभट्ट ने पुष्यभूतिवंश के संस्थापक पुष्यभूति के कर्तव्यों की ओर संकेत करता हुआ लिखता है कि पुष्यभूति ने समस्त ब्राह्मण आदि वर्णों के नियमार्थ धनुष धारण किया था।[190]

अभिलेखीय साक्ष्य भी राजा के कर्तव्य के रूप में वर्णाश्रम व्यवस्था की पुन-र्प्रतिष्ठा के महत्वपूर्ण पक्ष का उद्घाटन करते हैं। मौखरि शासक हरिवर्मा[191] एवं आदित्यवर्मा[192] ने क्रमशः असीरगढ़मुद्रालेख एवं हरहा अभिलेख में इस बात का दावा किया है कि उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था को सुदृढ़ किया। इसी प्रकार बाणभट्ट के आश्रयदाता सम्राट हर्ष के मधुबन एवं बांसखेड़ा अभिलेखों में प्रभाकरवर्धन

को वर्णाश्रम व्यवस्था की पुनर्स्थापना का श्रेय दिया गया है ।[193] ऐसा अनुमान किया जाता है कि गुप्त वंश के अवसान के बाद सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में बहुत उथल-पुथल मची हुई थी । इस प्रवृत्ति को राजाओं ने रोकने का प्रयास किया था । कौटिल्य ने भी राजा को इस प्रकार की स्थिति का सामना करने के लिए निर्दिष्ट किया है । राजा के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए कौटिल्य कहता है कि लोक रक्षा के लिए सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखना, चारों वर्णों के कर्तव्यों को समुचित रूप से संचालित करना राजा का प्रमुख कर्तव्य है ।[194] सामाजिक जीवन में व्याप्त अव्यवस्था और संक्रमण के सन्दर्भ में कुछ अन्य साक्ष्य भी परोक्ष रूप से प्रकाश डालते हैं । ईशान वर्मा के हरहा अभिलेखों में इस प्रकार का वर्णन मिलता है कि कलियुग के दुष्प्रभाव से आच्छादित सत्पथ की रक्षा उसने अपने सद्गुणों से की ।[195] उल्लेखनीय है कि कलियुग के प्रभाव के फलस्वरूप घटित वर्णाश्रम व्यवस्था सम्बन्धी संभ्रम की स्थिति का उल्लेख पुराणों में भी मिलता है ।[196] इस प्रकार अभिलेखीय साक्ष्य भी संकेत करते हैं कि गुप्तोत्तर काल में विभिन्न वर्ण शास्त्रानुरूप विहित अधिकारों एवं कर्तव्यों से च्युत हो रहे थे, जिसे प्रकारान्तर से पूर्व मध्यकाल में सामाजिक गतिशीलता का एक उदाहरण माना जा सकता है ।

राजा न्याय का आधार (अथवा वितरक) और अपील का अन्तिम अधिकारी होता था । उसका विधायी कार्य यद्यपि सीमित था । विधि स्रोत के रूप में वेद, धर्मशास्त्र से सम्बन्धित साहित्य, रीति-रिवाज, कृषकों, व्यापारियों और शिल्पियों के दस्तूर, तर्क और विद्वानों की सभा का सामूहिक निर्णय का उपयोग किया जाता था ।[197] यह आवश्यक था कि प्रधान न्यायाधीश धर्मशास्त्र के विधि विहित स्रोतों के आधार पर निर्णय दे, यदि सम्बन्धित साहित्य न उपलब्ध हो तो देश की प्रथा के अनुसार निर्णय होना चाहिए ।[198] कौटिल्य भी अपराधी की हर स्थिति से अवगत हो जाने के बाद ही निर्णय देने की सलाह देता है । कौटिल्य कहता है कि राजा और अमात्यों को साथ लेकर प्रदेष्टा को चाहिए कि वह दण्ड देते समय अपराध को, अपराध के कारणों को, अपराधी की हैसियत को, वर्तमान

तथा भावी परिणामों को एवं देश-काल की स्थिति को भलीभाँति सोच समझ ले । तदनन्तर न्याय के अनुसार प्रथम, मध्यम तथा उत्तम आदि दण्डों की सजा सुनाये।[199] राजा यद्यपि न्याय का अन्तिम अधिकारी होता है तथापि धर्मशास्त्रों एवं विधि वेत्ताओं के अनुसार उसे सोच-समझ कर निर्णय देना आवश्यक होता है । वह निर्दोष व्यक्ति को दण्ड देने का अधिकारी नहीं है । कौटिल्य इस विषय में अपना कड़ा मन्तव्य प्रस्तुत करते हुए कहता है कि जो राजा अदण्डनीय व्यक्ति को दण्ड दे, प्रजा को चाहिए कि वह उस दण्ड का तीस गुना राजा से वसूल करे ।[200] इस बात की पुष्टि मनु करते हुए कहते हैं कि अदण्डनीय पुरुषों को दण्ड देने से और दण्ड योग्य पुरुषों को दण्ड न देने से राजा का बड़ा अपयश होता है ।[201] मनु राजा को इस बात की छूट प्रदान करते हैं कि वह यदि किसी कारण से कार्य की देखभाल न कर सके तब कार्य की देखरेख के लिए किसी पण्डित ब्राह्मण को नियत करे और वह विद्वान् तीन सभासदों के साथ धर्म सभा में पधार कर राजा के कामों को अच्छी भाँति देखे ।[202] याज्ञवल्क्य भी इस बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि राजा यदि किसी कारण से राजकार्य न देख सके तो विद्वान् ब्राह्मण के साथ सभासदों को नियुक्त करे ।[203] इसी प्रकार कात्यायन[204] और शुक्र[205] ने भी नियम की पुष्टि की है । वृहस्पति का अभिमत है कि यदि व्यक्ति को न्यायाधीश से प्राप्त न्याय से सन्तोष न हो तो राजा को चाहिए कि विद्वान् ब्राह्मणों के साथ सलाह मशविरा करके न्याय को पुनर्निरीक्षित करे और गलत न्याय देने वाले को दण्ड दे ।[206] इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अपील का अन्तिम अधिकारी होते हुए भी राजा को स्वतन्त्र रूप से मनमानी न्याय करने का अधिकार नहीं था, वह मात्र शास्त्रों, विद्वान् ब्राह्मणों के मन्तव्यों और रीति-रिवाजों को आधार मान कर ही न्याय कर सकता था ।

बाणभट्ट की कृति हर्षचरित एवं महाराजाधिराज हर्ष के मधुबन एवं बांसखेड़ा अभिलेखों से राजा की राजकीय निरीक्षण यात्राओं की झलक मिलती है । बाणभट्ट के समय राजाओं में मौर्यकालीन आदर्शात्मक राजनैतिक प्रणाली की पुष्टि होती है ।

मौर्य शासक अशोक जनता के कल्याण के प्रति चिन्तित रहता है और इसे एक महत्व पूर्ण उत्तरदायित्व समझता है । अशोक इस बात में इतनी दिलचस्पी लेता है कि वह जनता के नैतिक मार्गदर्शन का काम करता है । वह यह सब कुछ पितृभाव से करता है । वह अपने प्रजा से व्यक्तिगत सम्पर्क रखने की इच्छा व्यक्त करता है । कुछ हद तक इसी काम के लिए समय-समय पर उसने सारे साम्राज्य का दौरा किया।[207]

बाणभट्ट के हर्षचरित में भी राजा के दौरों का संकेत मिलता है क्योंकि बाण स्वयं जब हर्ष से मिलने जाता है तो अचिरवती (राप्ती) के तट पर मणितारा स्थान पर स्कन्धावार में मिलता है ।[208] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संभवतः यह हर्ष का राजकीय दौरे का समय रहा होगा । इस प्रकार के दौरों का प्रयोजन राजाओं के बीच संभवतः इस बात का द्योतक रहा होगा कि वे रात्रि में वेश बदल कर टहले और निरीक्षण करे कि उनके सरकार और प्रशासन के विषय में लोगों का क्या मत है ? तथा अगले दिन सरकारी रिपोर्ट और वास्तविकता की तुलना करे ।[209] इस प्रकार के अचानक दौरे नगर के प्रशासनिक ढाँचे को मजबूती प्रदान करते हैं । बाणभट्ट के समकालीन चीनी यात्री ने भी राजा की निरीक्षण-यात्रा के सम्बन्ध में लिखता है । उसके अनुसार राजा अपने सारे साम्राज्य का दौरा करता है, वह अधिक समय तक एक स्थान पर नहीं रुकता किन्तु वर्षा के दिनों में तीन महीने तक वह दौरा स्थगित रखता था ।[210] राजाओं का दौरा शानदार तथा ठाट-बाट से होता था । इसकी पुष्टि हर्ष के मणितारा स्कन्धावार से होती है जिसमें उच्चाधिकारी, सामन्त, कर्मचारी तथा अन्य परिजन होते थे ।[211]

<u>मन्त्रि-परिषद</u>

प्राचीन भारत में प्रशासन को सुगठित रूप से चलाने के लिए राजा की सहायता के लिए एक मन्त्रिपरिषद् का उल्लेख मिलता है । कौटिल्य अमात्य, मन्त्री और सचिव का वर्णन करते हुए उनके कार्यों तथा योग्यता की अलग-अलग व्याख्या की है ।[212] अमात्य के विषय में कौटिल्य का विचार है कि धर्म, अर्थ, काम और

भय द्वारा परीक्षित पवित्र अमात्यों को उनकी कार्यक्षमता के अनुसार कार्यभार सौंपना चाहिए ।[213] अमात्यों में से धर्मस्थानीय, कोषाध्यक्ष, समाहर्ता तथा मन्त्रि आदि की नियुक्ति होती ह थी ।[214] किन्तु कौटिल्य अमात्य और मन्त्रिपद को अलग-अलग बताते हुए कहता है कि वह विद्या, बुद्धि, साहस, गुण, दोष, देश, काल और पात्र का विचार करके ही अमात्यों की नियुक्ति करे किन्तु उन्हें अपना मन्त्री कदापि न बनाये ।[215] इससे प्रतीत होता है कि मन्त्री और अमात्य दो भिन्न-भिन्न पद थे । संभवतः अमात्य की अपेक्षा मन्त्री का पद बड़ा था । इससे इस बात का संकेत मिलता है कि शायद मन्त्री, मन्त्रिपरिषद् का सदस्य भी होता था और राजा को सलाह भी दे सकता था, जबकि अमात्य मन्त्रिपरिषद् का सदस्य होता था किन्तु उसको मन्त्रिपद प्राप्त करने का अधिकार नहीं था ।[216] कौटिल्य[217] के समान मनु[218] ने भी अमात्य के समकक्ष अधिकारी को सचिव कहा है । रूद्रदामन् के जूनागढ़ अभिलेख में भी मतिसचिव और कर्मसचिव दो प्रकार के सचिवों का उल्लेख आता है ।[219] अमरकोश[220] में अमात्य को मन्त्री के रूप में धीसचिव (मतिसचिव) और अन्य रूप में कर्मसचिव कहा गया है । सिन्हा कामन्दक नीतिसार का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि अमात्य और सचिव राजा के साथ मित्रवत् व्यवहार करते थे जबकि मन्त्री मुख्य रूप से मन्त्र (गुप्त सलाह) से सम्बन्धित होते थे ।[221] कामन्दक नीतिसार के अनुसार अमात्य मुख्य रूप से राजा को ग्राम, नगर, वन, जमीन तथा राजस्व कर आदि के बारे में सूचनाएँ उपलब्ध कराता था ।[222] जबकि सचिव मुख्य रूप से युद्ध मन्त्री के रूप में काम करता था वह राजा को सैन्य सामग्री, उपकरण, हाथी, घोड़े, रथों तथा पैदल सैनिकों आदि की सूचनाओं से अवगत कराता था ।[223]

प्राचीन साहित्य में अमात्यों तथा मन्त्रियों के योग्यता पर विशेष ध्यान दिया जाता था । मनु ने स्पष्ट रूप से ब्राह्मण को प्रधान अमात्य नियुक्त करने का निर्देश दिया है ।[224] याज्ञवल्क्य ने भी मनु के कथन का समर्थन करते हुए ब्राह्मण को अमात्य के रूप में नियुक्त करने का निर्देश दिया है[225] किन्तु बृहस्पति ने ब्राह्मण के अतिरिक्त क्षत्रिय और वैश्य को भी अमात्य के रूप में नियुक्त करने की

सलाह देते हैं, यदि ब्राह्मण योग्य न हो किन्तु शूद्र को अमात्य नियुक्त करने का निषेध करते हैं ।[227] कात्यायन इस बात पर जोर देते हैं कि अमात्य ब्राह्मण जाति का होना चाहिए ।[227] गुप्तकालीन चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि गुहा लेख से इस बात की पुष्टि होती है कि उसके सचिव वीरसेन को वंश परम्परा से सचिव पद प्राप्त था ।[228]

अमात्य और मन्त्रियों की योग्यता पर कौटिल्य के अर्थशास्त्र से विशेष प्रकाश पड़ता है । कौटिल्य ने अमात्यों और मन्त्रियों की योग्यता पर अलग-अलग विचार किये हैं । उनके अनुसार अमात्य को विद्या, बुद्धि, साहस, गुण, दोष, देश काल का विचार करके ही अमात्य नियुक्त करना चाहिए किन्तु उन्हें अपना मन्त्री कभी न नियुक्त करे ।[229] कामन्दक के अनुसार सचिव में उच्चवर्गता, सच्चरित्रता, स्वास्थ्य, शारीरिक क्षमता, नेतृत्वशक्ति, कला एवं स्थापत्य में रुचि, प्रशासनिक अनुभव, आत्मसंयम, साहस, दृढ़ता, धैर्य आदि गुण होने चाहिए, साथ ही राज्य का नागरिक हो ।[230] बाणभट्ट भी इन व्यवस्थाओं के ज्ञाता थे । उन्होंने कादम्बरी में तारापीड के अमात्य शुकनास के विषय में समस्त योग्यताओं को आरोपित किया है ।

बाण का कथन है कि राजा तारापीड के शुकनाश नामक ब्राह्मण मन्त्री था। वह सब शास्त्रों और कलाओं में निपुण था । शुकनास नीतिशास्त्र के प्रयोग में कुशल, धैर्य का निधान, सत्यवादी, गुणसम्पन्न, धर्मशील, सन्धि एवं विग्रह के कार्य में निपुण, समस्त वेद वेदांगों का ज्ञाता और राज्य के कल्याणों का एकमात्र विधायक था । वह दुर्ग निर्माण क्रिया में कुशल, धर्मप्रभव एवं राज्य के मध्य में अद्वितीय प्रधान व्यक्ति था । जिस प्रकार अपने घर में किसी घटना के घटने पर लोगों को अज्ञात नहीं रहता, उसी प्रकार हजारों गुप्तचरों के द्वारा उसे अन्यान्य राजाओं के विषय में जानकारी रहती थी ।[231] विष्णु धर्मोत्तरपुराण में कहा गया है कि एक मन्त्री को उच्चवर्ग का, सत्यवादी तथा राजा के प्रति राजभक्त होना चाहिए । वह राज्य का नागरिक

हो तथा दण्डनीति, कला एवं शास्त्रों का मर्मज्ञ हो ।[232] कौटिल्य ने अमात्यों के परीक्षण का भी विधान किया है । उनके अनुसार अमात्यों की धर्म, अर्थ, काम और भय की परीक्षा उपधा के माध्यम से की जानी चाहिए ।[233] अधिकांश व्यवस्थाकारों का मन्तव्य है कि अमात्य वंशपरम्परागत कुलीन वर्ग के होने चाहिए । मनु के अनुसार यदि पुत्र पिता की भाँति योग्य हो तो पिता के पश्चात् उसे नियुक्त किया जाना चाहिए ।[238] वंशपरम्परागत अमात्यों (सचिवों) की नियुक्ति का अभिलेखीय प्रमाण गुप्तकाल में बहुतायत से मिलते हैं । समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति से इस बात की पुष्टि होती है कि हरिषेण जो सन्धिविग्रहिक तथा महादण्डनायक था, का पिता ध्रुवभूति भी इसी पद पर था ।[239] इसी प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि गुहा लेख से भी वंशपरम्परागत सचिव पद प्राप्त होने का प्रमाण प्राप्त होता है ।[240] पृथ्वीषेण कुमारगुप्त प्रथम का मन्त्री था जबकि उसका पिता शिखर-स्वामी चन्द्रगुप्त द्वितीय का मन्त्री था ।[241]

मन्त्रिपरिषद् में मन्त्रियों की संख्या के विषय में विभिन्न व्यवस्थाकारों ने भिन्न-भिन्न मत प्रतिपादित किये हैं । कौटिल्य का मत है कि राजा को तीन या चार मन्त्रियों से सलाह की जानी चाहिए ।[242] मनु का मन्तव्य है कि वंश परम्परागत, शास्त्रों के जानने वाले, शूर, शस्त्रविद्या में निपुण, कुलीन और परीक्षित सात या आठ मन्त्रियों को राजा नियुक्त करे ।[243] कामन्दक के व्यवस्थानुसार राजा किसी विशेष कार्य या मिशन के लिए पाँच या सात अथवा अधिक मन्त्रियों को नियुक्त करे ।[244] इस विषय में सिनहा का विचार है कि यदि पाँच महत्वपूर्ण मिशन या कार्य के लिए मन्त्रियों को नियुक्त करना है तो पैंतीस मन्त्री नियुक्त होने चाहिए ।[245] इसका तात्पर्य यह है कि कार्य की आवश्यकतानुसार मन्त्रिपरिषद् का विस्तार अपेक्षित था । कौटिल्य का भी मत है कि कार्य करने वाले पुरुषों की सामर्थ्य के अनुसार उनकी संख्या निश्चित होनी चाहिए ।[246]

कौटिल्य जैसे व्यवस्थाकार राजत्व को एकतन्त्रीय स्वीकार नहीं करते थे अपितु सहाय साध्य मानते थे और सचिवों के परामर्शानुसार कार्य करने की सलाह देते

हैं ।[247] यदि राज्य सम्बन्धी कोई गूढ़ विषय हो तो राजा का कर्तव्य होता है कि वह मन्त्री और मन्त्रिपरिषद् को एक साथ बुलाकर परामर्श करे तत्पश्चात् बहुमत के निर्णय के अनुसार कार्य सम्पन्न करे ।[248] इसी प्रकार मनु ने भी व्यवस्था दी है ।[249] मनु ने भी निर्देश दिया है कि राजा को मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करनी चाहिए ।[250] कात्यायन का मन्तव्य है कि राजा को किसी महत्वपूर्ण व्यवस्था सम्बन्धी मुद्दे पर स्वयं निर्णय नहीं लेना चाहिए अपितु परिषद् के साथ सलाह - मशविरा के पश्चात् कोई निर्णय लेना चाहिए ।[251] मालविकाग्निमित्र में स्पष्ट कहा गया है कि राजा की अनुपस्थिति में मन्त्रियों को महत्वपूर्ण मुद्दों पर निर्णय लेना चाहिए और अन्तिम निर्णय के लिए राजा के पास भेज देना चाहिए ।[252] इस प्रकार मन्त्रियों के परस्पर विचार-विमर्श की सूचना हमें गुप्तकाल एवं गुप्तोत्तर काल में नहीं उपलब्ध होती अपितु उच्च अधिकारी जैसे सान्धिविग्रहिक और महा-दण्डनायक मन्त्रियों के रूप में दिखायी देते हैं ।[253] कामन्दक के नीतिसार में मन्त्रिपरिषद् को मन्त्रिमण्डल की संज्ञा प्रदान की गई है ।[254] किन्तु सिनहा का मन्तव्य है कि मण्डल शब्द का मन्त्रिपरिषद् के अर्थ में प्रयोग अर्थशास्त्र में नहीं प्राप्त होता ।[255] कामन्दक प्रधानमन्त्री को महामात्र और मन्त्रिप्रवर की संज्ञा प्रदान करता है और कहता है कि राजा की अनुपस्थिति में मन्त्रिपरिषद् के विचार-विमर्श में महामात्र की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी ।[256] राजा की अनुपस्थिति अथवा बीमारी की अवस्था में महामात्र ही राज्य का प्रशासनिक कार्यभार संभालता था ।[257] कामन्दक व्यक्तिगत रूप से मन्त्रियों में विभागों का विभाजन नहीं स्वीकार किया है अपितु सामूहिक रूप में आय-व्यय, न्याय तथा राजा एवं राज्य की शत्रुओं से सुरक्षा का कर्तव्य माना है ।[258]

सातवीं शताब्दी ईसवी में बाणभट्ट ने न्यूनाधिक परिवर्तनों के साथ प्राचीन परम्पराओं के निर्वाह का प्रयास किया है । हर्षचरित में प्रभाकरवर्द्धन की राजधानी में बड़े बड़े सभाभवन होने का उल्लेख बाण ने किया है ।[259] भाष्यकार शंकर ने सभा की व्याख्या करते हुए लिखा है कि जहाँ परिषद् गोष्ठी सभा, समिति की बैठक

होती हो ।[260] हर्षचरित से ज्ञात होता है कि प्रभाकरवर्द्धन के गम्भीर नामक एक पुण्यी विद्वान् सलाहकार के रूप में विद्यमान था[261] जिसकी कीर्ति उसे समीप रहने वाले भृत्य रूपी रत्नों में समान रूप से प्रतिबिम्बित होती थी ।[262] यहाँ पर भृत्य शब्द संभवतः मन्त्रियों के लिए प्रयुक्त हुआ हो । बाण के समय युद्ध में मन्त्रियों को सलाह मशविरा के लिए भेजा जाता था । राज्यवर्द्धन द्वारा हूणों के विरुद्ध अभियान के समय पिता प्रभाकरवर्द्धन ने सेना एवं सामन्तों के अलावा विचार-विमर्श के लिए अमात्यों को भी भेजा था ।[263] सैनिक सेवा भी उनके कर्त्तव्य का प्रमुख अंग बन गई थी किन्तु बाणभट्ट ने स्पष्ट रूप से कहीं मन्त्रिपरिषद् का उल्लेख नहीं किया है । बाण के समय तक जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ वह यह कि अमात्यों मन्त्रियों को मात्र मन्त्रणा देने के अधिकार तक ही सीमित नहीं रखा गया अपितु बड़ी बड़ी सैनिक एवं सामन्तों की उपाधियाँ भी दी जाने लगीं । डॉ० देवहूति के अनुसार जबकि केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् के अधिकांश सदस्य विभागों के प्रधान के रूप में (जैसे सेना, राजस्व, सार्वजनिक कल्याण आदि) पद भार ग्रहण करने लगे । उनमें कुछ सदस्य अपनी विशेष योग्यता अनुभव, शिक्षा, बुद्धिमत्ता आदि के कारण मन्त्रि परिषद् को भी सुशोभित करते थे ।[264] बाणभट्ट ने हर्षचरित में कई स्थलों पर इस प्रकार के प्रसंगतः उल्लेख किये हैं । प्रभाकरवर्द्धन के मित्र सिंहनाद वृद्धावस्था में भी सेनापति का पदभार संभाले हुए थे और राजवर्द्धन की मृत्यु पर हर्ष को उचित सलाह मन्त्री के रूप में देते हैं ।[265] इसी प्रकार स्कन्दगुप्त ने भी हर्ष को सलाह दिया था जब हर्ष ने गौड़ाधिप के विरुद्ध सेना के संगठन का आदेश स्कन्दगुप्त को दिया जो गजवाहिनी का सेनापति था तो उसने भक्तिभाव के कारण हर्ष को तत्कालीन राजाओं के दृष्टान्त देकर विभिन्न परिस्थितियों में विपत्ति से बचने का उपदेश किया, जिसे हर्ष ने ध्यानपूर्वक ग्रहण किया ।[266] हर्ष ने राज्य को सुव्यवस्थित करके ही युद्ध का अभियान प्रारम्भ किया ।[267] बाणभट्ट के आश्रयदाता महाराज हर्ष के मधुबन एवं बांसखेड़ा अभिलेखों[268] से भी इस बात की पुष्टि होती है कि स्कन्दगुप्त राज्य के गजसेनानायक के अलावा मन्त्रणा देने वाला महाप्रमातार और दूतक एवं महासामन्त की उपाधि से भी विभूषित था । बाणभट्ट के वर्णन से इस बात का

संकेत मिलता है कि सातवीं शताब्दी ईसवी में मन्त्रियों से अधिक प्रभावशाली व्यक्तित्व सामन्तों का हो चुका था । हर्षचरित में जब प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु पर राज्यवर्द्धन शोकाग्नि में डूबकर भोजन आदि का परित्याग कर रहे थे, उस समय प्रधान सामन्तों ने बाण ने स्पष्ट शब्दों में लिखा कि जिनके वचनों का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता था । समझाकर भोजन करने के लिए राजी किया था ।[269] ह्वेनसांग की जीवनी सी-यू-की के अनुसार कन्नौज का रिक्त मौखरि सिंहासन हर्ष ने मन्त्रियों के आग्रह पर ही स्वीकार किया था ।[270] ह्वेनसांग के वर्णन के आधार पर यू०एन० घोषाल का मन्तव्य है कि कन्नौज में छोटी या बड़ी मन्त्रिपरिषद् का अस्तित्व था,[271] किन्तु डॉ० देवहूति घोषाल के मत का समर्थन नहीं करती हैं । उनका मन्तव्य है कि उस समय परिषद् में सामन्तों का बाहुल्य था और सामन्त परिषद् के सदस्य होते थे जिन्हें उत्तराधिकार निश्चित करने का अधिकार था ।[272]

कौटिल्य ने उत्तराधिकारी के चुनाव पर व्यवस्था देते हुए निर्देश करते हैं कि राजा की मृत्यु के पश्चात् मन्त्री आपसी सलाह मशविरा से उत्तराधिकारी चुन सकते हैं[273] और यदि उत्तराधिकारी नाबालिग है तो उसकी यथासंभव सहायता तथा राज्यकार्य का प्रशिक्षण देना भी मन्त्री का कर्तव्य है ।[274] बाणभट्ट कृत कादम्बरी में मन्त्री शुकनास द्वारा युवराज चन्द्रापीड को जो उपदेश दिया गया है जिसमें चन्द्रापीड से शुकनास कहता है कि सभामण्डप में जो धूर्तगण रहते हैं वे राजा को समझाते हैं कि जुआ खेलना विनोद, परस्त्रीगमन चतुरता, शिकार खेलना व्यायाम, मद्यपान करना विलासिता, किसी विषय में सावधान न रहना वीरता, अपनी धर्मपत्नी को छोड़ना अनासक्ति, गुरु के उपदेश को ग्रहण न करना स्वाधीनता, वेश्याओं में आसक्त रहना रसिकता, बड़े-बड़े अपराधों को नहीं सुनना महानुभावता का परिचय है । इससे संकेत मिलता है कि राजाओं को सामाजिक बुराइयों से आगाह किया जाता था ।[275] ऐसा ज्ञात होता है कि सातवीं शताब्दी ईसवी तक कौटिल्य की व्यवस्था का न्यूनाधिक प्रयोग होता था जिसमें उसने युवराज के प्रशिक्षण की ओर विशेष रूप से इंगित किया है । उसके अलावा बाण के समय अमात्य पर राज्य का

भार सौंपने की प्रथा का प्रचलन इस ओर संकेत करता है कि राजाओं को राज्य कार्य की अपेक्षा व्यक्तिगत जीवन में विशेष रुचि थी । राजा तारापीड ने अपने विश्वासपात्र मन्त्री शुकनास पर राज्य का भार सौंपकर व्यक्तिगत सुख का भोग करने लगे ।[277] इसी प्रकार बाण के आश्रयदाता हर्ष कृत नाटक नागानन्द में भी राज्य का भार प्रधान अमात्य पर आरोपित करके जीमूतवाहन का वनप्रस्थान वर्णित है ।[278] रत्नावली नाटिका से मन्त्री की उपयोगिता की झलक मिलती है जिसमें मन्त्री यौगन्धरायण ने राजा के चक्रवर्तित्व प्राप्त करने हेतु असत्य का अवलम्बन करके भी राजा का हित ही करता है जिससे राजा स्वयं मन्त्री पद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि तुम्हारे जैसे मन्त्री के रहते मेरे पास क्या नहीं है ? अर्थात् सब कुछ है ।[279]

बाणभट्ट ने कादम्बरी में शुकनास के द्वारा मन्त्रियों की उपयोगिता पर प्रकाश डाल कर मन्त्री के महत्व को बढ़ा दिया है । शुकनास कहता है कि राजा के लिए मन्त्री विशेषरूप से आवश्यक है ।[280] बाण के परवर्ती कवियों ने भी मन्त्रियों से मन्त्रणा करने पर यत्किंचित प्रकाश डाला है । माघने शिशुपाल वध में संकेत किया है कि महत्वपूर्ण मुद्दों पर अमात्यों के विचार अवश्य ग्रहण करना चाहिए क्योंकि अकेला व्यक्ति कार्य करने की शैली पर संदेह से ग्रस्त हो सकता है ।[281] भारवि ने किरातार्जुनीय में इस बात की ओर संकेत किया है कि राजा और मन्त्री के आपसी सहयोग और सद्भावना से राज्य की समृद्धि में वृद्धि होती है ।[282]

डॉ० देवहूति के अनुसार हर्ष के समय में भी गुप्त काल के समान केन्द्रीय परिषद् के सदस्य अपनी विशेष योग्यता से सैन्य संचालन किया करते थे ।[283] जिसकी पुष्टि बाणभट्ट की कृति हर्षचरित से भी होती है । हर्षचरित में भण्डि को संकट कालीन अवसर में वर्धन साम्राज्य की सेना का नेतृत्व संभालते दिखाया गया है ।[284] भण्डि राजकुल से सम्बन्धित हर्ष का ममेरा भाई था ।[285] देवहूति का मन्तव्य है

कि संभवतः भण्डि को दीर्घकालीन राज्य सेवा में रहने के कारण केन्द्रीय परिषद् में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो चुका था ।[286] ह्वेनसांग के वर्णन से ज्ञात होता है कि कन्नौज के राज्याधिकारियों ने भण्डि ।वानी। के सलाह पर हर्षवर्द्धन को कन्नौज
के राज्याधिकारियों ने भण्डि ।वानी। के सलाह पर हर्षवर्द्धन को कन्नौज का उत्तराधिकारी स्वीकार किया ।[287]

मन्त्रियों में गोपनीयता का महत्व प्राचीनकाल से था । कौटिल्य ने मन्त्रणा में गोपनीयता को विशेष महत्व प्रदान किया है ।[288] कामन्दक ने मन्त्रियों में गोपनीयता को 'राजा का बीज' और 'राज्य की जड़' की संज्ञा प्रदान की है ।[289] परिषद् की गोपनीयता को सुरक्षित रखना मन्त्रियों में आवश्यक योग्यता मानी गयी है ।[290] बाणभट्ट ने भी इस ओर संकेत किया है । हर्ष को समझाते हुए स्कन्दगुप्त ने जिन सत्ताईस राजाओं के प्रमाद-दोष का वर्णन किया है ।[291] उससे मन्त्रियों के उत्तरदायित्व का आभास होता है, क्योंकि राजा की भाँति मन्त्रियों की भी नैतिक जिम्मेदारी होती थी कि प्रजा का पालन सुचारू रूप से हो । नैतिकता एवं उत्तरदायित्व से आबद्ध मन्त्री समय-समय पर राजाओं को उनके कर्तव्यों का बोध कराते रहते थे ।

प्रशासनिक इकाईयाँ

साम्राज्य विस्तार के कारण प्रशासनिक व्यवस्था को सुगठित रूप से संचालन के लिए साम्राज्य को कई भागों में बांटा जाता था । मौर्य साम्राज्य में अशोक के समय वृहद् विस्तार को देखते हुए सम्पूर्ण साम्राज्य को चार प्रान्तों में विभाजित किया गया था क्योंकि अभिलेखों में चार राजधानियों का जिक्र आता है । तक्षशिला ।उत्तरी प्रान्त।, उज्जैन ।पश्चिमी प्रान्त।, तोसली ।पूर्वी प्रान्त। तथा सुवर्णगिरि ।दक्षिणी प्रान्त। प्रान्तों की राजधानियाँ थी ।[292]

मौर्य साम्राज्य के बाद गुप्त काल तक आते-आते प्रशासनिक ढाचे में परिवर्तन होता गया । केन्द्रीय सत्ता का विकेन्द्रीकरण प्रारंभ हो चुका था । जैसा कि राखाल दास बनर्जी का मत है - कुषाण साम्राज्य के पतन के पश्चात् शासकीय और नौकरशाही व्यवस्थाओं में महान् परिवर्तन हुए । गुप्त सम्राटों के लेखों में मौर्य अधिकारियों के नामों की परम्परा का कोई चिह्न नहीं मिलता ।[293] गुप्त काल में साम्राज्य को कई भागों में विभाजित किया जाता था जिन्हें भुक्ति कहा जाता था । भुक्ति का उल्लेख सर्वप्रथम गुप्तकाल से मिलने लगता है । जिसका क्षेत्रफल आज की एक कमिश्नरी के बराबर संभवतः होता था ।[294] गुप्त शिला लेखों से ज्ञात होता है कि प्रत्येक प्रान्त ।भुक्ति। विषयों में विभाजित होते थे । बनर्जी का मत है कि परवर्ती काल में प्रान्त के अन्तर्गत मण्डल और मण्डल के अन्तर्गत विषय होते थे किन्तु गुप्त-काल में इस प्रकार का कोई साक्ष्य नहीं प्राप्त होता । अतएव विषयों को जिले के रूप में माना गया न कि परगने के रूप में ।[295]

बाणभट्ट के साहित्य से इस प्रकार के किसी विभाजन की जानकारी नहीं प्राप्त होती । बाणभट्ट ने हर्षचरित में जनपद, नगर देश ग्राम का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया है । जनपदों के भिन्न-भिन्न आकार[296] के उल्लेख से उनकी कतिपय भौगोलिक मान्यता का आभास होता है किन्तु प्रशासनिक ढाँचे में इनका क्या महत्त्व था, अज्ञात है । कादम्बरी में भी प्रशासन सम्बन्धी किसी महत्वपूर्ण सामग्री का अभाव है । बाणभट्ट के आश्रयदाता सम्राट हर्ष के अभिलेखों तथा समकालीन अभिलेखीय साक्ष्यों से सातवीं शताब्दी ई0 के प्रशासनिक ढाँचे की जो रूपरेखा उभरकर सामने आती है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त-काल की शासन - व्यवस्था और बाणभट्ट के समकालीन ढाँचे में कोई विशेष अन्तर नहीं था । हर्ष के मधुबन ताम्रपत्र अभिलेख तथा बाँसखेड़ा ताम्रपत्र अभिलेख में भुक्ति, विषय, पाथक, ग्राम का उल्लेख किया गया है ।[297] बाणभट्ट के समकालीन श्रावस्ती भुक्ति एवं अहिच्छत्रा भुक्ति[298] का उल्लेख गुप्तकाल में भी मिलता है । इससे ऐसा प्रतीत होता

है कि भुक्तियों का अस्तित्व राजवंशों के परिवर्तन से समाप्त नहीं होता था । उत्तर गुप्त काल के जीवित गुप्त द्वितीय के देववर्नार्क अभिलेख में भी कुशली नगर भुक्ति का उल्लेख मिलता है ।[299] भुक्ति के शासक को गुप्त काल की तरह 'उपरिक' कहा जाता था ।[300]

अभिलेखीय साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि भुक्ति के अन्तर्गत विषय होते थे । हर्ष के बांसखेड़ा ताम्रपत्र अभिलेख में अहिच्छत्रा भुक्ति के अन्तर्गत वंगदीप विषय तथा मधुबन ताम्रपत्र अभिलेख में श्रावस्ती भुक्ति के अन्तर्गत कुण्डधानी विषय का उल्लेख किया गया है ।[301] विषय के अधिकारी को विषयपति कहा जाता था ।[302] विषय के अन्तर्गत पाथक का उल्लेख एक प्रशासनिक इकाई के रूप में बांसखेड़ा ताम्रपत्र अभिलेख में किया गया है ।[303] अल्तेकर का मन्तव्य है कि पाथक आधुनिक तहसील या तालुका के बराबर होते थे ।[304] डी0 देवहूति के अनुसार पाथक सातवीं शताब्दी ईसवी का नवीन प्रयोग है । गुप्त-काल में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता जबकि आठवीं शताब्दी ईसवी के मैत्रकों के वलभी अभिलेख में उल्लेख मिलता है ।[305]

प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी । बाण के हर्षचरित में अग्रहारिक और वृद्धमहत्तर का उल्लेख आता है जो हर्ष के सैन्य अभियान के समय फसलों की रक्षा के लिए हाथ में जल का घड़ा उठाये और टोकरियों में दही, गुड़, खाँड तथा फूल का उपहार लेकर हर्ष के दर्शनार्थ आ रहे थे ।[307] कावेल और टामस ने महत्तरों की तुलना गाँव के मातवरों (वृद्ध पुरुषों) से की है जिनका गाँव सम्बन्धी मामलों में बड़ा प्रभाव रहता था ।[308] ग्राम के अधिकारी को हर्षचरित में ग्रामाक्षपटलिक कहा गया है ।[309] ग्रामाक्षपटलिक का अर्थ गाँव का शासकीय कर्मचारी किया गया है जिसे वर्तमान पटवारी माना जा सकता है । उसके सहायक लेखक 'करणि' कहलाते थे ।[310]

समकालीन दक्षिण भारत के राज्यों में जो प्रशासन-व्यवस्था थी वह अंशतः उत्तर भारत की व्यवस्था से मिलती जुलती थी । प्रायः विजित राजा अपने राज्य पर बने रहते थे और समयानुसार सम्राट को कर दिया करते थे । अक्सर वे आन्तरिक प्रशासन में स्वतन्त्र होते थे जब तक कर आदि शर्तों के पालन में त्रुटि नहीं होती थी, राजा उनके आन्तरिक मामलों में दखलन्दाजी नहीं करता था ।[311] किन्तु अभिलेखों में राष्ट्र, विषय और नाड शब्द आये हैं लेकिन उनके आकार की सीमा निश्चित न थी ।[312] विद्वान् ऐसा मानते हैं कि विषयपतियों जैसे अधिकारियों का जिक्र मिलता है जिन्हें कन्नड़ भाषा में 'देशाधिपारिगल' कहा जाता था । ये राजा के द्वारा नियुक्त होते थे किन्तु इनके कार्य के विषय में कोई विशेष सूचना नहीं मिलती ।[313] चालुक्यों की शासन पद्धति में ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई थी । ग्राम में केन्द्र के द्वारा नियुक्त 'गामुंड' ।गाँव का अधिकारी। नामक अधिकारी का जिक्र आता है जो संभवतः राजा तथा जनता के बीच कड़ी का काम करता था ।[314] आडूर के अभिलेख से 'करणों' ।गाँव के लेखपालों। का उल्लेख मिलता है[315] जो संभवतः उत्तर भारत के 'करणि' थे । इसके अलावा गाँवों के प्रशासन में 'महाजन' ।गाँव के महत्तर। का विशेष महत्व था जो गाँव की सामाजिक आर्थिक जीवन को संचालित करते थे ।[316] इनकी पहचान हर्षचरित में वर्णित महत्तर ।वृद्ध पुरुषों। से की जा सकती है । इस प्रकार दक्षिण भारत में भी प्रशासनिक व्यवस्था बाणभट्ट के विवरण के ही अनुरूप थी ।

राजकीय कर्मचारी एवं अधिकारीगण

सातवीं शताब्दी ईसवी के राजदरबारों की वैभव एवं भव्यता का जो चित्रण बाण के साहित्य से प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । बाणभट्ट ने अपने साहित्य में राजदरबारों में उपस्थित तथा सेवारत कर्मचारियों एवं अधिकारियों का विस्तृत ब्यौरा दिया है । बाणभट्ट के हर्षचरित से ज्ञात होता है कि जब बाण हर्ष से मिलने गया तो राजदरबार में प्रवेश करने के पूर्व द्वारपाल को देखा ।[317] इसके अतिरिक्त प्रभाकरवर्धन के रोग्रस्त होने पर हर्ष जब उनको देखने पहुँचे । उस

समय धवलगृह के देहली पर अनेक वेत्रधारी पुरुष पहरा दे रहे थे ।[318] यहाँ वेत्रधारी पुरुषों का अभिप्राय द्वारपालों से है । द्वारपाल का राजद्वार पर होने का प्रमाण राज्यवर्धन के लौटने पर भी मिलता है ।[319] कादम्बरी में राजकुल के सन्दर्भ में बाण ने द्वारपालों का सचित्र वर्णन किया है । चन्द्रापीड के गुरुकुल से वापस आने पर राजद्वार पर द्वारपालों का वर्णन प्राप्त होता है । द्वारपालों की नियुक्ति तोरण स्तंभ के पास होती थी । उसकी वेशभूषा का वर्णन करते हुए बाण लिखते हैं कि हाथ में सुवर्णकलित वेत्रयष्टि, श्वेत कवच, श्वेत अंगराग एवं मस्तक पर श्वेत पगड़ी और श्वेत फूलों की माला थी ।[320] उल्लेखनीय है कि वेत्रयष्टि के सन्दर्भ में अग्रवाल महोदय का मन्तव्य है कि वेत्रलता मूलतः यद्यपि बेंत की होती थी किन्तु अब यह शब्द रूढ़ हो गया था और द्वारपालों के अधिकार दण्ड के रूप में प्रयुक्त होने लगा था ।[321] द्वारपालों के अलावा राजद्वार से सम्बन्धित सेवकों में प्रतीहारों का उल्लेखनीय स्थान रहा है । हर्षचरित के अध्ययन से इस बात का संकेत मिलता है कि प्रतिहारों की दो श्रेणियाँ थी । प्रतीहार और महाप्रतीहार । हर्षचरित में अनेक स्थानों पर प्रतीहारों[322] का उल्लेख किया गया है । प्रतिहारों के ऊपर महाप्रतीहारों की श्रेणियाँ होती थी जिनका अनेक स्थानों पर उल्लेख किया गया है ।[323] बाण की कादम्बरी में भी प्रतीहारों को राजा की सेवा में तत्पर दिखाया गया है । चन्द्रापीड के द्वारा विद्या प्राप्ति के पश्चात् माता-पिता के दर्शनार्थ जाते समय प्रतीहारों के समूह ने उसका मार्गदर्शन किया ।[324] इसके अतिरिक्त कई स्थानों पर प्रतीहारों का उल्लेख प्राप्त होता है ।[325] प्रतीहारों को राजसी ठाटबाट और दरबारी प्रबन्ध की रीढ़ निरूपित किया गया है जो लोग राजद्वार के भीतर जाने के अधिकारी थे, वे अन्तरप्रतीहार कहलाते थे । केवल बाह्य कक्षा तक आने-जाने वाले नौकर बाह्य परिजन कहलाते थे । प्रतीहार राजकुल के नियमों और दरबार के शिष्टाचार में निष्णात होते थे । वे विभिन्न कोटि के राजाओं को उनके चिह्नों से पहचानकर यथायोग्य सम्मान देते थे ।[327] बाण ने प्रतीहारियों का उल्लेख भी किया है । महाराजपुष्यभूति जब अन्तःपुर में थे तो भैरवाचार्य के

आने की खबर प्रतीहारी ने ही पहुँचायी थी ।[327] इसी प्रकार यशोमति के पुत्र-जन्म पर प्रतीहारी परिचारिकाओं के नृत्य का वर्णन है ।[328] यशोमति के चिता-ग्नि में प्रवेश की तैयारी की सूचना हर्ष को प्रतीहारी से ही प्राप्त हुई थी ।[329] कादम्बरी में राजा शूद्रक को चाण्डाल कन्या की सूचना प्रतीहारी से ही प्राप्त हुई ।[330] प्रतीहारी का उल्लेख कादम्बरी में अनेक स्थानों पर किया गया है ।[331] इससे इस बात का संकेत मिलता है कि पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को भी रक्षा में नियुक्त किया जाता था । जिसका उल्लेख बाण के सुदूरपूर्ववर्ती कौटिल्य ने किया है कि अन्तःपुर में प्रतीहार पद पर स्त्रियाँ नियुक्त की जाती थीं ।[332] अमरकोशकार ने प्रतिहार और द्वारपाल को 'द्वाररक्षक' के रूप में समानार्थक माना है ।[333]

प्रतीहारों तथा महाप्रतिहारों का उल्लेख ऐसे अधिकारियों की श्रेणी में आता है जिनका अस्तित्व गुप्तकाल से लेकर हर्षोत्तर काल तक मिलता है ।[334] प्रतीहारों के अनेक श्रेणियों का उल्लेख किया गया है जो उनकी श्रेणी और नियुक्त किये जाने वाले स्थान पर निर्भर होता था ।[335] राजदरबार में दौवारिक नामक कर्मचारी का उल्लेख बाणभट्ट के हर्षचरित में हुआ है जो प्रतीहारों का अधिकारी होता था । पारियात्र नामक दौवारिक बाण को हर्ष से मिलाने दरबार में ले जाता है जिसे महाप्रतीहारों का मुखिया कहा गया है ।[336] बाण के हर्षचरित से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतीहार अपने समस्त अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ राजा की यात्रा के समय भी उपस्थित रहते थे । बाण ने हर्ष के साथ कामरूप के दूत से युद्ध सम्बन्धी सलाह मशविरा के समय भी प्रतीहारों की उपस्थिति का वर्णन किया है ।[337] प्रतीहारों की आज्ञाओं का पालन राजदरबार के भीतर सभी कर्मचारी करते थे । भण्डि के आगमन के समय भातृशोक से विह्वल हर्ष के दरबार में प्रतीहारों के रोक लगा देने से भवन के सब परिजन इशारे से काम करते थे ।[338] बाण ने अनेक स्थानों पर प्रतीहारी का उल्लेख भी किया है[339], जिससे संकेत मिलता है कि महिला कर्मचारी भी प्रतीहार का कार्य भार सँभालती थी ।

बाणभट्ट के समय राजदरबार में राजा के आस-पास रहने वाले जिन अन्य कर्मचारियों का उल्लेख मिलता है । उनमें चामरग्राहिणी, कंचुकी, अंगरक्षक और शिरोरक्षक का उल्लेख किया जा सकता है । चामर ग्राहिणी (चँवर डुलाने वाली स्त्रियाँ) हर्ष के राजदरबार में उपस्थित रहती थी ।[340] कादम्बरी में भी बाण ने चँवर डुलाने वाली स्त्रियों का वर्णन किया है ।[341]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजा की विभिन्न सेवाओं के लिए नियुक्त वेश्याओं का वर्णन मिलता है ।[342] जिसका वर्णन बाण ने हर्षचरित में चामरग्राहिणी (चँवर डुलाने वाली), सम्राट को नृत्य गान से मोहित करने तथा चरण दबाने वाली (चरणग्राहिणी)[343] के रूप में किया है । हर्षचरित से इस ओर संकेत मिलता है कि संभवतः अन्तपुर में पहरा देने के लिए महिला रक्षिकाओं की नियुक्ति की जाती थी जिन्हें यामिकिनीषु[344] और यामचेटी[345] कहा जाता था । कादम्बरी में बाण ने राजा को स्नान कराते हुए वारवनिताओं का विस्तृत वर्णन किया है[346], साथ ही ताम्बूलकरंकवाहिनी[347] (पान का डब्बा लेकर साथ रहने वाली) का वर्णन कादम्बरी में अनेक स्थलों पर किया गया है । हर्षचरित में पुरुष को ताम्बूलवाहक[348] का कार्य सम्पादित करते हुए वर्णन किया गया है । राजदरबार के कर्मचारियों में कंचुकी का विशेष महत्व होता था । यह राजदरबार से अन्तःपुर तक प्रवेश करने के अधिकारी थे । इस पद पर वृद्ध ब्राह्मण अथवा स्त्रियाँ नियुक्त की जाती थीं। हर्षचरित में जब प्रभाकरवर्द्धन मृत्यु शैय्या पर पड़े थे तो उनके दुःख में दुःखी कंचुकी का वर्णन[349], यशोमति का कंचुकी को सम्बोधन करके चिता पर आरूढ़ होने का वर्णन[350], आदि महत्वपूर्ण हैं । कंचुकी अन्तःपुर में ही रहते थे जैसा कि बाण के कथन से स्पष्ट है कि प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात् अन्तःपुर में शोकाकुल कुछ कंचुकी ही शेष थे ।[351] कादम्बरी में अनेक स्थलों पर कंचुकियों[352] का वर्णन किया गया है ।

राजा की सुरक्षा के लिए अंगरक्षक होते थे जिन्हें हर्षचरित में शस्त्रधारी

मौल कहा जाता था ।[353] अर्थशास्त्र में मौल सेना का उल्लेख किया गया है जो राजा की पैतृक स्थायी सेना होती थी । राजधानी की रक्षा का मुख्य दायित्व इसी पर होता था ।[354] दधीचि के अंगरक्षक को भी 'मौलि पुरुष' कहा गया है ।[355] अंगरक्षकों की नियुक्ति वंशपरम्परा से होती थी क्योंकि विकुक्षि जो दधीचि का अंगरक्षक था, अपने परिचय में बताता है कि वह राजकुल मेरी वंशपरम्परा से सेवित है ।[356] राज प्रासाद का एक महत्वपूर्ण कर्मचारी दीर्घाध्वग लेखहारक का उल्लेख बाण ने हर्षचरित में किया है जो दरबार के आवश्यक और गोपनीय संदेशों को लाने एवं ले जाने का काम करता था । ये अत्यन्त विश्वासपात्र होते थे । हर्ष के भाई कृष्ण ने दीर्घाध्वग लेखहारक मेखलक से ही संदेश भेजकर बाण को राज-दरबार में बुलाया था ।[357] प्रभाकर वर्द्धन की बीमारी का संदेश हर्ष को दीर्घाध्वग लेखहारक कुरंगक से प्राप्त हुआ था ।[358] इसी प्रकार लेखहारक ने ही भण्डि के आगमन की सूचना हर्ष को दी थी ।[359] राजदरबार में अन्य कर्मचारियों में आचमानि वाहक[360] (आचमन का पात्र लिए हुए सेवक) तथा वस्त्रकर्मान्तिक[361] (सरकारी तोशखाने का अधिकारी) का उल्लेख प्राप्त होता है । कादम्बरी में कतिपय अन्य परिचारकों एवं परिचारिकाओं की चर्चा की गयी है जिनमें दीपिका धारिणी[362], महत्तरिका[363]; यामिक[364] (धनुष बाण हाथ में लिए पहरेदार), कर्मान्तिक[365] आदि हैं । इस प्रकार हर्षचरित में वस्त्रकर्मान्तिक जो तोशखाने का अधिकारी होता था, का वर्णन है, और कादम्बरी में कर्मान्तिक जो वासगृह का अधिकारी होता था, के वर्णन से कर्मान्तिक की दो श्रेणियों का पता लगता है । महत्तरिका अन्तःपुर की समस्त स्त्री-प्रतिहारियों की अध्यक्षा होती थी । महत्तरिका का पद अन्तःपुर में अत्यन्त विशिष्ट माना जाता था । अन्तःपुर की रक्षा का भार उसी पर था ।[366] अन्तःपुर में आभ्यान्तर प्रतीहार जो शुद्धान्ता-वंशिक भी कहलाते थे, नियुक्त रहते थे साथ ही वृद्ध परिव्राजिकाएं लाल वस्त्र पहने धर्मोपदेश करती थी ।[367]

बाणभट्ट ने विभिन्न कर्मचारियों के उल्लेख के साथ कुछ विशिष्ट राजपुरुषों

का भी वर्णन किया है जिन पुरोहित, ज्योतिषी और मौहूर्तिक आते हैं। हर्ष-चरित में प्रातःकाल मंगल पाठ करने वालों का उल्लेख है जो संभवतः ब्राह्मण पुरोहित ही रहे होंगे।[368] गौड़ाधिप के विरुद्ध सैन्य अभियान के अवसर पर पुरोहितों द्वारा शान्ति जल छिड़का गया था।[369] हर्ष के जन्म पर राजकुल के ज्योतिषी तारक द्वारा भविष्य बतलाने का वर्णन मिलता है।[370] मौहूर्तिकों का उल्लेख राज्यश्री के विवाह के समय किया गया है। मौहूर्तिकों ने विवाह की लग्न की सूचना देते हुए जामाता को विवाह मण्डप में ले जाने का निवेदन किया।[371] हर्ष के सैन्य अभियान का शुभ दिन मौहूर्तिकों ने ही निश्चित किया था।[372]

बाणभट्ट के साहित्य से सातवीं शताब्दी ई0 कतिपय शासनाधिकारियों की जानकारी मिलती है किन्तु सैनिक व प्रशासनिक अधिकारियों के नाम गुप्त युग के शासनाधिकारियों के नामों के ही अनुरूप हैं, जिससे यह अनुमान करना सर्वथा सही और संगत होगा कि सम्पूर्ण शासन व्यवस्था का मूलाधार पूर्ववर्ती गुप्तों के ढाँचे पर ही आधारित था।[373] इस समय की सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था को स्पष्ट रूप से इंगित करने के लिए हर्ष के अभिलेखों तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग का विवरण महत्वपूर्ण स्रोत हैं। हर्षचरित में जिन अधिकारियों का उल्लेख है उनमें ग्रामाक्षपटलिक और करणिक का ग्राम-शासन व्यवस्था में विशेष महत्वपूर्ण स्थान था। हर्ष के विजय अभियान के अवसर पर ग्रामाक्षपटलिक अपने सहयोगी करणिकों के साथ सम्राट से मिला था और उन्हें सुवर्ण निर्मित वृषांकित मुद्रा प्रदान की।[374]

अमरकोश में अक्षदर्शक और प्राड्विवाक को पर्यायवाची माना गया है और उसे व्यवहार (अदालत) का निर्णेता कहा गया है।[375] अग्रवाल महोदय का विचार है कि अक्षदर्शक और अक्षपटलिक इन दोनों नामों में अक्ष शब्द का अर्थ रुपये पैसे का व्यवहार या आय-व्यय है। दीवानी अदालत का न्यायाधीश व्यवहार के मामलों का निर्णय करने के कारण अक्षदर्शक कहा गया है। इसी प्रकार अक्षपटलिक भी वह अधिकारी हुआ जो गाँव के सरकारी आय-व्यय का हिसाब रखता था।[376]

यशोवर्मन के नालन्दा पाषाण अभिलेख में 'करणिक' का उल्लेख किया गया है जिस पर भूमि सम्बन्धी दस्तावेजों का लेखा जोखा रखने का दायित्व था ।[377] हर्ष के मधुबन एवं बांसखेड़ा ताम्रपत्र लेखों में 'महाक्षपटलाधिकरणाधिकृत' का उल्लेख हुआ है ।[378] ताम्रपत्रों में इस पद का अधिकार महासामन्त महाराज भानु (बांसखेड़ा) और महाराज ईश्वरगुप्त को प्रदान किया गया है जिससे इसकी गरिमा की ओर संकेत मिलता है । निश्चित रूप से यह अधिकारी अक्षपटलिक से उच्च वर्ग का अधिकारी रहा होगा जो राजस्व के उच्चवर्ग के अधिकारियों में से थे । डॉ० फ्लीट के अनुसार अक्षपटलिक दस्तावेजों का संरक्षणकर्ता था ।[380] कौटिल्य के अर्थशास्त्र को 'अक्षपटल' कहा गया और उसके अधिकारी को "गाणनिक" की संज्ञा प्रदान की गयी है ।[381] इन साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि "अक्षपटलिक" आय व्यय के दस्तावेजों एवं हिसाब रखने का अधिकारी था । अग्रवाल महोदय के अनुसार अक्षपटलिक गाँव का राजकीय अधिकारी था जो गाँव की मालगुजारी का पूर्ण विवरण रखता था । ग्राम की मालगुजारी का "अधिकरण" अक्षपटल कहलाता था और उसका अधिकारी अक्षपटलिक होता था ।[381]

बाणभट्ट ने हर्षचरित में लेखक और पुस्तकृत का उल्लेख किया है ।[382] लेखक के विषय में मतभेद नहीं है, इसे लिखने वाला ही माना जाता है, किन्तु पुस्तकृत को भाष्यकार शंकर ने लिपिकार माना है ।[383] गुप्तयुग में बुद्धगुप्त के दामोदरपुर ताम्रपत्राभिलेखों से पुस्तपाल नामक अधिकारी की जानकारी प्राप्त होती है जिसे शासनादेशों के लेखों के संरक्षण का दायित्व प्राप्त था ।[384] संभव है गुप्तकालीन वही पुस्तपाल बाण के समय पुस्तकृत कहलाते थे । राज्य को स्थिरता एवं सुदृढ़ता प्राप्त करने के लिए राजा के शासनादेशों का संरक्षण एवं रखरखाव एक महत्वपूर्ण काम रहा होगा । कादम्बरी में राजकुल का वर्णन करते हुए बाण लिखते हैं कि राजकुल की प्रथम कक्षा में न्यायालय के लिए अधिकरण मण्डप और राजकीय शासन सम्बन्धी अधिष्ठान अधिकरण । सरकारी अधिकरण में लेखक अपने-अपने स्थानों पर बैठते थे ।

वहाँ प्रत्येक गाँव और नगर के नामों की तालिका थी जिसमें हिसाब-किताब, पैदावार, भूमि, लगान आदि सम्बन्धित ब्यौरा लिखा होता था ।[385]

राजकुल में कुछ मन्त्री स्तर के अधिकारी होते थे जो वंशपरम्परा से पद ग्रहण करते थे उन्हें हर्षचरित में मौलमन्त्री कहा गया है । राजा प्रभाकरवर्द्धन की बीमारी के समय वहाँ उपस्थित लोगों में मन्त्री और मौलमन्त्री भी थे ।[386] इसके अलावा हर्ष का वंशानुगत मन्त्रियों से घिरे होने का उल्लेख भी प्राप्त होता है ।[387] टॉमस और कावेल ने मौलों का तात्पर्य "राज्य के मन्त्रियों" और मन्त्रियों का अर्थ सलाहकार अथवा सचिवों से लिया है ।[388]

बाण के समय शुभ कार्य के अवसर पर ब्राह्मणों को दान देना प्रचलित था क्योंकि हर्ष जब दिग्विजय अभियान के लिए प्रस्थान करने लगे, तो ग्रामाक्षपटलिक ने निवेदन किया देव । आपका शासन अव्यर्थ है अतएव आज ही शासन दान आरम्भ करें ।[389] तदनन्तर हर्ष ने सौ गाँव, जिनमें प्रत्येक का क्षेत्रफल एक सहस्र हल से नापा गया था, ब्राह्मणों को दान में दिये ।[390] ब्राह्मणों को दान में दिये गए गाँव अग्रहार ग्राम कहे जाते थे । अग्रहार ग्राम के शासकीय प्रबन्धक को अग्रहारिक कहा जाता था ।[391] आग्रहारिक का आशय हर्षचरित के भाष्यकार के अनुसार गाँव की खेती-बारी की देखभाल करने वाले थे ।[392] हर्ष के विजय प्रस्थान के समय बीच में पड़ने वाले अग्रहार ग्रामों से अग्रहारिक आगे-आगे मंगल के लिए गांव के बड़े बड़े वृद्ध पुरुषों के हाथों में जल कुम्भ उठवाये आ रहे थे ।[393] प्राचीन प्रथा के अनुसार अग्रहार में दिये हुए गाँव सब भाग-भोग से विमुक्त माने जाते थे, किन्तु औपचारिकता वश कुछ आग्रहारिक लोग अपने गावों से राजा का स्वागत करने के लिए भेंट सहित रास्ते में खड़े थे ।[394]

हर्षचरित में महत्तर[395] का उल्लेख गाँव की व्यवस्था से जोड़ा जाता है । कावेल और टॉमस का विचार है कि महत्तरों की तुलना गाँव के मातबरों से की जा सकती है जो गाँव के बड़े बड़े गृहपति होते थे तथा गाँव सम्बन्धी मामलों में

जिनकी बात का बड़ा प्रभाव पड़ता था ।[396] प्राचीन काल में गाँव के अधिकारी को ग्रामिक कहा जाता था जिसका उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मिलता है । कौटिल्य का निर्देश है कि ग्रामिक यदि गाँव से बाहर जाय तो ग्रामवासियों को उसके साथ जाना चाहिए ।[397] हर्षचरित में बाण ने महत्तरों के साथ ग्रामवासियों को उसके साथ जाना स्वागत के लिए एकत्रित दिखाया है । इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जो काय कभी ग्रामिक सम्पादित करता वह अब महत्तर कर रहे थे । गाँव के खेतों की रक्षा के लिए कर्मचारी होते थे ऐसा उल्लेख बाण ने किया है । हर्ष के सैन्य अभियान के समय कर्मचारी आपस में बात करते हुए कहते हैं, भाई बैलों को अलग किये रहो, खेत में रखवाले हैं । भाष्यकार ने वाहीक को परिपालक या गोरक्षक माना है किन्तु कावेल और टामस ने उन्हें निरीक्षक कहा है ।

हर्षचरित में ग्रामवासियों द्वारा प्रशंसा किये जाने वाले आयुक्तों का उल्लेख आता है । यह संभव है ग्राम की शासन-व्यवस्था से जुड़ा कोई अधिकारी रहा होगा । मौर्यकाल में वित्त-विभाग से सम्बन्धित युक्त नामक अधिकारी का उल्लेख हुआ है । संभव है आयुक्तक अथवा युक्त अर्थ विभाग का अधिकारी रहा हो । अशोक के तीसरे शिलालेख में "युक्त" नामक अधिकारी का जिक्र आया है । अधिकतर युक्त का कर्तव्य सचिव या लेखा जोखा का था ।[403] गुप्तकाल में भी इनका जिक्र किया गया है । समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में इन्हें विजित राजाओं के सम्पत्ति लौटाने के लिए नियुक्त किया गया था ।[404] डा0 डी0सी0 सरकार के अनुसार आयुक्त मजिस्ट्रेट या कोषाध्यक्ष थे ।[405]

बाण ने इस ओर संकेत किया है कि जहाँ ग्रामवासियों द्वारा आयुक्तक की प्रशंसा की गयी, दूसरी ओर पूर्वभोगपतियों की निन्दा की गयी । भोगपति का समीकरण निश्चित रूप से आयुक्तक के समकक्ष के किसी अधिकारी के समान रहा होगा गौरीशंकर चटर्जी के अनुसार इसका काम कर संग्रह करना था ।[406] सी0वी0 वैद्य

का विचार है कि भोगिक नामक अधिकारी का उल्लेख दानपत्रों में भी मिलता है। वह अमात्य की श्रेणी का अधिकारी था और प्राय: भूमि सम्बन्धी दान पत्रों को जारी करता था। वह राजस्व से सम्बन्धित अधिकारी था।[407] कांवेल और थॉमस का विचार है कि भोगपति गवर्नर (प्रान्त का शासक) होता था।[408]

चाट नामक कर्मचारी का उल्लेख बाण के हर्षचरित से मिलता है।[409] भाष्यकार ने इसे धूर्त की संज्ञा प्रदान की है।[410] गौरी शंकर चटर्जी का विचार है कि संभवत: चाट पुलिस के कर्मचारी होते थे जो गाँवों में शान्ति व्यवस्था के लिए राजा की ओर से रखे जाते थे किन्तु वे ग्रामवासियों पर अत्याचार करते एवं उन्हें परेशान करते थे।[411] हर्षचरित में चाटों की निन्दा की गई है। फ्लीट के अनुसार चाट अनियमित या अस्थायी सैनिक होते थे।[412] सिनहा का मत है कि चाट राज्य की ओर से नियुक्त चौकीदार, पुलिस अथवा सैनिक स्तर के कर्मचारी रहे होंगे।[413] याज्ञवल्क्य ने भी चाटों से प्रजा की सुरक्षा का दायित्व राजा का कर्तव्य बतलाया है।[414]

बाणभट्ट के हर्षचरित में अनेक स्थानों पर कुलपुत्रों का उल्लेख मिलता है। महाराज प्रभाकर वर्द्धन के ज्वर पीड़ित होने पर सम्पूर्ण दरबार में खामोशी छाई थी, सभी अधिकारी कर्मचारी शोक विह्वल थे जिसमें कुलक्रमागत कुलपुत्र भी शोक धारण किये हुए थे।[415] महारानी यशोवती के अनुमरण के समय वह कुलपुत्रों के उच्छ्वास और महत्तरों से अधिष्ठित एवं दुःखों से अनुगत थी।[416] प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात् कुलपुत्रों की भाँति चक्रवाकों ने दुःखी होकर अपने कलत्रों का त्याग कर दिया था।[417] पिता की मृत्यु के शोक में विह्वल हर्ष के चारों ओर घेरकर बैठने वालों में अमात्य, विद्वान् ब्राह्मण, साधुओं के अतिरिक्त पिता-पितामह की कुल परम्परा के पुराने कुलपुत्र भी थे।[418] बाण भट्ट राजसेवकों पर फब्तियाँ कसते हुए कहता है कि राजसेवक कुलपुत्रों के पास भी अपराधी की भाँति डरा-डरा सा जाता है।[419] गौड़ाधिप के हाथों राज्यवर्द्धन की मृत्यु का समाचार लेकर भण्डि जब हर्ष के

पास आता है तो कुछ कुलपुत्रों से घिरा हुआ अकेले राजद्वार पर पहुँचा ।[420] राज वैद्य रसायन द्वारा अग्नि प्रवेश कर लेने पर हर्ष ने कहा कि यह राजकुल ही अपुण्यवान् है जो उस प्रकार के कुलपुत्र से रहित हो गया ।[421] बाण ने जिस प्रकार कुलपुत्रों का उल्लेख किया है, उससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि यह वंशानुगत राजदरबार के स्थायी सदस्य रहे होंगे । फ्लीट ने कुलपुत्रों को उच्चकुल का माना है ।[422] हर्ष के सैन्य-अभियान के समय कुलपुत्रों पर देहाती नौकर फब्तियाँ कस रहे थे कि परिश्रम तो हम करेंगे और फल लेने ये ।कुलपुत्र। आ जायेंगे ।[423] इससे इस बात का संकेत मिलता है कि ये अभिजात-वर्ग के थे जिन्हें समयानुसार योग्यता के आधार पर विभिन्न पदों पर नियुक्त कर दिया जाता था जैसे रसायन को कुलपुत्र कहा गया है जो राजवैद्य था ।

हर्षचरित में राजा की सुरक्षा में दण्डधारी सैनिकों का उल्लेख आता है । सम्राट हर्ष के द्वारा बुलाये गये गजसाधनाधिकृत स्कन्दगुप्त के राजकुल में प्रवेश करते ही घबड़ाए हुए दण्डधारी सैनिक उनके सामने से लोगों की भीड़ हटाने लगे ।[424] हर्ष के सैन्य अभियान के अवसर पर गाँव के समीप पहुँचते ही राजा के दर्शन के लिए जनसमूह उमड़ पड़ा जिसमें कुछ लोग क्रोधित कठोर दण्डधरों के डराने-धमकाने से दूर भागते हुए गिरते-पड़ते भी राजा पर दृष्टि गड़ाये थे ।[425] कहीं-कहीं नीचे खड़े दण्डधर सैनिकों के डण्डे के डर से उजड्ड ब्राह्मण झट पेड़ों पर चढ़कर बाबी गलौज कर रहे थे ।[426] कादम्बरी में भी राजाओं के सामने से लोगों को हटाने का काम दण्डियों के द्वारा दर्शाया गया है ।[427] दण्डधर लोग व्यवस्था-स्थापन में बड़ी कड़ाई का व्यवहार करते थे ।[428] भगवती प्रसाद पाँथरी का विचार है कि दण्ड धारी सैनिक पुलिस अधिकारी के नीचे कार्यरत सिपाही थे ।[429]

बाणभट्ट ने हर्षचरित में महाराजाधिराज हर्ष के दरबार का वर्णन करते हुए लिखा है कि वे ।हर्ष। दूर तक लम्बे दृष्टिपात से मानों लोकपालों की गलती-सही देख रहे थे ।[430] इसके बाद बाण लिखते हैं कि महाराज हर्ष ने प्रत्येक दिशा में

प्रजापालकों (लोकपालों) की देखभाल के लिए नियुक्त किया ।[431] सन्दर्भ के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि लोकपाल प्रान्तों के रक्षक अथवा प्रान्तपति या शासक थे ।[432] बाण के पूर्ववर्ती राजवंशों गुप्तों के समय प्रान्तपति को गोप्तृ या गोप्ता भी कहते थे । स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने सौराष्ट्र देश के पालन के लिए पर्णदत्त को गोप्ता नियुक्त किया था ।[433] हर्षचरित से ज्ञात होता है कि लोकपाल संभवतः स्थानीय शासकों को भी कहा जाता रहा हो क्योंकि कामरूप के राजाओं का वंशानुचरित वर्णन करते हुए हंसवेग ने कहा था कि "आभोग" नामक छत्र कामरूप के नरक नामक राजा ने छीना था, वह ऐसा वीर था कि उसके बाल्यकाल में ही लोकपाल उसके चरणों पर नत हो गये थे ।[434] सन्दर्भ से इंगित होता है कि लोकपाल नरक नामक राजा के नियुक्त नहीं थे अपितु पहले से शासन कार्य संचालित कर रहे थे । अभिलेखीय साक्ष्यों में पहलादपुर पाषाण स्तम्भ लेख में शिशुपाल नामक राजा को पंचम लोकपाल कहा गया है ।[435]

हर्षचरित में अध्यक्ष नामक अधिकारी का उल्लेख आता है जिनकी संख्या एक से अधिक रही होगी । कामरूप के शासक भास्करवर्मन द्वारा भेजे गये उपहार को हर्ष ने विभिन्न प्रकार के अध्यक्षों को अपने अपने अधिकार के अनुसार स्वीकारा करने की आज्ञा दी थी ।[436] कावेल और थॉमस ने इन्हें विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए नियुक्त निरीक्षक माना है ।[437] प्राचीन भारत में विभिन्न विभागों के भिन्न भिन्न अध्यक्षों का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्राप्त होता है ।[438] संभव है बाण के समय भी उसी के अनुरूप अधिकारियों की नियुक्ति होती रही हो ।

हर्षचरित में गुप्तचर प्रणाली का विशेष उल्लेख नहीं मिलता किन्तु बाण के द्वारा सावित्री और सरस्वती के वार्ता प्रसंग में "मनोरथाः सर्वगताः और रणरणक संचारकः" का प्रयोग महत्वपूर्ण है ।[439] भाष्यकार शंकर ने संचारकः का अर्थ चर या गुप्तचर किया है ।[440] बाण की कादम्बरी में गुप्तचर का उल्लेख किया गया है । महाराज तारापीड के सुयोग्य मन्त्री को राज्य का समस्त समाचार गुप्तचरों

के माध्यम से ज्ञात हो जाता था ।[441] स्मरणीय है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में गुप्तचर व्यवस्था का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है । कौटिल्य ने गुप्तचरों में संचारा: और संस्था: नामक चरों एवं गूढ़पुरुषों का विस्तृत उल्लेख किया है । संचारा: नामक गुप्तचर राज्य के बाहर भी अपना काम करते थे किन्तु संस्था: नामक गुप्तचरों को राज्य के अन्दर राज प्रसाद के अन्त:पुर से लेकर अधिकारियों आदि की गतिविधियों पर नजर रखने का काम सौंपा जाता था । गुप्तचर विभाग जो चरों ।गुप्तचरों। को संचालित करता था उसे संस्था: कहा जाता था ।[442] इस सन्दर्भ में मुकर्जी का कथन है कि बाण द्वारा उल्लिखित सर्वगता ।सब जगह जाने वाले। से शायद गुप्तचर भी अभिप्रेत है ।[443] इसके अलावा कादम्बरी में शुकनास के विषय में कहा गया है कि वह हजारों गुप्तचरों के द्वारा अन्यान्य राजाओं के प्रतिदिन के क्रिया कलाप का निरीक्षण किया करता था ।[444] इससे संकेत मिलता है कि बाणभट्ट के समय राजदूतों का परस्पर आदान-प्रदान होता था । यद्यपि हर्षचरित में इस प्रकार राजदरबार में राजदूतों के उपस्थित रहने का कोई उल्लेख नहीं किया गया है ।

बाणभट्ट के साहित्य हर्षचरित एवं कादम्बरी के अलावा समकालीन चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण में एक ऐसे अधिकारी का जिक्र आता है जिससे सातवीं शताब्दी ई0 के राजाओं में ऐतिहासिक अभिरुचि का पता लगता है । वाटर्स के अनुसार - ह्वेनसांग लिखता है कि राजकीय अभिलेखागारों के संचालन एवं घटनाओं को क्रमबद्ध करने के लिए एक पृथक् अधिकारी नियुक्त किया जाता था । प्रशासन सम्बन्धी वार्षिक विवरण और राजकीय घोषणाओं को सामूहिक रूप से नीलपिट कहा जाता था । नीलपिट में राज्य की प्रत्येक घटनाएँ और दैवी आपदाओं का विवरण लिपिबद्ध किया जाता था ।[446]

सम्राट् हर्ष के अभिलेखों में कतिपय अन्य महत्वपूर्ण प्रशासनिक अधिकारियों का उल्लेख मिलता है जिनमें दौस्साध्यसाधनिक, प्रमातार, राजस्थानीय, कुमारामात्य

उपरिक, विषयपति आदि मुख्य हैं ।[447] मधुबन एवं बांसखेड़ा अभिलेखों में महासामन्त एवं महाराज के बाद दौस्साध्यसाधनिक को रखा गया है इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह उच्च वर्गीय प्रशासनिक अधिकारी था, जिसे राज्य की कठिन समस्याओं से निपटने के लिए रखा गया था ।[448]

डी०सी० सरकार का विचार है कि साधनिक अथवा दौस्साध्यसाधनिक नामक अधिकारी न्यायालयों द्वारा लगाये गये अर्थदण्ड अथवा ऋणों की वसूली का काम करता था ।[449] दौस्साध्यसाधनिक का उल्लेख जीवितगुप्त द्वितीय के देववर्नार्क अभिलेख में भी मिलता है ।[450] किन्तु इसके कार्यक्षेत्र के विषय में निश्चित रूप से अनुमान लगाना कठिन है । बसाक का विचार है कि यह पोर्टर अथवा ग्रामाध्यक्ष के रूप में कार्यभार संभालता था ।[451]

हर्ष के अभिलेखों में प्रमातार नामक अधिकारी का उल्लेख मिलता है तथा स्कन्दगुप्त को महाप्रमातार की उपाधि से विभूषित किया गया है ।[452] इस प्रकार एक ही अधिकारी की महाप्रमातार और प्रमातार दो श्रेणियों का उल्लेख मिलता है । जिससे प्रतीत होता है कि महाप्रमातार के सहायक अधिकारी के रूप में प्रमातार को माना जाता था । मुकर्जी का मन्तव्य है कि संभव है महाप्रमातार एवं प्रमातार धर्म अथवा अध्यात्म के मन्त्री (अशोक के धर्ममहामात्रों के समान) है ।[453]

हर्ष के अभिलेख में स्कन्दगुप्त को दूतक भी कहा गया है ।[454] मनु ने दूतक अथवा दूत को महत्वपूर्ण राजपुरुष कहा है । उसकी योग्यता की चर्चा करते हुए मनु कहते हैं कि उसे सर्वशास्त्रों का ज्ञाता, शुद्ध हृदय वाला, कुशल एवं उच्च कुल का होना चाहिए[455] क्योंकि दूत के अधीन ही देश की पड़ोसी देशों से सन्धि एवं विग्रह होता है ।[456] घसल्याल का मत है कि दूतक का मुख्य कार्य दानपत्रों की घोषणाओं तथा आदेशों को स्थानीय अधिकारियों तक ले जाने का था तथा सम्बन्धित प्रपत्रों को प्रत्याभूत अधिकारियों तक पहुँचाना था ।[457] प्रायः देखा गया है कि

दूतक उच्च श्रेणी तथा स्तर के अधिकारी होते थे क्योंकि हर्ष के मधुबन एवं बाँसखेड़ा अभिलेखों में स्कन्द गुप्त को दूतक के साथ-साथ महाप्रमातार और महासामन्त की उपाधियाँ भी प्रदान की गई हैं । फ्लीट के मत में दूतक का काम राजकीय दान-पत्रों की स्वीकृति सम्बन्धी सूचना स्थानीय अधिकारियों तक पहुँचाना था जो दानपत्र तैयार करवाते थे और दानग्रहीता तक पहुँचाते थे ।[458] हर्षचरित से ज्ञात होता है कि कामरूप के राजा भास्करवर्मन के द्वारा हंसवेग नामक दूत मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भेजा गया था ।[459] कादम्बरी में बाण ने लिखा है कि दूत सम्बन्ध रति-कलह में ही होता था (न कि देशों के मध्य) । इस प्रकार दूतों का कार्य राजा का संदेश लेकर जाना तथा मैत्री स्थापित करने तक था । जीवित गुप्त द्वितीय के देववर्नार्क अभिलेख में दूत तथा दूत प्रैषणिक का उल्लेख आता है ।[461] घोषाल का विचार है कि दूत आधुनिक राजदूत जैसे होते थे जिनका काम विदेशों से मित्रता बनाये रखना था किन्तु दूत प्रैषणिक को विदेशों में संदेश भेजने का अधिकार रहा होगा ।[462]

हर्ष के मधुबन एवं बाँसखेड़ा अभिलेखों में राजस्थानीय नामक अधिकारी का उल्लेख आता है ।[463] गौरी शंकर चटर्जी के अनुसार भुक्तियों के शासकों के अन्य पद नाम राजस्थानीय और राष्ट्रीय भी थे ।[464] फ्लीट के अनुसार राजस्थानीय का शाब्दिक अर्थ "राजस्थान" अथवा राजा की स्थिति होगा ।[465] रमाशंकर त्रिपाठी का मत है कि राजस्थानीय का सम्बन्ध राज-स्थान (किंगडम) के किसी महत्वपूर्ण दफ्तर से था ।[466] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह राज्य के किसी महत्वपूर्ण दफ्तर का अधिकारी था ।[467] लोकप्रकाश में राजस्थानीय के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि प्रजा की सुरक्षा एवं संरक्षण की राजस्थानीय के उत्तरदायित्व थे ।[468] राजतरंगिणी में राजस्थानीय को न्याय-व्यवस्था से सम्बन्धित बताया गया है ।[469] डी०सी० सरकार का मन्तव्य है कि राजस्थानीय वायसराय (राज्यपाल) की तरह राजा के कर्तव्यों का पालन करता था । संभवत: वह अधीनस्थ शासक था ।[470]

कुमारामात्य का सातवीं शताब्दी ई० के अभिलेखों में उल्लेख मिलता है जिनमें हर्ष के मधुबन एवं बांसखेड़ा अभिलेख को उद्धृत किया जा सकता है ।[471] फ्लीट के अनुसार कुमार का अमात्य या मन्त्री कुमारामात्य कहलाता था ।[472] जीवितगुप्त द्वितीय के देववर्नार्क अभिलेख में राजामात्य और कुमारामात्य नामक अधिकारियों का उल्लेख मिलता है ।[473] इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि अमात्यों की श्रेणी में राजा के अमात्य को राजामात्य और कुमार के अमात्य को कुमारामात्य कहा जाता था ।[474] कुमारामात्य की अनेक श्रेणियों का उल्लेख मिलता है । कुमारामात्य के ऊपर महाकुमारामात्य के पद का विवरण प्राप्त होता है ।[475] हर्षचरित से ज्ञात होता है कि राज्यवर्धन एवं हर्षवर्द्धन के अनुचरों के रूप में मालवराज के पुत्र कुमारगुप्त और माधवगुप्त तथा यशोमति के भाई का पुत्र भण्डि नियुक्त किये गये थे ।[476] संभव है ये कुमारामात्य के रूप में रहे हों । अमात्य का एक अर्थ सखा भी होता है । इस परिप्रेक्ष्य में प्रारम्भ में कुमारों के बराबर सम्मान के भागी उनके सखाओं की नियुक्ति होने लगी थी । कालान्तर में यही गौरवपूर्ण पद कुमारामात्य के रूप में नियमित किया गया ।[477] गुप्त-काल में कुमारामात्य पदवी मन्त्रिपरिषद् के मन्त्री, सेनापति आदि को प्रदान की जाती थी । समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्ति में हरिषेण को तीन उपाधियों से विभूषित किया गया है - सान्धिविग्रहिक, कुमारामात्य तथा महादण्डनायक । इनमें सान्धिविग्रहिक सैनिक पद का द्योतक था । महादण्डनायक शासनतन्त्र के अधिकार पद का सूचक था किन्तु कुमारामात्य व्यक्तिगत सम्मानित पदवी का वाचक था ।[478] रामशरण शर्मा ने कुमारामात्य को एक सम्मानसूचक सामन्तवादी उपाधि माना है । जो बड़े-बड़े अधिकारियों को प्रदान की जाती थी । उपाधि धारण कर्ता के राज्य की ओर से राजस्व आदि के सम्बन्ध में कुछ विशेषाधिकार थे या नहीं, कहना कठिन है ।[479] अनन्त सदाशिव अल्तेकर का विचार उक्त मतों से बिल्कुल भिन्न है । उनके अनुसार आधुनिक आई०ए०एस० के समान गुप्त-काल में उच्चाधिकारियों की एक श्रेणी थी जिनके पद का नाम कुमारामात्य था । कुमारामात्य पद के अधि-

कारी कभी जिलाधिकारी थे, कभी सचिव, कभी तरक्की पाकर सेनापति, मन्त्री आदि हो जाते थे । जैसा कि अमात्यों के विषय में मौर्यों और सातवाहनों के समय होता था ।[480] अल्तेकर महोदय का तर्क है कि नौकरी के प्रारम्भ में ।जब वे कुमार या तरुण थे। अमात्य पद पर नियुक्त कर दिये जाते थे इसलिए शायद वे कुमारामात्य के नाम से अभिहित किये जाते रहे होंगे ।[481]

कुमारामात्य के पश्चात् प्रशासनिक ढाँचे के जिस अधिकारी का उल्लेख हर्ष के मधुबन एवं बाँसखेड़ा अभिलेखों में किया है उसे उपरिक की उपाधि प्रदान की गई है । उपरिक प्रान्तों के शासकों को प्रदत्त उपाधि थी ।[482] संभवतः यह उपरि-कर नामक कर को वसूलने का राजस्व अधिकारी था जिसमें से उसे उत्पादन का कुछ अंश प्राप्त होता था ।[483] पं० रमाशंकर त्रिपाठी के अनुसार उपरिक प्रान्तों के गवर्नर थे ।[484] यू०एन० घोषाल की मान्यता है कि प्रान्तों, जिसे भुक्ति की संज्ञा प्रदान की जाती थी, के शासक उपरिक कहे जाते थे ।[485] किन्तु गुप्तकाल में जब कोई राजकुमार इस पद पर नियुक्त किया जाता था तब उपरिक के साथ महाराज की उपाधि प्रदान की जाती थी ।[486] त्रिपाठी महोदय का विचार है कि कम से कम गुप्त-काल में उपरिक को शासक स्वयं नियुक्त करता था[487] किन्तु बाण के समय इसकी नियुक्ति का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होता है । गुप्त काल में उपरिक को दूतक का कर्तव्य निर्वाह करते हुए दिखाया गया है । महाराज सर्वनाथ के खोह ताम्रपत्राभिलेख में दूतक उपरिक मात्रिमित्र का उल्लेख आता है ।[488] बाण के परवर्ती काल को शासकों के अभिलेखों में इस अधिकारी का उल्लेख पूर्वरूप में हुआ है। जीवितगुप्त द्वितीय के देववर्नार्क अभिलेख[489] में उपरिक का उल्लेख इस तथ्य की पुष्टि करता है ।

उपरिक के बाद महत्वपूर्ण अधिकारी विषयपति होते थे जिनका उल्लेख बाण के आश्रयदाता सम्राट् हर्ष के अभिलेख द्वय में मिलता है ।[490] हर्ष के अभिलेखों से

ज्ञात होता है कि प्रशासनिक दृष्टि से भुक्तियों को उपविभागों में विभाजित किया गया था । मधुबन ताम्रपत्र अभिलेख में सोमकुण्ड नामक ग्राम का उल्लेख आया है जो श्रावस्ती भुक्ति के अन्तर्गत कुण्डधानी विषय में स्थित था ।[491] इसी प्रकार बासखेड़ा ताम्र पत्र अभिलेख में पश्चिमी पाथक के अहिच्छत्रा भुक्ति के अंगदीय विषय का उल्लेख किया गया है ।[492] यह प्रशासनिक विभाजन परवर्ती शासकों के समय भी प्राप्त होते हैं । आठवीं शताब्दी ईसवी के जीवगुप्त के कटरा ताम्र पत्र अभिलेख में तिष्टिहलपाटक के पूर्वोत्तर में तीरभुक्ति के वासुण्डा विषय का उल्लेख है ।[493] जायसवाल महोदय का कहना है कि भुक्ति, विषय और पाथक तत्कालीन प्रशासनिक ढाँचे के क्रमशः उपविभाजन थे जिसमें विषय के शासक को विषयपति की उपाधि से विभूषित किया जाता था ।[494] बाण के समकालीन स्रोतों से यह ज्ञात नहीं होता कि विषय पति की नियुक्ति कौन करता था ? किन्तु गुप्त युग के साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि विषयपति की नियुक्ति उपरिक करता था, कभी कभी शासक के द्वारा इनकी नियुक्ति भी होती रही ।[495] जायसवाल के अनुसार संभवतः यही परम्परा सातवीं आठवीं शताब्दी ई० में भी प्रचलित रही होगी ।[496] फ्लीट के अनुसार-गुप्तकाल में स्कन्दगुप्त गुप्त के द्वारा अन्तर्वेदी विषय के लिए शर्वनाग को विषय-पति नियुक्त किया गया था ।[497] इनके कार्य के विषय में गुप्त कालीन साक्ष्य बहुत महत्व के हैं । गुप्तकाल में इनका मुख्यालय नगरों में होता था जिसे विषयाधिकरण कहा जाता था । दामोदरपुर ताम्र पत्र अभिलेख में इनकी प्रशासनिक समिति का उल्लेख किया गया है जिसमें नगर श्रेष्ठि, सार्थवाह, प्रथम कुलिक, प्रथम कायस्थ तथा पुस्तपाल का नाम प्राप्त होता है । बसाक महोदय ने नगरश्रेष्ठि को पूँजीपतियों का प्रमुख माना है ।[498] सार्थवाह व्यापारियों के संगठन का प्रमुख था ।[499] प्रथम कुलिक को रमाशंकर त्रिपाठी[500] और डी०सी० सरकार[501] शिल्पियों का प्रमुख मानते हैं जबकि पाण्डेय महोदय ब्याज पर ऋण देने वाले साहूकारों के संघ का मुखिया मानते हैं ।[502] इस प्रकार गुप्त-युग के समान प्रशासनिक ढाँचे का स्वरूप बाण के समय सातवीं शताब्दी ईसवी में भी रहा होगा, जिससे प्रशासन को अच्छी तरह

सुसंचालित किया जा सके । जैसा कि बनर्जी महोदय का विचार है कि गुप्त-कालीन शासन पद्धति ही कुछ साधारण परिवर्तनों के साथ हर्ष के समय (बाण के समय) में भी प्रचलित थी । राजा के नीचे दायित्वपूर्ण पदों पर जो अधिकारी और कर्मचारी काम करते थे, उनके नाम प्रायः बिल्कुल वे ही थे जो गुप्त काल के कर्मचारियों के थे । मौर्य तथा गुप्त काल की शासन संस्थाओं तथा कर्मचारियों के नाम में कुछ अन्तर था किन्तु गुप्त तथा सातवीं शताब्दी ईसवी के नामों और संस्थाओं में इस प्रकार का कोई विशेष अन्तर नहीं था ।[503]

सैन्य संगठन

प्राचीन भारत से सेना का महत्व प्रत्येक राजनीतिशास्त्रों ने स्वीकार किया है । कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इसे राज्य के सप्तांगों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । कौटिल्य प्राचीन आचार्यों के उस मत का समर्थन करते हैं जिसमें कहा गया है कि शूर, बलवान, नीरोग, शस्त्रास्त्र चलाने में निपुण, केवल अपनी ही सेना की सहायता पर निर्भर रहने वाला उत्साहशक्ति सम्पन्न राजा, प्रभावशक्ति सम्पन्न राजा को अच्छी तरह जीत सकता है ।[504] आचार्य कौटिल्य सप्तांगों के ऊपर आई विपत्ति की तुलना करते हुए स्वामी अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, सेना और मित्र इनमें पूर्व-पूर्व की स्थिति को अत्यन्त कष्टकर निर्दिष्ट किया है ।[505] मनु का विचार है कि जब राजा ठीक तरह से अपनी सेना को हृष्ट पुष्ट जान लें और शत्रु की दशा इसके विपरीत जाने तब शत्रु पर चढ़ाई करें ।[506] कामन्दक नीतिसार में कोष से अधिक महत्व सेना को दिया गया है । कामन्दक के अनुसार एक बलशाली सेना के द्वारा राजा सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन कर सकता है ।[507] इसके विपरीत कामन्दक का मन्तव्य है कि राजा को यथासंभव युद्ध टालना चाहिए । उनके अनुसार अनपेक्षित युद्ध जीवन को कलंकित एवं नारकीय बना देते हैं ।[508]

बाणभट्ट के समय देश में छोटे छोटे राज्यों का उदय हुआ । सार्वभौम

सत्ता के विकेन्द्रीकरण के कारण युद्ध की संभावना प्रबलतम होती गयी, जिससे शासकों को सेना की आवश्यकता अधिक महसूस होने लगी । इस काल में सेना के अलावा देश की रक्षा के सारे उपाय निष्फल होते दिख रहे थे । ऐसी स्थिति में किसी भी शासक की ऐसी हिम्मत नहीं थी जो सेना की उपेक्षा कर सके । किन्तु प्राचीन सेना संगठन के स्थान पर सातवीं शताब्दी ईसवी के सैन्य संगठन का स्वरूप परिवर्तित हो गया था । ह्वेनसांग लिखता है कि आवश्यकता के अनुसार सैनिकों की भर्ती होती थी और उन्हें निर्धारित वेतन दिया जाता था तथा सार्वजनिक रूप से पंजीकरण होता था ।[509] परिस्थितियों के अनुसार बुलाया जाता था और घोषणा के बाद नामांकन के लिए प्रतीक्षा करते थे ।[510] सिनहा का मन्तव्य है कि संभवतः यह ऐसी सेना थी जिसे आवश्यकतानुसार समय समय पर बुलाया जाता था ।[511] चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार देश के स्थायी (मुख्य) सैनिक बलवान लोगों में से चुने जाते थे अथवा वंश परम्परा से नियुक्त किये जाते थे जिसके पिता सैनिक होते थे । उनके लिए युद्ध-कला जानना आवश्यक होता था । शान्ति के समय वे राजमहल की सुरक्षा के रहते थे किन्तु सैन्य अभियान के समय सेना की अगली पंक्ति मे रहते थे ।[512]

बाणभट्ट के पूर्व प्राचीन भारत के राजवंशों में भारी भरकम सेना का विवरण प्राप्त होता है । ए०एल० बासम के अनुसार नन्द सेना में 2 लाख पदादि, बीस हजार घुड़सवार, दो हजार रथ तथा तीन हजार हाथी थे ।[513] इसी प्रकार मौर्य काल में 6 लाख पदादि, तीस हजार घुड़सवार और नौ हजार हाथियों की सेना का उल्लेख मिलता है ।[514] इससे प्रतीत होता है कि प्राक् मौर्य-काल तथा मौर्य काल में पदादि सेना पर विशेष बल दिया जाता था । जब ह्वेनसांग के विवरण से बाण के समय की जो स्थिति स्पष्ट होती है उसमें पदादि सेना की संख्या का कोई विवरण नहीं प्राप्त होता है । ह्वेनसांग कहता है कि हर्ष छः वर्षों के अनवरत युद्ध के पश्चात् पंच गौड़ों पर आधिपत्य स्थापित करके उसने सेना की संख्या में बढ़ोत्तरी की । हाथियों की संख्या साठ हजार और घुड़सवारों की संख्या एक लाख तक पहुँच

गयी थी ।[515] स्मरणीय है कि चीनी यात्री ने अश्वसेना और हस्ति सेना की संख्या वृद्धि के बावजूद पदादि सेना का कोई विवरण नहीं प्रस्तुत किया । संभावना की जा सकती है कि हस्तिसेना एवं अश्व सेना में वृद्धि के साथ पदादि सेना का भी विस्तार हुआ रहा होगा । किन्तु उल्लेखनीय है कि ह्वेनसांग ने जो संख्या सातवीं शताब्दी ईसवी के समय हर्ष की सेना की दी है उसमें हस्ति सेना और अश्व सेना पूर्ववर्ती नन्द, मौर्य आदि की सेनाओं से बड़ी थी ।

बाणभट्ट ने भी हर्ष के विशाल सेना की ओर संकेत किया है कि सैन्य अभियान के समय स्वयं सम्राट ने अपनी सेना पर विस्मय किया ।[516] इस सन्दर्भ में रामशरण शर्मा का विचार है कि ह्वेनसांग ने हर्ष की सेना का जो विवरण प्रस्तुत किया है यदि उसे अतिरंजित भी माना जाय तो भी वह सेना वस्तुतः मौर्यवाहिनी से बड़ी रही होगी । विचारणीय यह है कि एक तो हर्ष का राज्य मौर्यों के राज्य से बहुत छोटा था और उस पर भी उसका वैसा प्रभावकारी नियन्त्रण नहीं था जैसा कि मौर्य शासकों का अपने राज्य पर था फिर वह इतनी बड़ी सेना कहां से रख पाता होगा तथा अपेक्षाकृत इतने छोटे राज्य के लिए इतनी बड़ी सेना की आवश्यकता क्यों थी ?[517] शर्मा का विचार है कि संभवतः वह एक सामन्ती सेना थी जो युद्ध काल में ही खड़ी की जाती थी । ऐहोल अभिलेख के साक्ष्य से यह ज्ञात होता है कि हर्ष की विशाल सेना के अधिकांश सैनिक सामन्तों के थे ।[518]

कौटिल्य के अनुसार सेना में तेज की अतिशयता होने के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों की सेनाओं में उत्तर-उत्तर की अपेक्षा पूर्व-पूर्व की सेना अधिक श्रेष्ठ है ।[519] आगे वे कहते हैं कि शत्रु पक्ष ब्राह्मण सेना के समक्ष नमस्कार कर या सिर झुका कर उसको अपने वश में कर लेता है अतएव युद्ध विद्या में निपुण क्षत्रिय सेना को ही सर्वाधिक श्रेष्ठ समझना चाहिए । वैश्य सेना एवं शूद्र सेना को उस स्थिति में श्रेष्ठ समझना चाहिए जब उसमें वीर पुरुष हों ।[520] बाणभट्ट के साहित्य में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता कि सैनिक किस वर्ण के

होते थे। बाण ने हर्षचरित में लिखा है कि हर्ष की सेना में दक्षिण भारत से भी सैनिक भर्ती किये गए थे। उनके अनुसार दक्षिणी (सैनिक)सवार खच्चरों पर तकलीफ से बैठे हुए फिसल पड़ते थे।[521] हर्ष की सेना के दक्षिण भारतीय सैनिक महाराष्ट्र के अलावा संभवतः तमिलनाडु के पल्लव राज्य से भर्ती किये गये रहे होंगे। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि चालुक्य नरेश पुलकेशिन् द्वितीय से हर्ष का वैमनस्य था और चालुक्यों की शत्रुता पल्लवों से थी। कूटनीतिक एवं सामरिक रणनीति की दृष्टि से दक्षिण के सैनिकों को हर्ष ने अपनी सेना में भर्ती किया रहा हो। भारत में आयुध जीवी सैनिकों का एक सुदीर्घ इतिहास है। यह असंभव नहीं है कि आजी-विका की खोज में दक्षिण के कुछ पेशेवर सैनिक उत्तर भारत में आकर स्वेच्छा से हर्ष की सेना में स्वयं भर्ती हो गए होंगे। ध्यातव्य है कि विष्णुधर्मोत्तर पुराण में विभिन्न क्षेत्रों के सैनिकों की युद्ध-कला के विषय चर्चा की गयी है जिसमें दक्षिण के लोगों को ढाल-तलवार में निपुण, बंगाल एवं पहाड़ी क्षेत्रों के लोगों को धनुष विद्या में निपुण बताया गया है।[522] संभव है हर्ष ने दक्षिण के सैनिकों के शस्त्र, कौशल से आकर्षित होकर इनको अपनी सेना में भर्ती किया रहा हो।

भारतीय परम्परा में चतुरंगिणी सेना का उल्लेख मिलता है जिसके आधार पर बाणभट्ट ने भी चतुरंगिणी सेना का वर्णन श्लेषात्मक ढंग से किया है[523] किन्तु हर्ष के सैन्य अभियान में रथ सेना का कहीं उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु उल्लेखनीय है कि बाण ने कादम्बरी में चन्द्रापीड की शिक्षा के अन्तर्गत रथचर्या का जिक्र किया है[524] जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि रथों का उपयोग युद्ध में भले न रहा हो किन्तु रथ संचालन का ज्ञान आवश्यक था। एक विद्वान् का मत है कि रथचर्या का सविशेष उल्लेख है यद्यपि गुप्तोत्तर काल की युद्ध विद्या में रथों का उपयोग तेज घुड़सवार सेनाओं के कारण घटता जा रहा था।[525] बाण के समकालीन चीनी यात्री ह्वेनसांग ने सेना के चार अंगों - पदाति, अश्वसेना, रथ सेना तथा हस्तिसेना का उल्लेख किया गया है।[526] वह लिखता है कि रथ में चार घोड़े जाते जाते थे।

रथ हांकने के लिए दो-दो सारथी दायें-बायें रहते थे । सिपाहियों का नायक रथ पर सवार होकर चलता था । उसके चारों ओर रक्षकों की पंक्ति रहती थी । सामने अश्वारोही रहते थे जो आक्रमण करते थे । पराजय की संभावना होने पर वे इधर-उधर मौका देखकर पंक्तिबद्ध हो जाते थे ।[527] ह्वेनसांग के उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि इन रथों का प्रयोग मात्र प्रदर्शन के लिए शान्ति-काल में होता रहा हो क्योंकि इस काल में कहीं भी युद्ध में रथों के प्रयोग का उल्लेख नहीं मिलता है । परम्परागत वर्णन में कहीं-कहीं चतुरंगिणी सेना का उल्लेख किया गया है । जिसमें रथ सेना भी सम्मिलित मानी जाती है । दण्डी के दशकुमारचरित में चतु-रंगिणी सेना का उल्लेख मिलता है ।[528] सम्राट् हर्ष की नाटिकाओं में भी मात्र तीन अंगों पदादि, अश्वारोही और गजारोही सेनाओं का ही वर्णन मिलता है । प्रियदर्शिका में विजयसेन राजा को युद्ध का विवरण सुनाते हुए कहता है कि आपके आदेशानुसार यहाँ से चलकर हाथी, घोड़े और पैदल के सेना के साथ तीन दिनों में दीर्घमार्ग को तय कर अचानक विन्ध्यकेतु के ऊपर चढ़ गये ।[529] इसी प्रकार रत्ना वली में विजय वर्मा के द्वारा हाथियों, घोड़ों और पैदल सेनाओं के विशाल सैन्य निकर के साथ कोशल नरेश पर आक्रमण का उल्लेख मिलता है ।[530] श्री राम गोयल के अनुसार रथ सेना भारतीय सेनाओं में गुप्तकाल से ही महत्वहीन हो गई थी ।[531] संभवतः चीनी यात्री ने सैद्धान्तिक सूची पेश किया है क्योंकि रथों की उपयोगिता गुप्त-काल से ही समाप्तप्राय हो चुकी थी ।[532] रथों का अस्तित्व केवल सैनिक समारोहों आदि के अवसर तक ही सीमित रह गया रहा हो तो असंभव नहीं है ।

सातवीं शताब्दी ईसवी में सेना के साथ ऊँटों और खच्चरों का उल्लेख मिलता है । बाण के हर्षचरित से ज्ञात होता है कि राजद्वार ऊँटों के उपस्थिति से कापिल वर्ण का हो गया था ।[533] ऐसा प्रतीत होता है कि ऊँटों का प्रयोग संदेहवहन तथा भारवहन के लिए अधिक किया जाता था । राज्यवर्द्धन को बुलाने के लिए दीर्घाध्वग दूतों तथा वेगगामी साइनी सवारों को भेजा गया था ।[534] दिग्विजय के समय

सैन्य अभियान में वर्णित है कि दुष्ट हाथियों के ऊपर ऊँटों के माध्यम से समान लादा जाता था ।[535] बाण ने सामानों से लदे ऊँटों के बलबलाने का उल्लेख किया है ।[536] खच्चरों को समान ढोने के लिए रखा जाता था किन्तु यत्र-तत्र नौकरों के द्वारा इन पर सवारी करने का उल्लेख मिलता है ।[537] सामान ढोने में बैलों का उपयोग भी किया जाता था । बाण के उल्लेखानुसार बैलों पर ऐसे सामानों को लादा जाता था जो मांगने पर तुरन्त मिल सके ।[538]

हर्ष के मधुबन एवं बांसखेड़ा ताम्रपत्र अभिलेखों में नौ सेना का उल्लेख मिलता है[539], जबकि बाणभट्ट के साहित्य में नौसेना का कहीं भी जिक्र नहीं किया गया है । इस विषय में विद्वानों का विचार है कि ऐसे समय में जबकि संचार माध्यम के लिए घोड़े से अधिक तेज सवारी का अभाव था, राजमार्ग, व्यापार आदि के लिए नदियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । गंगा जो कि हर्ष के साम्राज्य के हृदयस्थल से होकर बहती थी, इन कार्यों के लिए उपयुक्त थी । इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि बंगाल और उड़ीसा पर हर्ष के साम्राज्य विस्तार के साथ व्यापार और सैन्य विभाग के द्वारा समुद्रों का प्रयोग भी किया गया होगा ।[540]

हस्ति सेना

बाण के साहित्य से तत्कालीन सेनाओं में हस्ति सेना के महत्व पर विशेष प्रकाश पड़ता है । बाण के हर्षचरित से ज्ञात होता है कि हर्ष की सेना में अनेक अयुत हाथियों की संख्या थी । (अनेकनागायुतम्)[541] ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि हर्ष की सेना में साठ हजार हाथी थे । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बाण के वर्णन जिसमें अनेक अयुत शब्द का प्रयोग किया गया है, एक अयुत दस हजार का होता है । ह्वेनसांग के विवरण से इसकी पुष्टि होती है । बाण ने एक स्थान पर हर्ष को "महावाहिनीपति" की उपाधि से विभूषित किया है जिससे उसके विशाल सेना रखने की पुष्टि होती है । बाण हर्षचरित में एक स्थान पर कहता है कि उसके

आश्रयदाता सम्राट् हर्ष श्रद्धा से ऐसा कर्म करता है जिसमें दान हो, बल्कि दान जल बहाने वाले कीट रूप हाथियों का संग्रह नहीं करता ।[543] इस कथन का आशय यह निकाला गया है कि हर्ष की साधन श्रद्धा या सेना विषयक आस्था हाथियों पर विशेष थी ।[544]

उल्लेखनीय है कि हाथियों का महत्व सेना में प्राचीन काल से था । कौटिल्य ने सेना के हाथियों की श्रेणी तथा उनके कार्यों का विस्तृत उल्लेख किया है । कार्यभेद के अनुसार हाथियों की चार श्रेणियों का उल्लेख किया गया है : दम्य (शिक्षा देने योग्य), सान्नाह्य (युद्ध के योग्य), औपवाह्य (सवारी के योग्य) तथा व्याल (घातक वृत्ति वाला) इनमें प्रत्येक के अनेक उपभेद किये गये हैं ।[545] इस प्रकार कौटिल्य के उल्लेख से सेना में हाथियों की महत्ता पर प्रकाश पड़ता है । मौर्य सेना में हस्ति सेना की संख्या प्राचीन यूनानी रोमन लेखकों के अनुसार 8 या 9 हजार थी ।[546] गुप्त-युग तक आते-आते सेना में हाथियों की संख्या कम हो गयी थी । रघुवंश में घोड़ों की सेना का विस्तृत उल्लेख किया है ।[547] गुप्तों ने यह परिवर्तन संभवतः शकों के प्रभाव के फलस्वरूप किया होगा । शकों का अश्व प्रेम विश्व विख्यात था । गुप्त काल में अश्व सेना अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गयी थी । बाण के समय में विशाल गज सेना की वृद्धि के लिए कतिपय ऐतिहासिक कारणों को खोजा जा सकता है । घुड़सवार सेना की मार को सामने से तोड़ने के लिए हाथियों का प्रयोग सफल ज्ञात हुआ होगा । इसके अतिरिक्त गुप्त साम्राज्य के ध्वंसावशेष पर पल्लवित सामन्त व्यवस्था के कारण अनेक सामन्त, महासामन्त और मांडलिकों की संख्या में वृद्धि हुई जिससे प्रत्येक ने अपने-अपने सुरक्षा के लिए नये-नये दुर्गों का निर्माण करवाया । दुर्गों को तोड़ने के लिए घोड़े उतने कारगर नहीं हो सकते थे जितने हाथी थे ।[548] हाथियों के इस द्विविध प्रयोग का संकेत स्वयं बाण द्वारा भी किया गया है । उसने हाथियों को लोहे की दीवार कहकर शत्रु द्वारा होने वाली बाणवृष्टि को सहन करने में समर्थ कहा है ।[549] हर्षचरित से ज्ञात होता

है कि हाथियों को बाण ने राज्य के संचरणशील गिरि दुर्ग, जिसमें कुम्भ के रूप में ऊपरी भाग में अटालक था ।[550] के रूप में वर्णित किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे दुर्ग के बुर्ज से सैनिक प्रहार करते हैं, वैसे ही हाथियों पर भी लकड़ी के ऊँचे ऊँचे अटालक (बुर्ज) रखे जाते थे, जिनमें सैनिक बैठकर पहाड़ी किलों को तोड़ते थे । बाण ने ऐसे ही बुर्जों को कूटटालक की संज्ञा प्रदान की है । उल्लेखनीय है कि माघ के शिशुपाल वध में कहा गया है कि हाथी के पीठ पर बैठकर धनुर्धारी सैनिक बाण सन्धान करते थे ।[551] हाथियों का सेना में उपयोग के विषय में बाण द्वारा "हस्तपाशाकृष्टि" और "वागुरा" शब्दों का प्रयोग महत्व रखता है ।[552] "हस्तपाशाकृष्टि" से शत्रु के चलते-फिरते कूट यंत्र फँसाये जाते थे और वागुरा से घोड़े या हाथी पर सवार सैनिकों को खींच लिया जाता था ।[553] बाण ने हाथियों को शत्रु सेना पर अकस्मात् आक्रमण करने तथा मथने वाला कहा है ।[554] कादम्बरी में भी चन्द्रापीड के विजय अभियान में गज सेना का विस्तृत उल्लेख है । दिशाएँ गजों से व्याप्त थी ।[555] कादम्बरी में बाण ने लिखा है कि पुन्नाग वृक्षों की सुगन्धि से भौरे (शिलीमुख) ऐसे खिंचे आ रहे थे जैसे युद्ध में हाथी शिलीमुखों को खींच लेते हैं ।[556] इस सन्दर्भ में विद्वानों का मत है कि महासमर के मुख भाग अर्थात् युद्ध भूमि की प्रथम पंक्ति में गज सेना रखी जाती थी । उसके सिखाए हुए हाथी अपनी सूड़ों से पाश या कमन्द फेंक कर शत्रुपक्ष के शिलीमुखों को खींच लेते थे ।[557] उल्लेखनीय है कि अमरकोश में शिलीमुख का अर्थ बाण और भौंरा किया गया है ।[558] शिलीमुख शब्द यहाँ पारिभाषिक लगता है । गुप्तों की समकालीन सासानी सेना तीन प्रकार के विध्वंसक साधन काम में लाती थी : बैटेरिंग रैम, बैलिस्टा, मूविंग टावर । इनमें मूविंग टावर को हर्षचरित का "संचारी कूटटालक" माना गया है । बैटरिंग रैम हुड़का था । बैलिस्टा पत्थर के ढोके फेंकने के काम आता था और वही शिलीमुख ज्ञात होता है । प्रशिक्षित हाथी इन्हें खींच कर गिरा लेते थे । इसे ही बाण ने दर्पशात के प्रसंग में हस्तपाशाकृष्टि कहा है ।[559] युद्ध के अवसर पर हाथियों के कार्यों का विस्तृत उल्लेख अर्थशास्त्र में प्राप्त होता है।

उसके अनुसार अपनी सेना के आगे-आगे चलना, पहले से तैयार न किये हुए मार्ग, निवास घाट आदि बनाना, शत्रुसेना को तितर-बितर करना, पंक्ति में खड़ा होकर शत्रु के आक्रमण को रोकना, शत्रु की सेना में घुसना, आपत्ति के समय अपनी सेना को संगठित करना और शत्रु की सेना को कुचलना आदि कार्य हाथियों द्वारा संपादित होते थे जिसे हस्तिकर्म नाम दिया गया है ।[560] कामन्दक के अनुसार दुर्गों को तोड़ना भी हाथियों का एक महत्वपूर्ण कार्य था ।[561] कौटिल्य[562] और कामन्दक[563] के विचार में युद्ध क्षेत्र में राजा की विजय हाथियों पर निर्भर करती है । विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार हस्ति सेना शत्रु को तोड़ने, शत्रु सेना को नष्ट करने तथा दीवाल को ध्वस्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है ।[564]

युद्ध में सैन्य कर्म के अतिरिक्त हाथियों से अन्य कार्य भी सम्पादित किये जाते ह थे । इन असैनिक कार्यों का उल्लेख बाण के हर्षचरित में मिलता है । उसके अनुसार हाथियों का उपयोग सामान ढोने में किया जाता था ।[565] कुमुकी हाथियों की सहायता से नये हाथियों को पकड़ा जाता था ।[567] हथिनियाँ पहरा देने की सहायता से नये हाथियों को पकड़ा जाता था ।[567] राजकीय उत्सवों पर जुलूस में हाथियों को सम्मिलित किया जाता था ।[568] सबसे आगे बिना सवारी के हाथी चलते थे जिनके मस्तक पर पटकुम्भ बंधा रहता था ।[569] उल्लेखनीय है कि बाण ने हर्ष के द्वारा सैन्य अभियान के पूर्व गजसाधनाकृत स्कन्दगुप्त को आदेश देकर प्रचार के लिए बाहर गयी गजसेना को शीघ्र बुलाने का उल्लेख किया है ।[571] भाष्यकार शंकर ने प्रचार का अर्थ चरने से लगाया है ।[572] बाण के वर्णन से ऐसा संभव भी लगता है क्योंकि हाथियों के लिए चारा एकत्र करना एक समस्या रही होगी । बाण लिखता है कि सेना में प्रत्येक समय हाथियों के चारे के लिए प्रतीक्षा की जाती थी।[573] इसके लिए नियुक्त कर्मचारी (कटक कदम्बक) गाँव-गाँव, नगर और मण्डी में चारा भूसा एकत्र कर उसकी सूचना देते रहते थे ।[574] ऐसी परिस्थिति में चरने का अर्थ लगाया स्वाभाविक लगता है, किन्तु प्रो० अग्रवाल का विचार है कि प्रचार

का अर्थ प्रशिक्षण प्राप्त करना था । कौटिल्य का उद्धरण देते हुए उनका मानना है कि कौटिल्य के समय "हस्तिप्रचार"[575] पद हाथियों के प्रशिक्षण के लिए प्रयुक्त होता था । ऐसा प्रतीत होता है कि हाथियों की भारी-भरकम संख्या के कारण नगर में कहीं एक स्थान पर एकत्र करके प्रशिक्षण देना संभव नहीं था अतः शान्ति काल में उन्हें नगर के बाहर उचित सैनिक प्रशिक्षण के लिए भेज दिया जाता रहा होगा ।[576]

बाणभट्ट ने जब समकालीन सेनाओं में हस्ति सेना का विस्तृत ब्यौरा पेश किया तब उन्हें विशालकाय सेना के जुटाने का स्रोत भी ढूढना था । इस सन्दर्भ में बाण ने हर्षचरित में हाथियों के प्राप्त करने के नौ स्रोत बतलाये हैं जिनमें वनों से पकड़कर लाये गये नवीन हाथी (अभिनव बद्ध), कर के रूप में प्राप्त (विषयोपार्जित), उपहार में प्राप्त (कौशलिकागतैश्च), नागवन के अधिपतियों द्वारा भेजे गये (नागवीथीपालप्रेषितैः), सम्राट् के प्रथम दर्शन के कुतूहल में लाये गये (प्रथमदर्शनकुतूहलोपनीतैः), दूतमंडलों के साथ भेजे गये (दूतसम्प्रेषितैः), शबर बस्तियों के सरदारों द्वारा भेज गये (पल्लीपरिवृढढौकित) गजयुद्ध की क्रीडाओं और खेल तमाशों के लिए बुलवाये गये या स्वेच्छा से दिये गये (स्वेच्छायुद्धक्रीडाकौतुककारितैः), बलपूर्वक छीने गये (दोपमानैश्चाच्छिद्यमानैः) का उल्लेख किया गया है ।[577] यहाँ सम्राट के प्रथम दर्शन के कुतूहल में लाये हाथियों के विषय में कुछ विद्वान् मानते हैं कि संभवतः सम्राट से पहली मुलाकात करने वाले राजा, सामन्त आदि के लिए हाथी भेंट में लाना आवश्यक कर दिया गया था । इसके अलावा बाण ने उत्तम हाथियों के लक्षणों का उल्लेख भी हर्षचरित में किया है । उनके अनुसार एक उत्तम हाथी में चिकने नख, कठोर रोम भारी मुख, कोमल सिर, छोटा ग्रीवा मूल तथा पतला पेट, लम्बी आयु होना चाहिए । हर्ष के प्रिय हाथी दर्पशातकी सर्वगुण सम्पन्न बताया गया है । बाण ने दर्पशात का वर्णन करते समय लिखा है कि वह अपनी सूड के अर्गलादण्ड को जिसमें मानों अनेक समरों की विजय की गणना-लेख हों, ऐसे महीन चारों ओर की लकीरों से मध्यभाग में युक्त, प्रतिद्वन्द्वी हाथी के मद जल की वायु ग्रहण करके दूर

ऊपर उठाया । हर्षचरित के उल्लेख से ज्ञात होता है कि हाथियों में चतुर्थ अवस्था (तीस से चालीस वर्ष के बीच) शरीर पर लाल बुदकियाँ जैसी फूटती थीं । अविरल मधुबिन्दुपिङ्गलपद्मजालकितां सरसीमिवा त्यगाद्दां दशां चतुर्थीमुत्सृजन्तम्) । बाण द्वारा प्रयुक्त "मल्लीलाओं में बलभद्र पद से विद्वान् यह आशय निकालते हैं कि भद्र जाति के हाथी सर्वोत्तम होते थे ।[583] किन्तु ऐसा तर्कसंगत नहीं लगता । बलभद्र के लिए प्रसिद्धि थी कि वे मद में मस्त रहा करते थे । स्वप्नवासवदत्तम् में भास ने लिखा कि मदिरापान से आलसी होने वाली बलराम की भुजायें आपकी रक्षा करे ।[584] इसी प्रकार बाण ने कादम्बरी में बलराम को मदिरा के मद से उन्मत्त बताया गया है ।[585] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि बाण ने जो हाथियों के विषय में "बलभद्र" का प्रयोग किया है । वह मात्र हाथियों के मदमस्तता का द्योतक है न कि किसी देश विशेष के होने का, जैसा कि अग्रवाल महोदय मानते हैं ।

सेना के उपयोग के लिए हाथियों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाता था । कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में युद्ध के योग्य (सान्नाह्य) हाथी को प्रशिक्षण के आधार पर वर्गीकृत करते हुए सात प्रकार की प्रशिक्षण शैली का उल्लेख किया है जिनमें उपस्थान (आगे पीछे के अंगों को ऊँचा-नीचा, छोटा-बड़ा करने वाला तथा रस्सी आदि को लाँघने वाला), संवर्तन (सो जाने, बैठ जाने, कूदने फाँदने वाला), संयान (सीधी-तिरछी, गोलाकार चालों को समझने वाला), वधावध (सूँड़, दाँत आदि से प्रहार करने या पकड़ देने वाला), हस्ति युद्ध, नगरायण (नगर को नष्ट करने वाला), सांग्रामिक (जो आम युद्ध करने वाला) है ।[586]

बाणभट्ट के हर्षचरित से हाथियों को प्रशिक्षण देने के विषय में व्यवस्थित वर्णन नहीं प्राप्त होता यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त है । हर्षचरित से ज्ञात होता है कि महामात्र लोग चमड़े का भरा हुआ हाथी का पुतला तैयार करके उसके द्वारा हाथियों को युद्ध की शिक्षा देते थे ।[587] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कौटिल्य द्वारा

निर्देशित हस्ति युद्ध (हाथियों का आपस में संघर्ष) की कला बाण के समय हाथियों के पुतले से सिखाया जाता था। इसके अलावा हाथियों को आसाधारण लोगों के द्वारा धारण चाल की शिक्षा देने का संकेत मिलता है।[588] अग्रवाल महोदय का मन्तव्य है कि सवारी के काम आने वाले हाथियों को इस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। इनमें सबसे मुख्य धोरण गति या द्रुलकी चाल थी। धोरण चाल के शिक्षक को आधोरण कहा जाता था। वस्तुतः आधोरण अच्छे-अच्छे हाथी प्राप्त करके उन्हे चाल सिखाने के लिए उत्सुक रहते थे।[589] अतः बाण का यह कथन उचित ही प्रतीत होता है कि वे लोग हाथियों के नये झुंड में से उत्तम हाथी विशेष रूप से माँगते थे और जब उन्हें इस तरह का मदमस्त गज मिल जाता था तो बहुत प्रसन्न होते थे।[590]

बाणभट्ट ने अपने साहित्य में हाथियों के परिचारकों का उल्लेख किया है। सर्वप्रथम इस सन्दर्भ में इभभिषग्वर का उल्लेख आता है जिससे गजसाधनाधिकृत स्कन्द गुप्त ने रुग्ण हाथियों के विषय में पूछा था।[591] जो हाथियों की चिकित्सा करता था। उल्लेखनीय है कि कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र में सर्वप्रथम चिकित्सक का ही उल्लेख किया है[592] जिससे इनके महत्व की ओर संकेत किया जा सकता है। इनके अनुसार महामात्र[593] हाथियों की शिक्षा का काम देखता था। विद्वान् यह मानते हैं कि महामात्र हाथियों के परिचर्या में नियुक्त कर्मचारियों में उच्चपदस्थ होता था जिसकी समानता अर्थशास्त्र के अनीकस्थ नामक अधिकारी से की जा सकती है क्योंकि अर्थशास्त्र में चिकित्सक के अलावा जिन दस कर्मचारियों का उल्लेख आता है उनमें अनीकस्थ सबसे मुख्य हैं।[595] इसके अलावा आधोरण[596] नामक कर्मचारी का वर्णन किया गया है जो हाथियों को सवारी के लिए अच्छी चाल की शिक्षा देता था। इस कर्मचारी का उल्लेख कादम्बरी में भी गन्धमादन गज की परिचर्या के सन्दर्भ में किया गया है।[597] इसके अलावा चन्द्रापीड के राजभवन प्रवेश के अवसर पर हथिनियों के पृष्ठभाग पर बैठे सेवकों का उल्लेख आता है जिन्हें

बाण आधोरण की संज्ञा देते हैं[598] इन्हें महावत कहा जा सकता है ।

उल्लेखनीय है कि अर्थशास्त्र में अनीकस्थ और आधोरण के मध्य अरोहक नामक कर्मचारी का वर्णन आता है ।[599] इस सन्दर्भ में बाण द्वारा उल्लिखित आरोह नामक अधिकारी की चर्चा की जा सकती है ।[600] जिसके विषय में विद्वान् यह मानते हैं कि नियमित रूप से अलंकृत हाथियों को सवारी के समय जो लोग चलाते थे, उनकी संज्ञा आरोहक थी[601] जिन्हें बाण ने हर्षचरित में आरोह कहा है । किन्तु उल्लेखनीय है कि कादम्बरी में इसी को आरोहक की संज्ञा प्रदान की गयी है ।[602] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष के समय तक ये विशेष परिचारक बराबर नियुक्त किये जाते थे ।[603] आधोरण के बाद अर्थशास्त्र में हस्तिपक नामक अधिकारी का उल्लेख आता है ।[604] जिसका काम सवारी के अलावा खाली समय में टहलाना, चलाना आदि था । इस सन्दर्भ में बाण ने निषादी का उल्लेख किया है जो प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु पर राज कुंवर दर्पशात के ऊपर बैठा रो रहा था ।[605] इसके अतिरिक्त सैन्य अभियान के समय प्यादों की डॉट से निषादियों की नींद खत्म हो गई और उठकर आँखें मलने लगे । ।कटक कटुनिर्दोषनयया निद्रीन्मिषन्निषादिनि। संभव है कि निषादिन् नामक यह कर्मचारी कौटिल्य के समय का हस्तिपक के समकक्ष रहा हो । हर्षचरित में कर्पटी[606] नामक कर्मचारी का उल्लेख आता है । अमरकोश में कर्पट का अर्थ कपड़े का टुकड़ा ।रमाल। किया गया है ।[607] कर्पटी की सही पहचान के लिए बाण की ही सहायता ली जा सकती है । हर्षचरित में दर्पशात के वर्णन में लेशिक[608] नामक अधिकारी की चर्चा की गई है । भाष्यकार शंकर ने लेशिक को घास की व्यवस्था करने वाला घासिक कहा है ।[609] इसी ग्रन्थ में अन्यत्र कहा गया है कि बाहर से नये पहुँचे हुए सिर पर चीरा बाँधे हाथियों के परिचारक हाथियों की सेवा के काम मिलने की प्रत्याशा में खुशी से दौड़ रहे थे ।[610] परिचारकों को सिर पर कपड़े का चीरा बाँधने का विशेषाधिकार प्रभु प्रसाद से ही प्राप्त होता था ।[611] अतः इससे प्रतीत होता है कि बाण का कर्पटि से तात्पर्य

उन घासिकों से है जिन्हें साधारण घासिकों से कुछ विशेषाधिकार प्राप्त था । हर्ष के सैन्य अभियान का वर्णन करते हुए बाण ने नालीवाहिक का जिक्र किया है ।[612] भाष्यकार शंकर ने नालीवाहिक का अर्थ घास ग्रहण करने वाला हस्तिपक या श्रेष्ठ किया है[613] किन्तु विद्वानों का मत है कि ये ऐसे हाथियों के हस्तिपक (महावत) होते थे जिन हाथियों से सामान ढोया जाता था[614] यहाँ बाण के वर्णन से सवारी हाथी और लद्दू हाथियों के बीच स्पष्ट अन्तर को स्पष्ट करते हुए विद्वान् यह मानते हैं कि लद्दू हाथियों के महावत नाली (एक विशेष प्रकार का अंकुश) को कान में चुभाकर संचालन करते थे जबकि सवारी हाथी के महावत अँकुश रखते थे ।[615] हाथियों को सजाने के लिए कुछ आभूषणों का उपयोग किया जाता था जिनका उल्लेख बाण के हर्षचरित से प्राप्त होता है जिनमें ध्वज, चँवर, शंख, घंटा, अंगराग और नक्षत्र माला आदि का उल्लेख किया जा सकता है ।[616] नक्षत्र माला के विषय में विद्वान् यह मानते हैं कि हाथियों के मस्तक के चारों ओर मोतियों की माला होती थी जिनमें संभवतः सत्ताईस (नक्षत्रों की संख्या के बराबर) मोती होते थे ।[617] इसके अलावा करिकर्ण शंख या अवतंसशंख का उल्लेख आता है जो दोनों कानों के पास लटकते शंख के आभूषण होते थे ।[618] हाथियों के दांतों में सोने के मूढ़े मढ़े जाने का उल्लेख मिलता है ।[619]

अश्वसेना

अश्वसेना का महत्व प्राचीन भारतीय सैन्य प्रणाली से ही देखने को मिलता है । मौर्यों की सेना में तीस हजार घुड़सवारों का उल्लेख मिलता है ।[620] अर्थशास्त्र में अश्व विभाग का पृथक् स्वतन्त्र उल्लेख किया गया है जिसमें अश्वों के रख-रखाव, प्रशिक्षण एवं भेदों आदि पर विस्तार पूर्वक विचार किया गया है ।[621] गुप्त काल तक आते आते अश्वसेना का महत्व और भी बढ़ गया । कालिदास ने रघुवंश में विस्तारपूर्वक घोड़ों का वर्णन करते हुए पाश्चात्य,[622] कम्बोज[623] तथा वनायु[624] देश से आने वाले उत्तम किस्म के घोड़ों की चर्चा की है । इसी परम्परा

का निर्वाह बाणभट्ट के साहित्य में भी किया गया है । हर्षचरित में बाण ने महाराजाधिराज हर्ष के मन्दुरा में बंधे विभिन्न जातियों के घोड़ों का विस्तार से वर्णन किया है । उनके अनुसार मन्दुरा में वनायुज (वानाघाटी वजीरिस्तान में उत्पन्न) घोड़े, आरट्टज (वाहीक या पंजाब में उत्पन्न) घोड़े, कम्बोज (मध्य एशिया में वंक्षु नदी में पामीर प्रदेश में उत्पन्न घोड़े, भारद्वाज (उत्तरी गढ़वाल के) घोड़े, सिन्धु देशज (सिन्ध सागर या थल दोआब के) घोड़े, पारसीक (सासानी ईरान के) घोड़े थे[625] जो अलग-अलग देशों से आयात किये जाते थे । उनके अलावा एक अन्य उंचे तंगण घोड़ों का उल्लेख सैन्य अभियान के समय किया गया जिनकी तेज दुलकी चाल से बटन का पानी भी न हिलता था, मजे में बैठे कटक उनकी चाल की प्रशंसा कर रहे थे ।[626] उल्लेखनीय है कि तंगण देश का उल्लेख पाण्डुकेश्वर में प्राप्त उत्तर-गुप्त कालीन ताम्रपटों में आता है । यह गढ़वाल के उत्तर का प्रदेश था । यहाँ के टांगन घोड़े प्रसिद्ध थे ।[627] घोड़े की जातियों का वर्गीकरण करते हुए कौटिल्य ने काबुल, सिन्ध, आरट्ट और अरब देश के घोड़ों को उत्तम, वाह्लीक और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त (पापेयक), राजस्थान तथा तितल देशों के घोड़े मध्यम, इनके अलावा सभी कोटि के घोड़े अधम श्रेणी के निर्दिष्ट किये हैं ।[628] इस आधार पर कहा जा सकता है कि बाण के वर्णन में उत्तम और मध्यम श्रेणी के घोड़ों को ही स्थान दिया गया है जिससे तत्कालीन अश्वसेना की कुशलता का प्रतीक माना जा सकता है । कादम्बरी में इन्द्रायुध के विषय में कहा गया है कि उसे पारसीक राजा ने तारापीड को उपहार स्वरूप प्रदान किया था ।[629] इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि कौटिल्य ने घोड़े के प्राप्त करने के स्रोत का विस्तृत उल्लेख किया है जिनमें भेंटस्वरूप प्राप्त, खरीदे हुए, युद्ध में प्राप्त, अपने यह पैदा हुए, रेहन रखे हुए और कुछ समय के लिए सहायतार्थ प्राप्त घोड़े होते थे[630] किन्तु बाण ने जिस प्रकार हाथियों के प्राप्ति के स्रोत का विस्तार से उल्लेख किया है वैसी घोड़ों के विषय में कोई जानकारी नहीं प्रदान किया ।

बाणभट्ट ने घोड़ों के लक्षणों का विस्तार से उल्लेख किया है । उनके अनुसार पंचभद्र, मल्लिकाक्ष और कृत्तिकाप जर घोड़े उत्तम प्रकार के होते थे ।[631] अभिधान चिन्तामणि का उद्धरण देते हुए अग्रवाल महोदय के अनुसार पंचभद्र घोड़ों पर हृदय, पृष्ठ, मुख और दोनों पार्श्वों में पुष्पित और भौरों वाला निशान होता है ।[632] कृत्तिकाप जर के विषय में उनका कहना है कि ऐसा घोड़ा अत्यन्त श्रेष्ठ जाति का होता है और दुर्लभता से प्राप्त होता है ।[633] भाष्यकार शंकर के अनुसार ऐसे घोड़ों पर तारों जैसे सफेद चित्तीदार चिह्न होते हैं ।[634] इन्द्रायुध के विषय में बाण लिखता है कि उसके शरीर पर इन्द्रधनुष जैसी रंग बिरंगी रेखायें झलकती थी मानों विचित्र रंगों की पलान डाली गयी हो ।[635] इन लक्षणों के अतिरिक्त बाण के साहित्य से घोड़ों की शारीरिक बनावट पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है । उनके अनुसार उत्तम घोड़े का मुँह लम्बा और मांसरहित, कान छोटे-छोटे, घांटी गोल, चिकनी और सुडौल, गर्दन ऊपर उठी हुई और यूप की तरह लम्बी और टेढ़ी, कन्धों के जोड़ मांस से फूले हुए, छाती निकली हुई, टागे पतली और सीधी, खुर लोहे की तरह कड़े, पेट गोल पुट्ठे चौड़े और मांसल होने से उठे हुए, पूंछ के बाल पृथ्वी छूते हुए होते हैं ।[636] इसी प्रकार कादम्बरी में इन्द्रायुध के विषय में कहा गया है कि उसका पार्श्वभाग खराद पर उतारा हुआ, पिण्डलियाँ टाँकी से उत्कीर्ण, छाती चौड़ी, गरदन लम्बी, मुँह पतला और जघन भाग दोहरा था । उसका मुँह मांस कम होने से पत्थर में उत्कीर्ण सा जान पड़ता था ।[637] बाणभट्ट के साहित्य से न केवल घोड़ों के बनावट पर प्रकाश पड़ता है अपितु घोड़ों के बनावट पर प्रकाश पड़ता है अपितु उनके रंगों का भी वर्णन मिलता है । हर्षचरित में शोण (लालकुम्मैत), श्याम, श्वेत, पिंजर (समंद), हरित (नीला सब्जा) तथा तित्तिरकल्माष (तीतापंखी) रंग के घोड़ों का वर्णन है ।[638]

उल्लेखनीय है कि बाण के साहित्य में घोड़ों के प्रशिक्षण का जिक्र नहीं किया गया है । बाणभट्ट ने एक स्थान पर प्राभातिक योग्य[639] पद का उल्लेख घोड़ों

के लिए किया है जिसका तात्पर्य अग्रवाल महोदय "व्यायाम" से करते हैं । उनके अनुसार प्रातःकाल घोड़ों को व्यायाम कराने के बाद जो रातिब दिया गया था, उसके प्रारोहक को परिवर्द्धकों ने आधा खाने की दशा में ही उतार लिया ।[640]

उल्लेखनीय है कि अग्रवाल महोदय का उक्त मत समीचीन नहीं प्रतीत होता है । कौटिल्य के अनुसार उत्तम घोड़ों को भोजन के अतिरिक्त विशेष खुराक देना चाहिए जिसमें चावल, गेहूँ, जौ, काकुन आदि कोई भी अधपकी या अधसूखी खुराक के अलावा एक प्रस्थ घी या तेल, पाँच पल नमक, पचास पल मांस, एक आढ़क शोरबा या दो आढ़क दही में भीगी हुई, पाँच पल गुड़ के साथ एक प्रस्थ शराब या दो प्रस्थ दूध, प्रतिदिन तीसरे पहर दिया जाना चाहिए ।[641] इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि बाण द्वारा उल्लिखित प्राभातिक योग्य भोजन का अर्थ इसी विशेष प्रकार की खुराक से रहा हो जैसा कि कौटिल्य ने लिखा है, न कि व्यायाम से । उल्लेखनीय है कि कौटिल्य विशेष खुराक का समय दिन का तीसरा पहर निर्धारित करते हैं जो संभवतः बाण के समय तक परिवर्तित होकर प्रातःकाल हो गया हो । यह संभावना हो सकती है कि सैन्य अभियान की विशेष परिस्थिति में समय परिवर्तन कर दिया गया हो । अर्थशास्त्र में घोड़ों के प्रशिक्षण का विस्तार से उल्लेख मिलता है जिसमे सवारी या खेलों में प्रयुक्त किये जाने वाले घोड़ों की पाँच चालों का उल्लेख है : वल्गन, नीचैर्गत, लंघन, धोरण और नीरोष्ट्र ।[642] कौटिल्य निर्देश करता है कि विशेषज्ञों द्वारा युद्ध सम्बन्धी हर प्रकार की चालों की शिक्षा दिलाना आवश्यक होता है ।[643]

बाणभट्ट ने घोड़ों का विस्तार से उल्लेख करते हुए भी घुड़सवारों एवं सेना का कोई उल्लेख नहीं किया है । बाण के अनुसार मालवराज को दण्डित करने के लिए राज्यवर्द्धन दस हजार अश्वारोहियों के साथ प्रस्थान करता है[644] किन्तु अश्व सेना की संख्या का कोई स्पष्ट निर्देश नहीं किया गया है ।

चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष की सेना में एक लाख घुड़सवार थे।[645] अश्वारोहियों के विषय में संक्षिप्त ज्ञान की बाण के वर्णन से प्राप्त होता है। हर्ष के सैन्य अभियान के विषय में लिखते हुए बाण ने कहा है कि तरुण घोड़ों पर बैठे कक्कट घोड़ों की चाल की प्रशंसा कर रहे थे। कक्कट का अर्थ भाष्यकार शंकर ने "वृद्ध" (वृद्धाः) किया है[646] किन्तु अग्रवाल महोदय के अनुसार बाण ने यहाँ हर्ष की सेना की एक वीर टुकड़ी का उल्लेख किया है। हर्षचरित की कश्मीर प्रति का उद्धरण देते हुए जिसमें "कक्कट क्षत्रिय" पाठ है, कहा है कि ये प्राचीन खोखड़ जाति के थे जो अपने को राजपूत मानते हैं और व्यास के पूर्व तथा झेलम-चेनाब नदियों के बीच मध्य पंजाब में रहते थे। यह युद्धप्रिय जाति थी।[647] युवक दधीचि के वर्णन के प्रसंग में उसके अश्वारोही अंगरक्षक का विस्तृत ब्यौरा बाणभट्ट ने दिया है। यह उल्लेख किया गया है कि उसका कद लम्बा, आकृति तपे हुए सोने के खम्भे के समान, अवस्था ढल जाने पर भी शरीर व्यायाम-जनित परिश्रम से गठा हुआ, दाढ़ी, मूँछ और नाखून साफ-सुथरे कटे हुए कुछ तुन्दिल उज्जवल कंचुक पहने हुए तथा सिर में धुली हुई दुकूलपट्टिका बाँधे हुए था।[648] अग्रवाल महोदय का कथन है कि बाण ने उसकी जातीयता न निर्दिष्ट करके उसके विदेशी होने का संकेत किया है। संभव है वह पारसीक सैनिक रहा हो क्योंकि बाण ने उसके लिए "साधु"[649] शब्द का प्रयोग किया है, जो संभवतः "शाह" का संस्कृत रूप तत्कालीन बोलचाल में प्रयुक्त होता है।[650]

उल्लेखनीय है कि अग्रवाल महोदय द्वारा प्रतिपादित "साधु" शब्द से विदेशी होने का मत समीचीन नहीं लगता क्योंकि शंकर ने साधु का अर्थ विनीत से किया है।[651] इसका दूसरा अर्थ पार्श्वचर किया गया है।[652] अमरकोश में साधु शब्द के कई अर्थ किये गये हैं[653] उच्चकुल में उत्पन्न, कुलीन, सुन्दरता, शोभन, प्रसन्नता विनम्रता एवं व्यापारी के अर्थ में।[654] इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि बाण द्वारा प्रयुक्त पार्श्वचर के लिए "साधु" शब्द उसके कुलीन एवं विनम्र होने का

द्योतक हो सकता है न कि विदेशी होने का क्योंकि यहाँ साधु शब्द पार्श्वचर के लिए विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

बाणभट्ट के हर्षचरित और कादम्बरी से घोड़ों को सजाने एवं पहनाने के लिए अनेक प्रकार के आभूषणों का ज्ञान होता है । हर्षचरित में दधीचि के घोड़े के काँटेदार लगाम लगाने का उल्लेख किया गया है ।[655] कादम्बरी में इन्द्रायुध को लगाम पकड़े हुए दो सईसों को वर्णित किया गया है ।[656] बाणभट्ट एक स्थान पर काँटेदार लगाम (खरखलीन) का वर्णन करते हैं तथा अन्यत्र कादम्बरी में सोने की लगाम (खलीनकनककटकावलग्नाभ्यां) का उल्लेख करते हैं । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि लगाम दो प्रकार की होती थी, एक काँटेदार लगाम और दूसरी साधारण लगाम । काँटेदार लगाम तेज-तर्रार घोड़ों के लिए प्रयोग की जाती रही होगी, जब कि साधारण लगाम अन्य घोड़ों के लिए प्रयुक्त की जाती रही हो । लगाम के सन्दर्भ में प्रो० अग्रवाल का मत है कि खलीन शब्द संस्कृत में यूनानी भाषा से किसी समय ग्रहण किया गया जो बाण के समय खूब प्रचलित हो गया था ।[657]

उल्लेखनीय है कि अग्रवाल महोदय का यह मत तर्कसंगत नहीं लगता । क्योंकि महाभारत में लगाम के लिए खलीन शब्द का प्रयोग मिलता है ।[658] अमरकोश[659] और हलायुध[660] कोशों में भी लगाम के लिए खलीन का उल्लेख मिलता है । जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि लगाम के लिए खलीन शब्द संस्कृत का ही शब्द है न कि विदेशी । पुरातात्त्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि विदर्भ क्षेत्र की वृहत्पाषाणिक समाधियों के उत्खनन में घोड़े की लगाम प्राप्त हुई है जिसकी रेडियो कार्बन तिथि सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व में मानी जाती है ।[661] इससे भारत में लगाम की प्राचीनता का प्रमाण मिलता है ।

हर्षचरित में घोड़ों की नाक के ऊपर और माथे पर सोने के पदक का उल्लेख मिलता है ।[662] घोड़े के गले में सजाने के लिए सुवर्ण की माला पहनाने का उल्लेख

मिलता है जिसे आयान कहा गया है ।[563] घोड़ों की पीठ पर सवार के बैठने के लिए पलान रखी जाती थी ।[664] पलान के नीचे पैर के लटकने के स्थान पर चवरियाँ लगी रहती थी जिन्हें चामरमाला कहा गया है ।[665]

बाणभट्ट ने स्थानपालों के घोड़ों की पलानें लटकती हुई लवण कलायी, किंकिणी और नाली से सुशोभित थी जो तलसारक से बंधी हुई थी ।[666] उल्लेखनीय है कि लवणकलायी के विषय में भाष्यकार शंकर ने लिखा है कि ये हिरण की आकृति की काष्ठनिर्मित पुतलियाँ होती थी जिन्हें घोड़ों की पलान से लटका दिया जाता था ।[267] गुप्त-काल में इस प्रकार की सजावट का साक्ष्य मुद्राओं से प्राप्त होता है । कुमारगुप्त की अश्वारोही प्रकार की स्वर्णमुद्रा पर घोड़ों के पैरों के पास इस प्रकार मृगाकृति अलंकरण लटके हुए मिलते हैं ।[668] किंकिणी का अर्थ शंकर ने छोटी घण्टियों से किया है ।[669] ऐसा प्रतीत होता है कि घोड़ों की पलानों में चारों ओर छोटी-छोटी घण्टियाँ बंधी रहती थी, जो चलते समय बजती थी । हर्षचरित् के भाष्यकार शंकर के अनुसार नाली का तात्पर्य घोड़ों को तरल पदार्थ पिलाने के लिए बाँस की नली से है[670] जिसे अग्रवाल महोदय कपोल कल्पित कहते हैं । दिव्यावदान का उद्धरण देते हुए अग्रवाल ने नाली का अर्थ सोने की नली किया है जो घोड़े की पूँछ में पहनायी जाती थी ।[671] तलसारक का अर्थ शंकर ने अश्वमुख पट्टिका या उरपट्टिका किया है[672] जो संभवतः घोड़ेके मुँह के नीचे से लगाकर घोड़े के तंग में बाँधा जाता था । हर्षचरित के उल्लेख से ज्ञात होता है कि घोड़ों को अगाड़ी पिछाड़ी दो रस्सियों से बाँधा जाता था ।[673] घोड़ों की गर्दन में बहुत सी डोरियों से बना गण्डमाला बाँधा था ।[674] अश्वमाला में जहाँ घोड़े बाँधे जाते थे वहाँ नीचे लकड़ी का पट्टा मढ़ा रहता था जिस पर घोड़े पैर रखकर खड़े होते थे ।[675] हर्षचरित में बाण कहता है कि घुड़सवारों के पलानों में आगे पीछे उठे हुए सोने के फलकों में पत्रलता के कटाव बने थे । पलान के पार्श्व भाग में लम्बी पट्टी से घुमा कर बंधे होने से निश्चल बिछे हुए पट्टोपधान पर घुड़सवार स्थिर होकर बैठे थे । पलान के दोनों ओर लटकी हुई रकाबों में घुड़सवारों के पैर जब एक दूसरे से टकराते

थे तो रकाबों का झनझन शब्द होने लगता था ।[676] उल्लेखनीय है कि पलानों में पहले लकड़ी की खूटियों में पीतल की पर्त चढ़ाकर आगे-पीछे बल बनाये जाते थे, जिनके ऊपरी सिरे पर फूल पत्ती के कटाव बना दिये जाते थे । रकाब के विषय में अग्रवाल महोदय आनंद कुमार स्वामी के एक निबन्ध को उद्धृत करते हैं जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि मथुरा के एक सूचीपट्ट पर अश्वारोहिणी स्त्री रकाब में पैर रखे दिखायी गई है । भारतीय कला में रकाब के उदाहरण भरहुत, सांची, भाजा और मथुरा की द्वितीय प्रथम शताब्दी ई०पू० की शिल्पकला में मिलते हैं । प्राय: स्त्रियाँ रकाब के साथ और पुरुष इसके बिना घुड़सवारी करते दिखलाये गये हैं ।[677] हर्षचरित के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि बाण के समय तक पुरुष अश्वारोही भी रकाब का प्रयोग करने लगे थे । कादम्बरी से ज्ञात होता है कि इन्द्रायुध के गले में सुनहरी जंजीर की रस्सी कई बार घुमाकर बाँधी गयी थी । इन्द्रायुध सुनहरी कुटिल पत्रलता के अंकुर, रत्नमालाओं से अंकृत और मोतियों से जड़ाउ अश्वालंकार पहने था जिसमें पन्ने भी जड़े थे ।[678] इस अश्वमाला की पहचान घोड़े के कंठे से की जा सकती है जिसमें जड़ाऊ टिकरे और रत्नों के लटकन, मोती आदि लगे रहते हैं । बाण सैन्य अभियान के समय लिखते हैं कि घोड़ों के पैरों में पड़े हुए खटकेदार कड़े जब खोले जाने लगे तो उन्होंने अपने खुर टेढ़े कर किये ।[679] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इन कड़ों में घोड़ों की अगाड़ी पिछाड़ी रस्सियों को बाँधा जाता रहा हो ।

बाणभट्ट हर्षचरित में घोड़ों के साथ बन्दरों का उल्लेख किया है[680] जिसके विषय में विद्वान् यह मानते हैं कि घोड़ों को कभी कोई बीमारी होने पर वह साथ में रहने वाले बन्दर के सिर आती है ।[681]

उल्लेखनीय है कि अग्रवाल महोदय का मत लोकमान्यता पर आधारित है जिसका कोई साक्ष्य नहीं है । कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में घुड़साल के बाहर बन्दर, मोर, नेवला, चकोर, तोता तथा मैना आदि के रहने का उल्लेख किया है ।[682]

असंभव नहीं कि बाणभट्ट इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए यात्रा के समय घोड़ों के साथ बन्दरों का उल्लेख किया हो किन्तु अन्य पक्षियों आदि को घोड़ों के साथ रखने की परम्परा बाण के समय तक समाप्त हो चुकी हो । ऐसे पक्षियों आदि के घोड़ों के साथ रखने के स्पष्ट कारण का पता नहीं लगता । ऐसा प्रतीत होता है कि बाण के यहाँ परम्परा का उल्लेखमात्र ही किया है ।

हर्षचरित में घोड़ों के साथ कुत्तों को साथ रखने का उल्लेख आता है ।[683] कादम्बरी में चन्द्रापीड के मृगया वर्णन में उनके घोड़े के आगे-आगे धनुर्धारी शिकारियों के साथ कुत्तों का उल्लेख आता है ।[284] उल्लेखनीय है कादम्बरी के वर्णन से स्पष्ट है कि शिकारी कुत्तों का वर्णन किया गया है जबकि हर्षचरित में इस प्रकार का कोई संकेत नहीं है किन्तु संभावना व्यक्त की जा सकती है कि सैन्य अभियान के समय भी कभी शिकार आदि की आवश्यकता की पूर्ति में सहायक होने के लिए कुत्तों को साथ रखा जाता रहा हो । घोड़ों की सुरक्षा की दृष्टि से बाण ने घुड़साल में कतिपय टोटका पूजा जैसे उपचारों का भी वर्णन किया है । घुड़साल का वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है कि घोड़ों के अंग मानों केसर से मले गये थे जिससे यह आभाषित होता है कि उनके समीप सदा नीराजन अग्नि जलती हो। उनके ऊपर चंदोवे तने हुए थे । उनके सामने अभीष्ट देवता पूजे गये थे ।[685] बाण द्वारा वर्णित नीराजना एवं पूजन की परम्परा बहुत प्राचीन काल से अनवरत चली रही थी क्योंकि अर्थशास्त्र में कौटिल्य इस प्रकार के कृत्य का वर्णन करते हुए अमावस्या को घोड़ों के निमित्त भूतों की बलि, पूर्णमासी को स्वस्तिवाचन और स्वस्थ नीरोग रहने के लिए नीराजना संस्कार का उल्लेख करता है ।[686] यात्रा के आगे और यात्रा की समाप्ति पर तथा घोड़ों में कोई संक्रामक रोग फैलने पर भी नीराजना संस्कार करना चाहिए ।[687]

बाणभट्ट घोड़ों की परिचर्या के लिए नियुक्त कतिपय कर्मचारियों का उल्लेख करते हैं, जिनमें बल्लभपाल की चर्चा की जा सकती है । उनके अनुसार बल्लभपाल

घोड़ों को बाँधने की अवरक्षणी रस्सी लपेटकर लिये हुए थे ।[688] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे विशेष घोड़ों पर नियुक्त कर्मचारी थे । इसके पश्चात् स्थानपाल का वर्णन किया गया है ।[689] स्थानपाल गद्दी के रूप में बनी चौकियों के अधिपति ज्ञात होते हैं । बाण के अनुसार प्रसाद पाये हुए (प्रसादावत्तपति) पैदल राजवल्लभ घोड़ों को पकड़कर ले चल रहे थे ।[690] इनकी पहचान ऐसे कर्मचारियों से की जा सकती है जो विशेषाधिकार प्राप्त सईस होते रहे हों जो प्रयाण के समय राजाओं के घोड़ों को पकड़ कर पैदल चलते थे और अपनी विशिष्ट सेवा के कारण चीरा (विशेषाधिकार का चिह्न) प्राप्त कर लेते थे । बाण परिवर्द्धकों के विषय में लिखा है कि प्रातःकालीन भोजन आधा ही समाप्त होने पर परिवर्द्धकों ने घोड़ों के तोबड़े हटा लिये ।[691] परिवर्द्धकों के विषय मे यह कहा जा सकता है कि ये घोड़ों के भोजन आदि की व्यवस्था में नियुक्त कर्मचारी थे । एक अन्य कर्मचारी घासिक का उल्लेख आता है[692] जिसके विषय में कहा जा सकता है कि घास आदि चारा की व्यवस्था करने वाले कर्मचारी को घासिक कहा जाता था । राज मन्दुरा के वर्णन में बाण ने लिखा है कि चण्ड चण्डालों की डपट से घोड़ों की पुतलियाँ दीन भाव से फिरने लगती थी ।[693] चण्डचण्डाल के विषय में कहा जा सकता है कि संभवतः अश्वशाला की सफाई तथा चारा आदि की व्यवस्था करने वाले कर्मचारी रहे होंगे जिनकी नियुक्ति राजमन्दुरा के लिए की जाती थी । कादम्बरी में इन्द्रायुध को दो पुरुष (सईस) बड़ी मुश्किल से पकड़े हुए थे ।[694] इससे इन कर्मचारियों की तुलना हर्षचरित के प्रसादवित्तपति नामक कर्मचारी से की जा सकती है जो राजवल्लभों को लेकर चलते थे ।

<u>पदादि सेना</u>

बाणभट्ट के साहित्य से पदादि सेना की वैसी झलक नहीं प्राप्त होती जैसी गजसेना और अश्वसेना की । यत्र-तत्र पदादि सैनिकों के विषय में उल्लेख मिलते हैं । हर्षचरित में दधीचि के साथ एक सहस्र पैदल सैनिकों का उल्लेख किया गया है । इस

प्रसंग में सैनिकों की वेश-भूषा का विस्तृत वर्णन मिलता है । पदादि सैनिक प्राय: जवान लोग थे । उनके सिर पर लम्बे और घुंघराले बालों का बँधा हुआ जूड़ा था । वे कानों में हाथी दाँत के बने पत्ते पहनते थे । प्रत्येक सैनिक लाल रंग का कंचुक पहने था जिस पर काले रंग की बुंदकियाँ पड़ी थीं । सिर पर उत्तरीय की पगड़ी बँधी थी । बायें हाथ की कलाइयों में सोने के कड़े थे । उनकी कमर में कपड़े की दोहरी पेटी की मजबूत गाँठ थी और उसमें छुरी खोंसी थी । निरन्तर व्यायाम करने से उनका बदन गठीला था । कुछ सैनिक मुंगरी या डंडे लिये थे और कुछ के हाथ में तलवारें थीं ।[695] इस प्रकार की पदादि सेना के पीछे घुड़सवारों की टुकड़ी आ रही थी । सैनिकों की वेश-भूषा एवं शारीरिक गठन के विषय में अग्रवाल महोदय का मत है कि गठे हुए लम्बे शरीर पर पतली कमर में बँधी हुई पेटी और उसमें खोंसी हुई कटार, इस रूप में सैनिकों की मिट्टी की मूर्तियाँ अहिच्छत्रा की खुदाई से प्राप्त हुई हैं जो लगभग छठी-सातवीं ईसवी की हैं ।[696] बाण के समकालीन चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार सैनिक कर्म पैतृक था । राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु सेना अथवा स्थायी सेना में वीर योद्धा भर्ती किये जाते थे । सैनिक कर्म पैतृक होने के कारण सैनिक युद्ध-कला में दक्ष होते थे । युद्ध के समय वे अग्रिम पंक्ति में रह कर धावा करते थे और शान्ति-काल में राज प्रासाद की सुरक्षा में रहते थे ।[697] बाण भट्ट एवं ह्वेनसांग के वर्णन से पैदल सैनिकों का जो रूप निखर कर सामने आता है, इससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन सेना में युद्ध-कला में निपुण, जवान लोगों को स्थान दिया जाता था किन्तु सैनिक कर्म पैतृक होने से आवश्यक नहीं कि उत्तराधिकारी सैनिक युद्ध कला में दक्ष ही हों । हर्षचरित से पैदल सेना के प्रसंग में "चारुभारभट" सैनिकों का उल्लेख मिलता है । सजी बजी चाटभट सेना के हरावल दस्ते चौड़े छापे हुए निशानों वाले वेष में सजे थे ।[698] बाण इन सैनिकों के विषय में आगे कहते हैं कि हर्ष की सेना में उद्भट शूर वीर (चाटभट) हाथों में चमचमाती हुई छोटी छोटी चाँरियों से युक्त कार्दरंग चमड़े से बनी हुई ढाल लिये हुए भुवनभाग को भरने लगे ।[699] उल्लेखनीय है कि चारभट सैनिकों का उल्लेख बाण के आश्रयदाता सम्राट् हर्ष के मधुबन एवं बाँसखेड़ा ताम्रपत्र अभिलेखों में प्राप्त होता

है ।[700] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि चाटभट सैनिकों को भी दान की सूचना दी जाती थी । शंकर ने इसका अर्थ उद्‌भट से किया है ।[701] अग्रवाल महोदय के अनुसार जान की बाजी लगाकर लड़ने वाले सैनिकों (चाटभट) को डामर कहा जाता था जिन्हें कालान्तर में डामर ही कहा जाने लगा । उनका मन्तव्य है कि वाराणसी और उसके आस-पास के क्षेत्र में बारात के जुलूस में तलवार लिए हुए कुछ लड़ाकू अभी तक चलते हैं, जिन्हें बाँका कहते हैं । संभवतः ये लोग चाटभटों की ही नकल हैं ।[702] उल्लेखनीय है कि हर्षचरित में चाटों के अपराधों की निन्दा की गयी है।[703] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग प्रजा से डरा-धमका कर धन वसूल करते रहे हों । बाण ने यत्र-तत्र भटों का उल्लेख किया है जिससे उनकी वीरता का आभास होता है । बाण के अनुसार ऊँचे ऊँचे डंठलों वाले नड़ के जंगलों में छिपकर बैठे हुए चम्पानगरी के राजा के सैनिकों (भटों) ने गैड़ों का शिकार करने में लगे हुए चामुण्डी पति पुष्कर के प्राण ले लिये ।[704] हर्ष के सैन्य अभियान के पूर्व भट लोग प्रणय के कलह में भी भामिनियों के सामने पीठ दिखाकर कर देर तक पराङ्‌मुख हो गये ।[705] भटों की पत्नियों के मुख का जो प्रतिबिम्ब मधुपात्र में पड़ता था उसमें विधवाओं जैसी एक वेणी और अंजन से रहित गोरोचना के समान पीली आँखें दिखायी पड़ने लगीं ।[707] बाण के इन उल्लेखों से जहाँ चाटों की एक ओर निन्दा की गयी है और दूसरी ओर भटों की वीरता की प्रशंसा की गयी है, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि "भट" विशुद्ध रूप से वीर सैनिक होते थे जब कि चाट ऐसे सैनिक कर्मचारी रहे होंगे जिनका प्रजा के कार्यों में दखलन्दाजी करने का मौका मिलता रहा हो ऐसी परिस्थिति में प्रजा के द्वारा उनकी निन्दा की गयी ।

बाणभट्ट के साहित्य से ज्ञात होता है कि सेना में कतिपय अन्य कर्मचारी होते थे जिन्हें सेना का गौण अंग कहा जाता था जो सेना के लिए आवास, भोजन आदि की व्यवस्था करते थे । बाण के अनुसार सर्वप्रथम व्यवहारिणि का उल्लेख मिलता है । व्यवहारिणि को अग्रवाल महोदय जमादार मानते हैं जो झाड़ू लगाने का काम करता था ।[708] किन्तु ऐसा लगता है कि नौकरों को जगाने का कोई

कर्मचारी रहा हो न कि जमादार । काण स्पष्ट लिखते हैं परिजनों को जगाने में लगा व्यवहारिणि । इससे कहीं भी झाडू लगाने का संकेत नहीं मिलता । ऐसा लगता है कि अग्रवाल महोदय यह मानकर कि प्रातःकाल जमादार झाडू लगाता है व्यवहारिणि को जमादार मान लिये जो समीचीन नहीं लगता । प्रातःकाल चेटियाँ ।रात्रि में पहरा देने वाली यम चेटियाँ। सेना को जगाने का काम करती थी ।[709] हस्ति सेना में जगाने का काम प्यादों का था ।[710] जगे हुए प्यादे कुदालों से धरती में गढे हुए फांसेदार आँकड़ों को खोदने लगे ।[711] ऐसा प्रतीत होता है कि ये फांसेदार आँकड़े तम्बुओं की रस्सियों को बाँधने के लिए विशेष प्रकार के खूँटे होते थे । इसके बाद हाथियों को बाँधने के खूँटे उखाड़े गये जिनसे लोहे की जंजीरों की आवाजें होने लगी ।[712] गृह-चिन्तक नामक कर्मचारी का काम तम्बुओं ।घरों। को लगाने, उखाड़ने का होता था ।[713] इनकी सहायता के लिए अनेक नौकर होते थे जो तम्बू, बड़े डेरे, कनात और शामियाने आदि व्यवस्थित कर रखते थे ।[714] और तम्बुओं के खूटों को चमड़े के थैले में सुरक्षित रखा जाता था । भाण्डागारिक रसोईघर से सम्बन्धित कर्मचारी था जो प्रातःकाल उठकर बर्तनों को इकट्ठा करने लगा ।[715] मुटल्ली दासियाँ ।कुट्टनी। भी सेना के साथ चलती थीं ।[716] गदहों पर सवार छोकरों ।चेलों। का सेना के साथ चलने का वर्णन मिलता है ।[717] सेना के लिए रसद पहुँचाने का काम वणिकों का था जिनकी बैलगाड़ियाँ पहले रवाना कर दी गई ।[718] बैलगाड़ियों के हाँकने वाले गाड़ीवानों का इस सन्दर्भ में उल्लेख मिलता है ।[719] जिन्हें संभवतः जबर्दस्ती रख लिया जाता था क्यों वे कहते हैं कि मेहनत तो हम करेंगे, लेकिन फल लेने के लिए भड़ुए टपक पड़ेंगे ।[720] महासामन्तों के साथ में विशेष परिचारक होते थे जिन्हें मान्स कहा जाता था ।[721] सेना में सबसे आगे ध्वजवाही झंडा लेकर चलते थे ।[722] इसके अलावा कुछ निम्न श्रेणी के नौकरों का सेना में उल्लेख मिलता है, जो अपनी नौकरी से सन्तुष्ट होकर यात्रा की प्रशंसा कर रहे थे उनमें मेठ ।हाथियों की झाड़-पोंछ करने वाला।, वंठ ।कुंवारे जवान पट्ठे जो डंडा लिये हाथ से भिड़ जाते थे।, वठर ।उजड्ड।, लम्बन ।लट्टू नौकर।, लुंठक ।लूट-पाट करने वाले।, चेट ।छोटे नौकर चाकर।, शाट ।धूर्त या शठ। और आण्डीर ।प्रगल्भ। आदि थे ।[723]

हर्षचरित से ज्ञात होता है कि सैन्य अभियान के पूर्व राजा कौन-कौन से कर्मों को सम्पादित करता था ? इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम ज्योतिषियों से शुभ लग्न निकलवाया जाता था ।[724] तत्पश्चात् राजा का विशेष स्नान होता था ।[725] राजा अपने इष्ट देवता की पूजा करता था और ब्राह्मणों को तिलपात्र तथा सोने के पत्रों से मढ़ी हुई सहस्त्रों गायें दान करता था । व्याघ्र चर्म पर भद्रासन बिछाकर उस पर विराजमान होता था ।[726] उल्लेखनीय है कि वाराह मिहिर ने वेदी पर व्याघ्रचर्म बिछाकर भद्रासन के उपर पुष्य नक्षत्र में सम्राट के विशेष विधि से बैठने का उल्लेख किया है ।[727] शस्त्रों की वन्दनादिक से पूजा का उल्लेख मिलता है ।[728] बाण इस अवसर पर राजा के विशेष परिधान का उल्लेख करते हैं जिनमें हाथ के प्रकोष्ठ में मंगलप्रद कंकण पहनना और शासन वलय धारण करना उल्लेखनीय है ।[729] शासन वलय का अर्थ भाष्यकार शंकर ने मुद्राकटक किया है ।[730] ऐसा प्रतीत होता है कि यह ऐसा धातुनिर्मित कड़ा होता था जिसमें राजकीय मुद्रा पिरोई रहती थी । राजाओं के द्वारा सैन्य अभियान के पूर्व कुछ विशेष कार्यों को सम्पादित किया जाता था जिनमें सहयोगी राजाओं को सवारियाँ और आभूषण वितरित करने के अतिरिक्त कारागार से बन्दी मुक्त किया जाना था ।[731] उल्लेखनीय है कि शुभ अवसरों पर बन्दियों को कारागार से मुक्त करने की प्राचीन परम्परा थी जिसका निर्वाह सम्राट अशोक वर्ष में एक दिन बन्दियों को मुक्त किया करता था।[732] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि बाण के समय भी राजा उन प्राचीन प्रथाओं को मानते थे जो उनकी क्षमाशीलता के अनुकूल होती थी । हर्षचरित में विजय अभियान के समय तीन प्रकार के व्यक्तियों जिनमें कार्पटिक, कुलपुत्र और लोक का उल्लेख है, को विशेष अनुग्रह (प्रसाद) प्रदान किया जाता था ।[733] कार्पटिक एक राजकीय अधिकारी थे जिन्हें सिर में चीरा बाँधने का अधिकार था । कुलपुत्र उन लोगों के लिए प्रयुक्त होता था जिनका राजवंश से कई पीढ़ियों का सम्बन्ध होता था । तीसरे प्रकार के लोक अर्थात् जनता के व्यक्ति थे जिनसे सम्राट किसी कारण वश अप्रसन्न था, ऐसे लोगों को भी अनुग्रह प्रदान किया जाता था ।

हर्षचरित और कादम्बरी से ज्ञात होता है कि राजा जब राजभवन से बाहर रहता था तो उसके विश्राम स्थल को स्कन्धावार कहा जाता था । बाणभट्ट स्वयं हर्ष से मिलने गया उस समय हर्ष अचिरावती (राप्ती) के किनारे मणितारा के स्कन्धावार में था ।[734] इसी प्रकार सैन्य अभियान के समय नगर के बाहर सरस्वती के निकट तृणमय राजमन्दिर तैयार किया गया था जिसे स्कन्धावार कहा गया है ।[735] कादम्बरी में चन्द्रापीड के विजय-अभियान के अवसर पर स्कन्धावार का वर्णन आता है । विजय-अभियान के मध्य राजा तारापीड का पत्र पाकर चन्द्रापीड ने वैशम्पायन को स्कन्धावार का भार सौंपकर राजभवन की ओर प्रस्थान किया ।[737] इसके अलावा कादम्बरी की दशा सुनकर आता हुआ चन्द्रापीड जब पुनः स्कन्धावार की ओर लौटने का विचार किया तो ऐसा सुना गया कि स्कन्धावार दशपुर तक आ गया है । यहाँ दशपुर स्कन्धावार का उल्लेख मिलता है ।[738] चन्द्रापीड के लौटने पर स्कन्धावार का विस्तृत उल्लेख बाण ने किया है ।[739] उल्लेखनीय है कि बाण भट्ट के आश्रयदाता सम्राट हर्ष के बाँसखेड़ा और मधुबन ताम्रपत्राभिलेखों में वर्द्धमान कोटि तथा संकाश्य के स्कन्धावारों का उल्लेख प्राप्त होता है ।[740] बाण के समकालीन चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि जब वह भास्कर वर्मन कुमार के निमन्त्रण पर नालन्दा से कामरूप गया था तब हर्ष कजूंघिरा में था । ह्वेनसांग की हर्ष से मुलाकात कजूंघिरा के स्कन्धावार में ही हुई थी ।[741] बाण के हर्षचरित से ऐसा ज्ञात होता है कि स्कन्धावार घास-फूस से निर्मित राजमन्दिर होता था जिसकी सजावट राजभवन की भाँति की जाती थी । जिसमें तोरणद्वार पताकायें, वेदियों पर हेम कलश रखे जाते थे ।[742]

उल्लेखनीय है कि कादम्बरी में चन्द्रापीड के स्कन्धावार में तृणमय मन्दिर के अतिरिक्त वास्तुभूमि के पूर्ववर्ती साहित्य में भी पट भवन का उल्लेख मिलता है । कालिदास ने रघुवंश में पट निर्मित भवनों को उपकार्या कहा है[744] - जो विशेष रूप से उद्यान-विहार के लिए बने मकानों के ढंग पर बनाए जाते थे । ऐसा प्रतीत होता

है कि स्कन्धावार के निर्माण के लिए घास-फूस का प्रयोग प्राचीन काल से होता आ रहा था । गुप्त-काल से तम्बुओं ने तृणमय मन्दिरों का स्थान लेना प्रारम्भ किया किन्तु बाण के समय तक दोनों प्रकार के भवनों के निर्माण का प्रमाण कादम्बरी से मिलता है । ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि हर्ष का कजुदिरा स्कन्धावार घास-फूस से निर्मित था जिसे छोड़ते समय जला दिया गया था ।[745] विद्वान् यह मानते हैं कि कालान्तर में स्कन्धावार स्थायी होने लगे थे जिनमें पालों एवं चन्देलों के विजय स्कन्धावारों का उल्लेख किया जा सकता है ।[746]

हर्षचरित से ज्ञात होता है कि सेना के साथ राजाओं और सामन्तों की स्त्रियाँ भी साथ जाती थी । बाण के अनुसार सेना के साथ अभिजात राजपुत्रों के द्वारा भेजे गये पीतल के पत्रों से मढ़ वाहनों में कुलीन कुलपुत्रों की स्त्रियाँ जा रही थी ।[747] अन्यत्र बाण ने हाथी पर सवार अन्तःपुर की स्त्रियों के गमन का उल्लेख किया है । जिनके साथ मशाल लेकर लोग आगे-आगे चलते थे जिससे आम जनता मार्ग छोड़कर अलग हो जाती थी ।[748] कादम्बरी में बाण ने काम काजी महिलाओं का उल्लेख किया है । चन्द्रापीड के स्कन्धावार में पहुँचकर पास में कार्यरत स्त्रियों से जो उसे न पहचान सकीं, वैशम्पायन के विषय में पूछा ।[749] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि राजधानी में कुछ कर्मचारियों, अधिकारियों के अतिरिक्त राज परिवार के सैन्य अभियान में स्त्रियों सहित अनेक सदस्य प्रयाण करते थे ।

अस्त्र-शस्त्र

बाणभट्ट ने अपने साहित्य में आक्रमणात्मक और रक्षात्मक अनेक प्रकार के आयुधों का वर्णन किया है जिनका प्रयोग युद्ध में किया जाता था । इस सन्दर्भ में असि[750] का उल्लेख किया जा सकता है । अर्थशास्त्र में असि को खड्ग का एक प्रकार कहा गया है ।[751] हर्षचरित में खड्ग[752] का उल्लेख किया है । कृपाण का उल्लेख बाण के साहित्य में अनेकशः किया गया है । हर्षचरित में कृपाण[754] का

उल्लेख अनेक सन्दर्भों में मिलता है । कादम्बरी में भी कृपाण का उल्लेख किया गया है ।[754] अर्थशास्त्र के अनुसार कृपाण भी खड्ग का एक प्रकार था । कृपाण छोटी बड़ी दो तरह की होती थी । बाण ने एक स्थान पर "कृपाणिका" का उल्लेख किया है जो संभवतः छोटी प्रकार की कृपाण थी और कमर की पेटी में खोंसी जाती थी ।[755] बाण ने हर्षचरित में भैरवाचार्य के द्वारा भेजी अट्टहास कृपाण[756] का वर्णन विस्तृत रूप से किया है । इसे बाण ने महाअसि कहा है । यह अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाली बिजली जैसी चमक की बड़ी तलवार थी । हर्षचरित से निस्त्रिंश[757] नामक आयुध की जानकारी मिलती है । अर्थशास्त्र के अनुसार यह खड्ग का एक प्रकार होता था जिसका अग्रभाग टेढ़ा होता था ।[758] बाण ने लिखा है कि हाथियों के पीछे बैठे हुए परिचारक चमड़े के बने विशेष प्रकार के तरकशों में भरे हुए भिन्दिपाल लिये हुए थे ।[759] फ्लीट के अनुसार भिन्दिपाल ... लोहे के तीर थे ।[760] उल्लेखनीय है कि अर्थशास्त्र में लोहे से बने बाणों को दण्डासन और नाराच कहा गया है ।[761] संभव है कि भिन्दिपाल छोटे हलके भाले रहे हों जिन्हें हाथी पर से फेंककर मारा जाता रहा हो । कोण[762] या मुद्गर हाथ में लेकर युद्ध करने का आयुध था । बाण ने हर्षचरित में क्षुरधार वाले दर्पण का उल्लेख किया है, जिसके द्वारा रानी रत्नावली ने अयोध्या के राजा जारूथ्य को मार डाला था ।[763] अर्थशास्त्र में कुठार, पट्टिस और कुद्दाल आदि को 'क्षुरकल्पों' में गिनाया गया है ।[764] भल्ली[765] संभवतः छोटे आकार के भाले होते थे जिन्हें बाण ने तरकश में भरे होने का उल्लेख किया है । इनको हाथ से फेंककर प्रहार किया जा रहा होगा। बाण धनुष का उल्लेख करते हैं ।[766] चाप[767], कार्मुक[768] और कोदण्ड[769] नामों से भी धनुषों का उल्लेख किया गया है । अर्थशास्त्र में धनुषों के तीन प्रकारों के नाम कार्मुक, कोदण्ड और द्रुण मिलते हैं ।[770] हर्षचरित में एक अन्य प्रकार के धनुष का उल्लेख मिलता है जिसे शार्ङ्ग कहा गया है ।[771] अग्रवाल महोदय शार्ङ्ग का अर्थ सींग का बाजा किया है ।[772]

उल्लेखनीय है कि शार्ङ्ग का अर्थ कोशग्रन्थों में धनुष ही मिलता है । अमर

कोश के अनुसार विष्णु को शार्ग धारण करने के कारण शार्ङ्गिन् कहा गया है ।[773] हलायुध कोशकार ने शार्ङ्ग का अर्थ धनुष ही किया है ।[774] इसी प्रकार मेदिनी कोश[775] और अनेकार्थसंग्रह कोश[776] में भी शार्ङ्ग को धनुष ही माना गया है । कालिदास के रघुवंश में शार्ङ्ग शब्द का प्रयोग रघु के युद्ध वर्णन में मिलता है ।[777] रघुवंश के भाष्यकार मल्लिनाथ ने "शार्ङ्ग" शब्द के दो अर्थ किये हैं : पहला धनुष और दूसरा सींग का बना हुआ वाद्य यंत्र[778] किन्तु बाण के वर्णन में मल्लिनाथ का अर्थ "सींग का बाजा" समीचीन नहीं लगता, जैसा कि प्रो० वासुदेव शरण अग्रवाल मानते हैं । यहाँ शार्ङ्ग का अर्थ धनुष करना ही उचित होगा क्योंकि संभवतः हाथियों पर सवार सैनिकों के लिए बाण का प्रयोग करना अधिक उपयुक्त रहा हो। इस सन्दर्भ में आये भिन्दिपाल[779]।छोटे हलके भालों। को हाथियों पर आरूढ़ सैनिकों के प्रयोग के लिए रखा गया हो जैसा कि कौटिल्य ने उल्लेख किया है कि सान्नाह्य हाथी को सूँड़ दाँत के प्रहार से सेना नष्ट करनी चाहिए ।[780] ऐसा प्रतीत होता है कि हाथी के सूँड़ में भाले पकड़ा दिये जाते थे जिनसे वह शत्रु सेना का संहार करता था । आयुधों को रखने के लिए बाण ने हर्षचरित में "भस्त्राभरण" का उल्लेख किया है । हाथियों के पीछे की ओर बैठे हुए परिचारक चमड़े के बने हुए विशेष प्रकार के तरकशों में छोटे भालों के मुठ्ठे लिये हुए थे ।[781] शबर सेना-पति का तरकश ।भस्त्राभरण। भालू के चमड़े का बना था, जो विशेष रूप से भल्लियों और बाण से भरे हुए थे ।[782] हर्षचरित में शर नामक बाणों का उल्लेख मिलता है ।[783] अर्थशास्त्र में शरों के कई प्रकार गिनाये गये हैं जिनमें वेणु, शर, शलाका, नाराच आदि हैं ।[785] वेणु, शर, शलाका संभवतः लकड़ी के बनाये जाते थे । हर्षचरित में विष से बुझे हुए बाण का उल्लेख भी मिलता है ।[785] जिनका अग्रभाग विष से दूषित कर दिया जाता था । धनुष की डोरी को ज्या कहा जाता था ।[786] अर्थशास्त्र में वर्णित है कि धनुष की डोरी जिसे अनेक नामों ज्या, मूर्वा, अर्क, शण आदि से जाना जाता है, स्नायु ।तांत। से बनाई जाती थी ।[787] शबरसेनापति के वर्णन में बाणभट्ट ने परिवार ।म्यान। का उल्लेख किया है जो साँप की खाल की

दो पट्टियों से निर्मित थी जिस पर शोभा के लिए चीति के चमड़े के चकत्ते काटकर लगाये गये थे ।[788] कमर में छोटी कृपाण या असि खोंसने के लिए कपड़े की दोहरी पेटी का उल्लेख मिलता है ।[789] वस्त्र के अतिरिक्त सर्प के चमड़े से निर्मित पेटी का भी उल्लेख मिलता है ।[790] बाणभट्ट ने कार्दरंग चर्म से बनी ढाल का उल्लेख किया है ।[791] भाष्यकार शंकर के अनुसार कार्दरंग देश ।द्वीप। से आया हुआ चर्म या ढाल ।[792] कामरूप के राजा भास्कर वर्मन द्वारा उपहार में कार्दरंग चर्म भी भेजा गया था ।[793] उल्लेखनीय है कि मंजुश्री मूलकल्प में हिन्देशिया के द्वीपों के नामों में सबसे पहले कर्मरंग का उल्लेख है ।[794] बाण ने यहाँ ढाल के लिए बन्धुर-परिवेश ।सुन्दर घेरे वाली। शब्द का प्रयोग किया है । ढालों के चारों ओर सजावट के लिए छोटी-छोटी रंग-बिरंगी चौरियाँ लगी होती थी जिससे ढालें चित-कबरी लगती थीं । अग्रवाल महोदय के अनुसार अहिच्छत्रा से प्राप्त महिषासुर-मर्दिनी की एक मूर्ति में इस प्रकार की चौरियाँ स्पष्ट दिखायी गयी है ।[795] हर्ष चरित में सैनिकों के लिए सिर पर पहनने के लिए उष्णीश[796], शिखण्ड खण्डिका[797] तथा दुकूलपट्टिकाओं[798] का उल्लेख आता है । सैनिकों के वर्णन में बाणभट्ट नेत्र कंचुक पहने हुए सैनिकों का उल्लेख किया है ।[799] बाण ने एक स्थान पर ।चीन-निर्मित। रेशमी कंचुक का उल्लेख किया है ।[800] उल्लेखनीय है कि अर्थशास्त्र में कंचुक को कवच अथवा वर्म कहा गया है ।[801] बारबाण [802] भी संभवतः एक विशेष प्रकार का कवच ही रहा हो जो नीचे टखनों तक लम्बा होता था । युद्ध के समय पहनावे में कूर्पास का उल्लेख आता है[803] जो संभवतः स्कन्ध के सुरक्षार्थ पहना जाता था । इन वस्त्रों के सन्दर्भ में अर्थशास्त्र के साक्ष्य का उल्लेख किया जा सकता है ई जिसमें वर्म, कंचुक, शिरस्त्राण, बारबाण और कूर्पास आदि को आवरणानि कहा गया है ।[804] कादम्बरी में योद्धाओं के द्वारा पहने जाने वाले कवच का उल्लेख है ।[805] जिसे छाती पर पहना जाता था । संभव है यह लौह निर्मित रहा हो । चन्द्रापीड की शिक्षा के प्रसंग में उसे चाप, चक्र, चर्म, कृपाण, शक्ति, तोमर, परशु, गदा आदि अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा देने का उल्लेख बाणभट्ट ने कादम्बरी में किया

है ।[806] उल्लेखनीय है कि हर्षचरित में चक्र, गदा, शक्ति, परशु, तोमर का उल्लेख नहीं मिलता जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रापीड की शिक्षा में बाण ने सैद्धान्तिक परम्परा से प्राप्त अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख मात्र ही किया है । बाणभट्ट के समकालीन चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी भाले, धनुष, बाण, तलवार, खड्ग और ढाल आदि आयुधों का उल्लेख किया है ।[807]

सैनिक अधिकारी

बाणभट्ट अपने साहित्य में कतिपय उच्चपदस्थ सैनिक अधिकारियों का उल्लेख किया है जिनमें सेनापति का सर्वप्रथम नाम आता है । हर्षचरित में सिंहनाद को सेनापति कहा गया है, जो हर्ष के पिता प्रभाकर वर्द्धन का मित्र था और युद्ध के समय सबसे आगे रहने वाला तथा वाहिनीनायक की मर्यादाओं का परिपालक था ।[808] यहाँ सिंहनाद को सेनापति के साथ-साथ वाहिनीनायक भी कहा गया है । इसी प्रकार हर्ष की माता को वाहिनीपति राजा के कुल की कन्या कहा गया है ।[809] कादम्बरी में सेनापति भद्रसेन का उल्लेख आता है जो चन्द्रापीड के साथ अभियान में गया था ।[810] ध्यातव्य है कि बाण ने हर्ष को एक स्थान पर "महावाहिनीपति"[811] कहा गया है जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि सेना का प्रधान सेनापति राजा स्वयं होता था, उसके नीचे के उच्च अधिकारी को सेनापति की उपाधि प्रदान की जाती थी ।

बृहदश्वार अश्व-सेना का सेनापति होता था । हर्षचरित से ज्ञात होता है कि राज्यवर्द्धन के कृपापात्र कुन्तल और भण्डि को इस उपाधि से विभूषित किया गया है । भण्डि अश्व सेना को लेकर राज्यवर्द्धन के साथ मालवराज के विरुद्ध अभियान पर गया था ।[812] भण्डि को हर्ष ने भी गौड़ाधिप के विरोध में सेना के साथ प्रस्थान का आदेश देकर स्वयं राज्यश्री की खोज में चले गये ।[813] राज्यवर्द्धन के गौड़ाधिप के विरुद्ध अभियान का चिन्तन करते हुए हर्ष जब आस्थान मण्डप में

पहुँचे तो उन्होंने राज्यवर्द्धन का प्रसाद पात्र कुन्तल नामक प्रधान घुड़सवार को देखा।[814] कादम्बरी में घुड़सवारों में प्रथम पृथुवर्मा का उल्लेख मिलता है ।[815] इसके अलावा अश्वसेन को महाश्वपति कहा गया है ।[816] जिससे प्रतीत होता है कि चन्द्रापीड की अश्व सेना का मुख्य अधिकारी अश्वसेन ही था उसके नीचे प्रथम घुड़सवार नामक कोई अधिकारी होता था ।

हर्षचरित में महासन्धिविग्रहाधिकृत नामक सैनिक अधिकारी का उल्लेख मिलता है जिस पर अवन्ति को सम्मानित किया गया था ।[817] गुप्त-काल में भी महासन्धिविग्रहिक नामक अधिकारी का उल्लेख मिलता है । समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में हरिषेण को संधिविग्रहिक कहा गया है ।[818] बाणभट्ट इनके कार्यों का उल्लेख करता हुआ लिखता है कि हर्ष ने सैन्य अभियान के पूर्व महासन्धिविग्रहाधिकृत अवन्ति को आज्ञा दी - लिखो, पूर्व में उदयाचल, दक्षिण में त्रिकूट पर्वत तक, पश्चिम में अस्ताचल तक और उत्तर में गन्ध मादन तक सब राजा हाथ में कर दान लिए, सेवा चामर अर्पित करने के लिए, प्रणाम करने के लिए, पादपीठ पर मत्था टेकने के लिए, अंजलिबद्ध प्रणाम कर भूमि त्यागने के लिए, वेत्रयष्टि लेकर प्रतिहार का कार्य करने के लिए तथा चरणों में प्रणाम के लिए तैयार हो जायें अथवा युद्ध के लिए शस्त्र ग्रहण करें ।[819] प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त ने विजित राजाओं के साथ सर्व करदान, आज्ञाकरण, प्रणामागमन, प्रसभोद्धरण और परिचारिकीकरण आदि जिन नीतियों का अवलम्बन किया था[820], बाण ने हर्ष के सैन्य अभियान के प्रसंग में जो वर्णन किया है वह पारम्परिक है । बाणभट्ट के द्वारा वर्णित महासन्धिविग्रहिक के कार्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि वह युद्ध मंत्री रहा हो जिसे युद्ध सम्बन्धी घोषणा पड़ोसी राजाओं के पास भेजने का अधिकार था ।

हर्षचरित से ज्ञात होता है कि हस्ति सेना के प्रधान को गजसाधनाधिकृत कहा जाता था । इस पद पर बाण ने स्कन्दगुप्त का उल्लेख किया है जिसे हर्ष ने गौड़ाधिप के विरुद्ध अभियान के लिए गज सेना की तत्काल उपस्थिति का आदेश

दिया था ।[821] हर्ष के मधुबन एवं बाँसखेड़ा ताम्रपत्र अभिलेखों से ज्ञात होता है कि स्कन्दगुप्त को महासामन्त, प्रमातार एवं दूतक का पद भी प्राप्त था ।[822] इससे ऐसा आभास होता है कि गजसाधनाधिकृत पद पर सुयोग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों को ही नियुक्त किया जाता था । हर्षचरित में स्कन्दगुप्त के द्वारा हर्ष को जिस प्रकार समझाया गया है[823] उससे उसके अनुभव का बोध होता है । नागवन वीथी पाल[824] नामक अधिकारी संभवतः गजसाधनाधिकृत के अधीन होते थे जिनका कार्य हाथियों के वनों का संरक्षण था ।

बलाधिकृत नामक अधिकारी संभवतः सेना का उच्चाधिकारी होता था । हर्षचरित में बलाधिकृतों का उल्लेख पाटीपतियों को तलब करने के सन्दर्भ में किया गया है ।[825] बलाधिकृत गुप्त-काल से महत्वपूर्ण पद माना जाता था । करमदंडा के अभिलेख से ज्ञात होता है कि शिखर स्वामिन् का पुत्र कुमारामात्य पहले तो सम्राट् कुमार गुप्त का मन्त्रिन् था परन्तु बाद में वह महाबलाधिकृत बना दिया गया था ।[826] कादम्बरी में बाण ने लिखा कि चन्द्रापीड के वार्ताहरों का त्वरितक के साथ उज्जयिनी लौटने पर लोगों ने पूछा बलाधिकृत अवन्तिसेन का क्या समाचार है ?[827] कादम्बरी में एक स्थान पर महाबलाधिकृत मेघनाद का उल्लेख है जिसमें चन्द्रापीड उसे पत्रलेखा के साथ आने का आदेश देता है ।[828] अग्रवाल महोदय ने बलाधिकृत को एक वाहिनी (आधुनिक बटालियन) का अध्यक्ष कहा है ।[829] इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि महाबलाधिकृत सेनापति के स्तर का उच्चाधिकारी रहा होगा जिसका अधीनस्थ बलाधिकृत होता था ।

हर्षचरित में बलाधिकृत द्वारा पाटीपतियों के तलब करने का जो उल्लेख बाण ने किया है उससे ऐसा आभास होता है कि पाटीपति बलाधिकृतों के अधीनस्थ अधिकारी थे । जिन्हें टॉमस वाटर्स ने वारिकों का निरीक्षक माना है ।[830]

बाणभट्ट के साहित्य में सेना का जो विस्तृत विवरण प्राप्त होता है उससे

एक आदर्श सैन्य अभियान की परिकल्पना की जा सकती है किन्तु सेना के प्रयाण से आम जनता के कष्ट का जो उल्लेख बाण ने हर्षचरित में किया है उससे उसके आदर्श पर धब्बा लग जाता है। सेना द्वारा जनता की तबाही से सैन्य अनुशासन पर प्रश्न चिन्ह लग जाना स्वाभाविक है। बाण के अनुसार हाथियों ने रास्ते के छोटे-छोटे घरों को पैरों से रौंद डाला तो लोग उठ-उठ कर हाथीवानों को ढेले मारने लगे। फूस की झोपड़ियाँ सेना के धक्कमधक्के में ध्वस्त हो गयीं और उसमें रहने वाली गृहणियाँ जान बचाकर भागीं।[831] दूसरे कुछ लोग जिनकी तैयार फसल काट ली गयी थी उसके शोक में गृहस्थी के साथ बाहर निकलकर प्राणों की परवाह किये बिना राजा की निन्दा कर रहे थे।[832] इसके विपरीत मौर्यकाल की सेना का जो अनुशासन एरियन के शब्दों से ज्ञात होता है, उससे तत्कालीन आदर्श का आभास होता है। उसके शब्दों में गृहयुद्ध के समय भी सैनिकों को, किसानों को उत्पीड़ित करने अथवा उनके खेतों को नष्ट करने की आज्ञा नहीं होती थी। इस प्रकार एक ओर जहाँ सैनिक मारकाट मचा रहे हों, वहाँ दूसरी ओर किसानों को इस सबसे निश्चिंत अपने खेतों में काम करते देखा जा सकता है।[833] इस प्रकार मौर्ययुगीन सेना में जो मानवता और आदर्श परिलक्षित होता है, उसका बाण के समय में अभाव दिखायी देता है। संभवतः यही कारण है कि सैन्य अभियानों में जो सफलता मौर्य-काल के शासकों को प्राप्त थी, वैसी सफलता की कल्पना ही बाणभट्ट के समय की जा सकती है।

न्याय एवं दण्ड व्यवस्था

प्राचीन काल से राजा न्याय का सर्वोच्च पदाधिकारी माना जाता रहा है। कौटिल्य इस विषय में निर्देश करते हैं कि राजा को दिन के दूसरे भाग (दिन का आठ विभाजन) में पौर जानपदों के विवादों को सुलझाना चाहिए।[834] मनु का विचार है कि लोगों के झगड़ों को निपटाने के लिए राजा को ब्राह्मणों एवं मन्त्रियों के साथ सभा में प्रवेश करना चाहिए तथा प्रतिदिन के विवादों को इस

करना चाहिए ।[835] राजा न्याय का आधार माना जाता था और अपील करने का अन्तिम स्रोत था किन्तु इस सम्बन्ध में वह स्वतन्त्र नहीं होता था । उसको धर्मशास्त्र, रीतिरिवाज, व्यापारियों, शिल्पियों आदि की परिस्थिति तथा सभासदों के विचारों के अनुसार ही न्याय करना होता था ।[836] स्मृतिकारों का विचार है कि जब राजा व्यक्तिगत रूप से न्याय प्रशासन की देखभाल न कर सके तो उसे विद्वान् ब्राह्मणों को नियुक्त करना चाहिए और तीन सभ्यों को न्याय के लिए नियुक्त करना चाहिए ।[837] नारद का विचार है कि कम से कम तीन सभ्यों की नियुक्ति विवाद का हल करने के लिए करना चाहिए ।[838] जबकि बृहस्पति का विचार है कि सभ्य सात, पाँच अथवा तीन हो सकते हैं ।[839] मनु अट्ठारह प्रकार के विवाद गिनाये हैं जिसमें ऋण की वसूली, बिना स्वामित्व के किसी चीज का बेचना, समझौतों को लागू न करना, क्रय-विक्रय सम्बन्धी, सीमाओं के झगड़ों, चोरी डकैती, पति-पत्नी के कर्तव्य, बंटवारा, जुआ आदि ।[840] बृहस्पति के अनुसार न्याय प्रक्रिया दो प्रकार की होती थी, दीवानी सम्बन्धी मामलों में चौदह मामले आते हैं और फौजदारी में चार प्रकार के मामले थे ।[841]

न्याय के विषय में स्मृतिकारों का विचार है कि निर्दोष को दण्ड नहीं मिलना चाहिए । मनु इस विषय में कहते हैं कि किसी मामले में अन्याय किया जाता है तो उसके दोष का चौथाई भाग गलत करने वाले को, चौथाई गवाह को, चौथाई न्यायाधीशों को और चौथाई राजा को लगता है ।[842] याज्ञवल्क्य का विचार है कि यदि किसी मामले में न्यायिक सदस्य न्याय अथवा परम्परा के विरुद्ध भय, लालच अथवा दबाव में आकर निर्णय करते हैं तो उस दोष के लिए निर्धारित दण्ड का दुगुना दण्ड उन्हें दिया जाना चाहिए ।[843] सभ्यों के कर्तव्य पर विचार करते हुए व्यवस्थाकारों का मत है कि न केवल सही ढंग से न्याय का अधिकार है अपितु राजा को अनुचित करने से रोकना भी उसका कर्तव्य है ।[844]

उल्लेखनीय है कि बाणभट्ट के साहित्य से न्याय और दण्ड-व्यवस्था पर

यत्किंचित प्रकाश ही पड़ता है । बाणभट्ट न्याय के प्रक्रिया के विषय में कुछ नहीं कहते । दशकुमारचरित में विहारभद्र राजा से कहा है कि प्राड्विवाक [जज] अपने मन से अनेक प्रकार से मन गढन्त झगड़ों को खड़े करके जय-विजय अथवा हानि-लाभ की बात बनाकर विविध प्रकार के पापों एवं दुष्कीर्तिकर कार्यों को करते हुए अपने मूर्ख स्वामी को बदनाम कर अपना स्वार्थ साधते हैं ।[845] ध्यातव्य है कि चारुदत्त के अपराध की रिपोर्ट जब राजा को बताया गया और स्मरण कराया गया कि ब्राह्मण को मृत्युदण्ड नहीं मिलता, तो राजा ने सभी नियमों का उल्लंघन करके उसे मृत्युदण्ड प्रदान किया ।[846] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि राजा का निर्णय अन्तिम होता था । मृच्छकटिक से ज्ञात होता है कि न्यायाधीश यदि चाहे तो निर्णय की तिथि अगले दिन टाल सकता है किन्तु यदि कोई प्रभावशाली व्यक्ति होता था तो राजा से कहकर दूसरा न्यायाधीश नियुक्त करवा लेता था और अपना फैसला उसी दिन सुन लेता था जैसा कि शकार ने किया ।[847] मृच्छकटिक से अदालती कार्यवाही के विषय में जानकारी प्राप्त होती है । अदालत की कार्यवाही साधनक की सहायता से चलती थी । अदालत में बैठने आदि की समुचित व्यवस्था के पश्चात् न्यायाधीश श्रेष्ठिन्, कायस्थ के साथ साधनक के द्वारा अदालत में लाया जाता था।[848] न्यायाधीश के बैठने के बाद वह साधनक को आदेश देता था कि सभा के बाहर जाकर अपराधी को सूचित करे ।[849] जब वादी अदालत में प्रवेश करता था तो उसको सम्मान से बैठने का स्थान दिया जाता था । वृद्ध व्यक्ति जज को शुभकामनायें देते हैं, दूसरे अन्य प्रणाम आदि करते थे । इसके पश्चात् न्यायाधीश वादी को अपना बयान देने को कहता था जिसे कायस्थ लिपिबद्ध करता था । यदि मामला कष्ट-साध्य होता था, तब न्यायाधीश पुलिस अधिकारी को खोज-बीन का आदेश देता था । अदालत में इस कार्य के लिए घोड़े तैयार रखे जाते थे । नियमानुसार लंबित मामलों के निर्णय तक नये मुकदमें नहीं लिये जाते थे ।[850] मृच्छकटिक इस विषय में कहता है कि जब न्यायाधीश शकार के मुकदमें का निर्णय कर रहा था उसी समय एक पुलिस अधिकारी छादनक के विरुद्ध शिकायत करने पहुँचा, जिस पर न्यायाधीश उसे

तब तक ठहरने का निर्देश दिया जब तक शकार के मुकदमें का निर्णय नहीं हो जाता । अदालत में निर्णय के समय राजपुरुष उपस्थित रहते थे जिन्हें निर्णय के बाद अपराधी को सौंप दिया जाता था ।[851]

मृच्छकटिक में न्यायालय को अधिकरण मण्डप कहा जाता था ।[852] इससे संकेत मिलता है कि अधिकरणिक को न्यायाधीश कहा जा सकता है । दशकुमार चरित में न्यायाधीशों की अदालत को अधिकरण कहा जाता था ।[853] मत्तविलास प्रहसन के अनुसार पल्लवों के न्यायिक अदालत को अधिकरण कहा जाता ह था ।[854] बाणभट्ट की कादम्बरी से ज्ञात होता है कि अदालत प्रातःकाल लगती थी ।[855] दशकुमार चरित के अनुसार राजा को दूसरे पहर में ।आठ भागों में बटे दिन में। लोगों के झगड़ों का निपटारा करना चाहिए ।[856]

न्याय-व्यवस्था में स्मृतिकारों ने साक्षी को विशेष महत्व दिया है जिसके विषय में बाणभट्ट मौन हैं । नारदस्मृति में प्रत्यक्षदर्शी, सुनकर जानने वाला तथा अप्रत्यक्ष साक्षियों का उल्लेख मिलता है ।[857] कतिपय स्मृतिकारों ने साक्षियों की स्पष्ट सूची प्रदान की है । बृहस्पति के अनुसार घर और खेत के सीमा विवाद के विषय में कृषक, कलाकार, मजदूर, चरवाहा, शिकारी, बहुआरा आदि गवाह हो सकते हैं ।[858] इसके विपरीत नारद सीमा-विवाद में झूठे साक्षियों का उल्लेख करते हैं जिनमें जादूगर, पेशेवर नृत्य करने वाला, महावत, चमड़े का काम करने वाला, चण्डाल, शूद्र, कृषक, शूद्रा का पुत्र आदि हैं ।[859] बृहस्पति का विचार है कि साक्षी सम्मानित कुल और धर्मानुयायी होना चाहिए किन्तु शूद्र भी हो सकते हैं[860] । याज्ञवल्क्य[861], नारद[862] और कात्यायन[863] का विचार है कि शूद्र केवल शूद्रों के मामले में गवाही दे सकते हैं । मनु[864], बृहस्पति[865] और कात्यायन[866] का विचार है कि गवाहों के विरोध में राजा ज्यादा साक्षियों का प्रमाण मानें, समान संख्या होने पर गुण में श्रेष्ठ साक्षियों के द्वारा सत्य का निर्णय करे और गुणियों के विरोध में क्रियानिष्ठ ब्राह्मणों का वचन स्वीकार करे । साक्षियों की संख्या के

विषय में मनु[867] और नारद[868] का विचार है कि साक्षी कम से कम तीन होना चाहिए। किन्तु बृहस्पति के अनुसार साक्षियों की संख्या नौ, सात, पाँच अथवा तीन हो सकती है किन्तु यदि विद्वान् ब्राह्मण हो तो संख्या दो भी मान्य है।[869] मनु का विचार है कि लोभरहित एक मनुष्य भी गवाह हो सकता है परन्तु अनेक स्त्रियाँ पवित्र होने पर भी साक्षा के योग्य नहीं है। चोरी आदि दोषों से युक्त पुरुष भी साक्षी नहीं हो सकते।[870] बृहस्पति का मन्तव्य है कि व्यक्ति साक्षी हो सकता है यदि वह संदेशवाहक, लेखक (एकाउन्टेन्ट), राजा अथवा न्यायाधीश हो।[871]

बाणभट्ट के साहित्य में अलंकारिक वर्णनों से दण्ड-व्यवस्था पर यत्किंचित प्रकाश पड़ता है। बाण के अनुसार हर्ष के शासन में छन्दों के चरणों में ही भाग और विराम आदि होते हैं, न कि किसी पाप अथवा विशेष अपराध के कारण पाद (पैर) काटे जाते थे। (वृत्तानां पादच्छेदा:) शतरंज के खेल में ही सेना के चार अंग हस्ति-अश्व-रथ-पैदल की कल्पना है न कि अपराधी के दोनों हाथ और पैर काट लिए जाते हैं। मीमांसक लोग ही अधिकरणों (प्रकरणों) में विचार विमर्श करते हैं, न कि धर्मनिर्णय के स्थान-फौजदारी और दीवानी की अदालतें लगती थीं।[872] इसी प्रकार बाण अन्यत्र उद्घोषित करते हैं कि राज्य में कोई विवाद करने वाला द्रोही नहीं था इसलिए राज्य के करण (अधिकरण) केवल विद्या परीक्षा और धर्म निर्णय के लिए प्रसिद्ध थे। सम्राट हर्ष का वंशानुगत राज्य महाराज भरत के मार्ग के अनुकरण करने से महनीय (गुरु) था।[873] हर्ष के विषय में बाण लिखता है कि हर्ष न्याय पर स्थित थे।[874] उनके शासन में कोई निडर न था जो सम्राट के दण्ड भय से अविनय, जो सब व्यसनों का मूल है, को मन में धारण करने का साहस कर सकता हो।[875] इसी प्रकार शूद्रक के राज्य का वर्णन करते हुए बाण लिखता है कि वर्णसंकरता केवल चित्र में, केशाकर्षण केवल रतिकर्म में, दृढ़बन्धन केवल काव्यों में, चिन्ता केवल शास्त्रों में, स्वर्णदण्ड केवल छत्रों में, मदविकार केवल गजों में, गुणों की त्रुटि केवल धनुष में, कलंक चिन्ह केवल चन्द्रमा, कृपाण और ध्वजों में, दूतों का आना

जाना केवल काम-केलियों आदि में रह गये, प्रजाओं में नहीं । उसके यहाँ भय केवल परलोक का, वक्रता अन्तःपुर की स्त्रियों के अलकों में, कर ग्रहण विवाहों में और अश्रुपात यज्ञाग्नि के धूम से तथा कशाभिघात तुरंगों में था ।[876] बाण के वर्णन से यद्यपि एक आदर्श राज्य की ओर संकेत किया गया है किन्तु प्रकारान्तर से प्रतीत होता है कि दण्ड-व्यवस्था में अंगच्छेद, कशाभिघात, केशाकर्षण, दृढ़बन्धन अर्थदण्ड (सवर्ण-दण्ड), आदि का विधान रहा होगा । चीनी यात्री ह्वेनसांग के वर्णन से कुछ इसी प्रकार की दण्ड-व्यवस्था की झलक मिलती है । उसके अनुसार अपराधी वर्ग कम था किन्तु कानून का उल्लंघन करके राजा के विरुद्ध षड्यंत्र रचा जाता था । षड्यन्त्रकारियों को पकड़े जाने पर आजीवन कारावास और सामाजिक बहिष्कार की सजा दी जाती थी । अनैतिक अपराधों और माता-पिता के साथ अशिष्ट व्यवहार के लिए अपराधियों के अंगच्छेद किये जाते थे । अथवा देश से निष्कासन किया जाता था । सामान्य अपराधों के लिए अर्थदण्ड का विधान था ।[877] ह्वेनसांग यद्यपि लिखता है कि अपराधी वर्ग कम था किन्तु भारतयात्रा के समय अनेक बार उसे डाकुओं का सामना करना पड़ा । अयोध्या के तीर्थस्थानों के परिभ्रमण के पश्चात् अपने चौरासी साथियों के साथ जब ह्वेनसांग गंगा के जलमार्ग से हयमुख की ओर जा रहा था तो लगभग सौ ली चलने के पश्चात् मार्ग में डाकुओं की दस नौकाओं ने उसका अपहरण करके बलि प्रदान के लिए ले गये किन्तु तूफान आ जाने से उसकी प्राण रक्षा हो सकी ।[878] इसी प्रकार शाकल के पर्यटन के दौरान टक्का (लाहौर) की ओर जाते समय दस्युओं ने उसे लूट लिया और बलि चढ़ाने की तैयारियाँ करने लगे लेकिन समीपस्थ गाँव में खबर लग जाने से उसकी प्राण रक्षा हो सकी ।[879] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि बाण के समय तक मार्ग असुरक्षित हो चले थे किन्तु इस प्रकार के अपराध यत्र-तत्र कभी-कभी ही होते रहे होंगे अन्यथा ह्वेनसांग उनके बाहुल्यता की ओर इंगित करता न कि लिखता कि अपराधी वर्ग अल्प संख्या में था ।

दण्ड-व्यवस्था के विषय में विभिन्न स्मृतियाँ भिन्न-भिन्न व्यवस्था की

और इंगित करती है । स्मृतियाँ वर्ण व्यवस्था के आधार पर अपराधों की प्रवृत्ति और दण्ड का निर्धारण करती हैं । नारद के अनुसार चोरी के विषय में शूद्र से ब्राह्मण का अपराध अधिक गम्भीर होता है ।[880] कात्यायन के मत में ब्राह्मण अ और क्षत्रिय को शूद्र से दुगुना दण्ड का विधान है ।[881] वृहस्पति के विचार में गम्भीर अपराध के लिए ब्राह्मण को शारीरिक दण्ड देय है ।[882] कात्यायन के अनुसार ब्राह्मण को मृत्यु दण्ड नहीं देना चाहिए । उसका अपराध चाहे जितना गम्भीर हो । उसका देश निष्कासन करना चाहिए ।[883]

ह्वेनसांग ने अपने भारत भ्रमण के दौरान दिव्य परीक्षा का उल्लेख किया है जिसके अनुसार अपराधियों के अपराध को प्रमाणित करने के लिए जल, अग्नि, भारोत्तोलन और विष का प्रयोग किया जाता था ।[884] उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के दिव्य परीक्षा के विषय में स्मृतियाँ भी प्रकाश डालती हैं । मनु के अनुसार मुकद्दमें में साक्ष्य देने वाले के शपथ की सत्यता और असत्यता प्रमाणित करने के लिए अग्नि व जल से परीक्षा ली जानी चाहिए ।[885] याज्ञवल्क्य[886] और नारदस्मृति[887] में पाँच प्रकार से परीक्षा लेने का विधान है जिनमें तुला, अग्नि, जल, विष्य तथा कोश हैं । वृहस्पति स्मृति में तुला, अग्नि, जल, विष, पवित्रा चमन तप्त सुवर्ण, फाल, चावल तथा धर्माधर्म जैसे नौ दिव्यों का उल्लेख है ।[888] मृच्छकटिक में विष, जल, तुला और अग्नि जैसे दिव्यों का उल्लेख मिलता है ।[889] उल्लेखनीय है कि बाण के हर्षचरित में दिव्य परीक्षा का कोई उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु कादम्बरी में[890] वारि प्रवेश, अग्नि धारण, तुलारोहण और विषशुद्धि नामक चार प्रकार के दिव्यों का उल्लेख बाण द्वारा किया गया है जिससे ह्वेनसांग के वर्णन की पुष्टि हो जाती है ।

न्याय एवं दण्ड-व्यवस्था से सम्बन्धित अधिकारियों के विषय में बाण कोई विशेष प्रकाश नहीं डालते ऐसी परिस्थिति में समकालीन अभिलेखों से कतिपय जानकारी प्राप्त होती है । हर्ष के मधुबन एवं बाँसखेड़ा अभिलेख में स्कन्दगुप्त को महा-

प्रमातार कहा गया है ।[892] जिसके विषय में विद्वानों में मतभेद है । इस नाम का अधिकारी गुप्त काल में नहीं मिलता ।[892] त्रिपाठी के अनुसार इनका सम्बन्ध न्याय से था ।[893] व्यूलर के मत में यह आध्यात्मिक सलाहकार रहा होगा ।[894] देवहूति का विचार है कि प्रमातृ या प्रमातार राजा के अदालत में शास्त्रों का व्याख्याता रहा होगा अथवा इसी प्रकार का कार्य करने वाला अदालत का अधिकारी रहा होगा ।[895] ऐसा प्रतीत होता है कि प्रमातार न्याय विभाग का उच्च अधिकारी था जो न केवल मध्य भारत में अपितु पूर्वी एवं पश्चिमी भारत में भी महत्वपूर्ण था ।[896] देवबर्नार्क अभिलेख में दशापराधिक नामक अधिकारी का उल्लेख किया गया है जिसके विषय में कहा जाता है कि संभवतः ये न्यायाधीश थे जिन्हें लोगों को दस अपराधों जैसे चोरी, हत्या, असत्य भाषण, व्यभिचार, झूठी निन्दा आदि, से रोकने का कार्य था ।[897] जीवितगुप्त द्वितीय के इसी देवबर्नार्क अभिलेख में "दाण्डिक" का उल्लेख किया गया है ।[898] जिसका शाब्दिक अर्थ "दण्ड देने वाला" होता है । इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि यदि दण्ड का अर्थ जुर्माना किया जाय तो इसका सम्बन्ध न्याय व्यवस्था से हो सकता है और यदि दण्ड का अर्थ शारीरिक दण्ड किया जाय तो यह पुलिस अधिकारी हो सकता है ।[899] सरकार इसे पुलिस अधिकारी मानते हैं ।[900] उल्लेखनीय है कि बाण ने हर्षचरित में दाण्डिकों के विषय में कहा है कि इनके भय से राजा के देखने आये लोग भाग जाते थे ।[901] दण्डपाशिक[902] जिसका उल्लेख भी देवबर्नार्क में मिलता है, को विद्वान् पुलिस अधिकारी मानते हैं ।[903] चौरोद्धरणिक[904] नामक अधिकारी के विषय में विद्वान् यह मानते हैं कि इसके दो कार्य थे प्रथम चोरों से सुरक्षा के लिए प्रजा से कर वसूल करना तथा दूसरा चोरों को दण्ड देना ।[905]

इस प्रकार बाण के समय न्याय एवं दण्डव्यवस्था का एक विकसित ढाँचा प्रचलित था जिसके अन्तर्गत कतिपय अपवादों को छोड़कर प्रजा शान्तिपूर्वक जीवन -

यापन करती थी ।

--------::0::--------

सन्दर्भ

1. देवहूति, डी0 : हर्ष ए पोलटिकल स्टडी, पृ0 113.

2. मनु स्मृति : 9.201

3. राय, यू0एन0 : गुप्त सम्राट और उनका काल, पृ0 97, इलाहाबाद 1971.

4. वही, पृष्ठ 268.

5. हर्षचरित : अनु0 जगन्नाथ पाठक, वाराणसी, 1986, पृ0 257.

6. वही, : पृ0 260.

7. वही, : पृ0 257-58.

8. वही, : पृ0 273
   सुखं च राज्यं च वंशश्च प्राणाश्च परलोकाश्च त्वयि मे स्थिता:।

9. वही, : पृ0 294.
   "कुल प्रदीपो सि"-------- "क्षितिरियं तव" --------
   "गृह्यतां श्री" ------- "स्वीक्रियतां कोश" ----------
   "आत्मीक्रियतां राजकम्" ------- "उद्यतां राज्यभार:-
   "प्रजा परिरक्ष्यन्ताम्" ------ "परिजन: परिपाल्यताम्"

10. वही, : पृ0 314
   "तात ! भूमिरसि गुरुनियोगानाम् । शैशव एवाग्राहि
   गुणवत्वताकेव भवता तातस्य चित्तवृत्तिः ।

11. हर्षचरित : पृष्ठ 321।

12. कादम्बरी : सम्पादक काशीनाथ पाण्डुरंग परबा, दिल्ली, 1985, पृ0 239.

13. बील, एस0 : बुद्धिस्ट रिकर्डस् ऑव द वेस्टर्न वर्ल्ड, वा0 1-4, कलकत्ता, 1958, पृ0 210-216.

14. वाटर्स, टी0 : य्वान्च्वांग ट्रेवेल्स इन इण्डिया, वा0 1, लंदन 1905, पृ0 343.

15. पाठक, विशुद्धानन्द : उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास, लखनऊ 1982, पृ0 228.

16. थपल्याल किरण कुमार : इन्सिक्रिप्सन्स ऑव द मौखरीज लेटर गुप्ताज, पुष्पभूतिज एण्ड यशोवर्मन ऑव कन्नौज दिल्ली 1985, पृ0 177-188.

17. वही : पृ0 171।

18. वही : पृ0 147-155.

19. वही : पृ0 90 पा0टि0 1.

20. मीनाक्षी सी0 : एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड शोसल लाइफ अण्डर द पल्लवाज, मद्रास विश्वविद्यालय 1938, पृ0 38.

21. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव : स्टेट एण्ड गवर्नमेण्ट इन एन्सियण्ट इण्डिया, पटना 1955, पृ0 151।

22. वही : प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, इलाहाबाद 1987, पृ0 65.

23. वही : पूर्वोद्धरित 1987, पृ0 65.

24. वही : पृ0 70

25. वही : पृ0 70

26. इपीग्राफिका इण्डिका I, सं0 43, पृ0 371.

27. बंधोपाध्याय, राखालदास : द एज आँव इम्पीरियल गुप्ताज (अनु0 आनन्द कृष्ण) वाराणसी 1970, पृ0 23.

28. अल्तेकर अनन्त सदाशिव : पूर्वोद्धरित 1987, पृ0 70.

29. शर्मा, राम शरण : एस्पेक्ट्स् आँव पोलिटिकल आइडियाज् एण्ड इन्स्टीच्यूशन इन एन्सियण्ट इण्डिया, दिल्ली, 1959, पृ0 176.

30. मनुस्मृति : 7.4-5 (अनु0 रामेश्वरभट्ट) दिल्ली 1985.

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वती: ॥ 4 ॥

यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृप: ।
तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ॥ 5 ॥

31. राय, यू0एन0 : गुप्त सम्राट और उनका काल, पृ0 139-40.

32. कादम्बरी (पूर्व भाग) पृ0 8.

"चक्रधर इव -------- हर इव जितमन्मथ: ----------
गुह इवा -------- कमलयोनिरिव -------- जलधिरि
लक्ष्मीप्रसूति -------- रविरिव -------- मेरुरिव ----।

33. अग्रवाल वासुदेवशरण : कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वाराणसी, 1970, पृ0 20.

34. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 9.

"यस्य मनसि धर्मेण, कोपे यमेन, प्रसादे धनदेन, प्रतापे वह्निना, भुजे भुवा, दृशि श्रिया, वाचि सरस्वत्या, मुखे शशिना, बले मरुता, प्रज्ञायां सुरगुरुणा, रूपे मनसिजेन, तेजसि सविता: -------- ।"

35. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, 1970, पृ0 22.

36. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 167.
"तृतीय इव तेजसा कान्त्या च सूर्याचन्द्रमसोः"

37. वही, : पृ0 169.
"अवतार इव धर्मस्य, प्रतिनिधिरिव पुरुषोत्तमस्य"

38. वही, : पृ0 251.
"रूपान्तर धारिणे भगवते चन्द्रापीडच्छद्मने पुण्डरीके-क्षणाय -------- ।"

39. वही, : पृ0 234.
"मनसा देवताध्यारोपणविप्रतारणादसद्भूतसंभावनोपहत-ताश्चान्तः प्रविष्टापरभुजद्वयमिवा त्मबाहुयुगलं संभाव-यन्ति । त्वगन्तरिततृतीयलोचनं स्वललाटमाशङ्कन्ते ।

40. हर्षचरित : 3, पृ0 169.
"साङ्गः लक्ष्म्या इव -------- जलनिधिमय इव मर्यादासु -------- आकाशमय इव शब्द प्रादुर्भावे, शशिमय इव कलासंग्रहे, वेदमय इवाकृत्रिमालापत्वे, धरणिमय इव लोकधृतिकरणे, पवनमय इव -------- गुरुर्वचसि, ---- बुधः सदसि -------- शत्रुघ्नः समरे -------- दक्षः प्रजा कर्मणि -------- ।"

41. वही, : 2, पृ0 122.
"धर्मस्याद्रष्टपूर्वें लक्ष्म्या महत्वे स्थितम् , अरुणाद पल्लवेन सुमतमन्थरोत्सिता वज्रायुधनिष्ठुरप्रकोष्ठपृष्ठेन वृषस्कन्धेन भास्वद्दिम्बाधरेण प्रसन्नावलोकितेन चन्द्रमुखेन कृष्णकेशेन वपुषा सर्वदेवतावतार मिवैकत्र दर्शयन्तम् ।"

42. वही, : 5, पृ0 257.

43. हर्षचरित : 3, पृष्ठ 153.

44. वही, : 3, पृष्ठ 154.

45. वही, : 3, पृ0 154.

46. रत्नावली : सं0 बैजनाथ पाण्डेय, वाराणसी, 1980, प्रथम अंक, श्लोक 8 और 23.

47. हर्षचरित : 4, पृ0 205-206,
"सती पार्वतीव शंकरस्य ------- लक्ष्मीरिव लोक गुरोः -------- रोहिणीव -------- गङ्गेव -------- त्रयीव धर्मस्य, -------- चन्द्रमयीव निलम्मत्वे ------- ।"

48. थपल्याल के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 147.
"चक्रधर इव प्रजामार्तिहर --------।" असीरगढ़ मुद्रालेख सोहनाग मृण्मुद्रा लेख, पृ0 150, कन्नौज मृण्मुद्रालेख, पृ0 153.

49. वही, : अफसढ़ अभिलेख, पृ0 160.

50. वही, : पृ0 160.

51. वही, : पूर्वोद्धरित, पृ0 177-185.

52. मुकर्जी, राधाकुमुद: अशोक, लखनऊ, 1927, पृ0 108.

53. पुरी, बी0एन0 : द एज आँव इम्पीरियल कुषाणाज,

54. शर्मा, आर0एस0 : एस्पैक्ट्स आँव पोलटिकल आइडियाज एण्ड इन्स्टीच्यूशन इन एन्सियण्ट इण्डिया, पृ0 166.

55. राय, यू0एन0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 139.

56. राय, यू0एन0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 201.

57. वही : पृ0 225.

58. वही : पृ0 277.

59. वही : पृ0 295.

60. हर्षचरित : 2, पृ0 89,
"महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीहर्षदेवस्य"

61. वही : 1, पृ0 45.
"येयं देवानांप्रियस्यातिभद्रता कारयति"

62. वही : 2, पृ0 392.
"सुस्थिरवर्मा नाम महाराजाधिराजो ----"

63. वही : 2, पृ0 119.
"अविलंबादिनं राजाधिम्"

64. वही : 3, पृ0 155.
"पुण्यराजर्षिचरितश्रवणेन-----"

64. अर्थशास्त्र : सं0 वाचस्पति गैरोला, वाराणसी, 1977, 1.3.7
"तस्मादरिषड्वर्गत्यागेन्द्रियजयं ------- प्रज्ञा -------
योगक्षेमसाधनं ------- कार्यानुशासनेन स्वधर्म स्थापनं
------- परस्त्रीद्रव्यहिंसाश्च ------- धर्मार्थाविरो-
धेन कामं ------- ।"

65. हर्षचरित : 2, पृ0 120.
"विषमराजमार्गविनिहितपदस्खलनाभियेव सुलग्नं धर्मे"

66. हर्षचरित : 2, पृ0 129-130.
"निःस्नेह इति धनैः -------- निग्रहरुचिरितीन्द्रियैः -------- नीरस इति व्यसनैः -------- दुर्ग्रहचित्तवृत्तिरिति चित्तभुवा -------- भीष्मा ज्जितकाशितम् -------- ।"

67. वही, : 2, पृ0 131.
"चक्रवर्तिनं हर्षमद्राक्षीत्"

68. वही : 2, पृ0 123.
"जलजशङ्खमीनमकरसनाथतलतया कथित चतुरम्भोधिभोगचिह्नाविव चरणौ"

69. कादम्बरी।पूर्व भाग। : पृ0 9.
"राजा शूद्रको नाम"

70. वही : पृ0 169 ।सं0 चन्द्रकला विद्योतिनी टीका। वाराणसी.
"राजा तारापीडो नामाभूत"

71. वही : पृ0 252
"महाराजाधिराजेन तारापीडेन ------"

72. अग्रवाल के0के0 : पूर्वोद्धरित, बांसखेड़ा और मधुबन अभि0 पृ0 177, 182
"महाराजश्रीनरवर्द्धन --------- महाराजश्रीराज्यवर्द्धन--------- महाराजश्रीनदादित्यवर्द्धन ------ ।"

73. वही : पृ0 177, 182.
"परमभट्टारकमहाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन -------- चतुस्समुद्रातिक्रान्तकीर्तिः प्रतापानुरापोपनवान्य राजो "

74. वही : पृ0 177, 182.

75. घोषाल के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 177, 182.
"परम सौगतः सुगत इव"

76. वही : पृ0 177, 182.
"परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्वसत्वानुकम्पी
परमभट्टारकमहाराजाधिराज श्रीहर्षः"

77. वही : पृ0 133.

78. वही : पृ0 137.

79. वही : पृ0 147.

80. वही : पृ0 147.

81. वही : पृ0 167.

82. वही : पृ0 171.

83. वही : पृ0 147.

84. वही : पृ0 147.

85. वही : पृ0 167.

86. वही : पृ0 171.

87. वही : पृ0 177, 182.

88. अर्थशास्त्र : 1.16.20
-------- "स्त्रीगणैर्धन्विभिः परिगृह्येत"--------

89. वही : 1.16.20

90. अर्थशास्त्र : 1.16.20

गुप्त देशे माहानसिकः सर्वमास्वादबाहुल्येन कर्म कारयेत् तद्राराजा तथैव प्रतिभुञ्जीत, पूर्वमग्नये वयोभ्यश्च बलिं कृत्वा -------- जाङ्गलीविदो भिषजश्चासन्नाः स्युः।

91. वही : 1.16.20

92. वही : 1.16.20

"आप्तशस्त्रग्राहाधिष्ठितः सिद्धतापसं पश्येत्, मन्त्रिपरिषदा सामन्तदूतम् ॥"

93. मनुस्मृति : 7.217

94. वही : 7.219

95. कामन्दकीय नीतिसार [अनु0 एम0एन0 दत्त]
कलकत्ता, 1896, 7.28-47.

96. वही : 7.44,50

97. हर्षचरित : 6, पृ0 351.

"ईदृशाः खलु लोकस्वभावाः प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिदेशं प्रतिद्वीपं च भिन्नाः वेषाश्चाकाराश्चाहाराश्च व्याहाराश्च व्यवहाराश्च जनपदानाम् । तदियमात्म-देशाचारोचित स्वभाव सरलहृदयजा त्यज्यतां सर्वविश्वा-सिता ।"

98. वही : 6, पृ0 351-354.

99. वही : 6, पृ0 355.

100. अग्रवाल वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, 1964, पृ0 136.

101. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 28.
"निःपतन्तीनां स्कन्धावारकावामराणां चामरग्राहिणीनां"

102. वही : पृ0 32.

103. वही : पृ0 152.
"विरलविरलेन परिजनेनानुगम्यमानः ------- अन्तःपुरमयासीत् ।"

104. सिनहा बी0पी0: पोस्ट गुप्ता-पालिटी, कलकत्ता 1972, पृ0 23.

105. अर्थशास्त्र : 1.1.1

106. वही : 1.1.3

107. मनुस्मृति : 7.43
"त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ॥"

108. इपीग्राफिया इण्डिका - 20 सं0 7, पृ0 79.
"लेखरूप-गणना-व्यवहार-विधिविशारदेन -----------
गन्धर्व वेदबुधो ------- ।"

109. वही : 8, पृ0 44.

110. राय, यू0एन0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 595.
शास्त्र-तत्वार्थ भत्रुः ------- गांधर्वकलितैः ।

111. दण्डी : दशकुमारचरित, पृ0 23-24.

112. सिनहा बी0पी0: पूर्वोद्धरित, पृ0 26.

113. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 167.

114. कादम्बरी |पूर्व भाग| : पृ0 168-169.

पदे, वाक्ये, प्रमाणे, धर्मशास्त्रे, राजनीतिषु, व्यायाम विद्यासु, ------- सर्वलिपिषु, सर्वदेशभाषासु सर्वतंत्रासु ------- कौशलमवाप ।

115. अग्रवाल वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, 1970, पृ0 91.

116. वही : पृ0 92.

117. कादम्बरी |पूर्वभाग| : पृ0 113.

118. अग्रवाल वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, 1970, पृ0 92.

119. हर्षचरित : 4, पृ0 234.

120. वही : 4, पृ0 239.

"राज्यश्रीरपि नृत्तगीतादिषु विदग्धासु ---------- सकल कलासु च ।"

121. याजदानी, गुलाम : दक्न का प्राचीन इतिहास, सं0 बी0 याजदानी, दिल्ली, 1977, पृ0 220.

122. वही : पृ0 220.

123. वही : पृ0 220.

124. वही : पृ0 220.

125. अर्थशास्त्र : 1.14.18

126. वही : 1.14.18

125. अर्थशास्त्र : 1.14.18

126. वही : 1.14.18

127. सिनहा, बी०पी०: पूर्वोद्धरित, पृ० 29.

128. मनुस्मृति : 7.145
"उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः ।
हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम् ॥"

129. वही : 7.146

130. वही : 7.151

131. याज्ञवल्क्य स्मृति : 1, 328-30 (टीका नारायण राम आचार्य), दिल्ली, 1985.

132. कामन्दक नीति-सार : 15.46,48.

133. मालविकाग्निमित्र : अंक 2, पृ०

134. हर्षचरित : 2, पृ० 98.

135. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ० 214-17.

136. वही : पृ० 22, 40, 44, 45, 49.

137. सिन्हा, बी०पी० : पूर्वोद्धरित, पृ० 31.

138. वही

139. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ० 14. "यथेष्ट च दिवसमेवमारब्ध-विविध-क्रीडा-परिहास-चतुरैः सुहृद्भिरुपेतो निशामनैषीत् ।

140. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, पृ0 344.

141. अर्थशास्त्र : 1.3.5

142. हर्षचरित : 2, पृ0 92.

143. वही : 2, पृ0 92-94.

144. वही : 2, पृ0 125

145. वही : 2, पृ0 121.

146. अर्थशास्त्र : 4.76.1

147. वही : 4.77.2

148. वही : 4.78.3

149. वही : 4.79.4

150. मनुस्मृति : 7.111

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।
सो चिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः ॥

151. याज्ञ0 : 1.334, 336.

स्याद्राजा भृत्यवर्गेषु प्रजासु च यथा पिता चाटतस्कर-
दुर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः ।

पीड्यमानाः प्रजा रक्षेत्कायस्थैश्च विशेषतः ।

152. रघुवंश : 14.67

153. मनु0 : 7.144

154. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 3, 323, 25-26.

155. कामन्दक नीति-सार, 1, 12.

156. वही,

157. पाराशरोधृत, 5, 82.

158. राय, यू0एन0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 598.

159. अभिज्ञानशाकुन्तलम्

160. कात्यायन स्मृति, 5-6, हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र 3, पृ0 23.

161. हर्षचरित : : 5, पृ0 274
"प्रजाभिस्तु बन्धुमन्तो राजानः, न ज्ञातिभिः ।

162. वही : 5, पृ0 294.
"प्रजाः परिरक्ष्यन्ताम्' 'परिजनः परिपाल्यताम्'

163. कादम्बरी (पूर्वभाग) : पृ0 179 (चन्द्रकला विद्योतिनी टीका)
"शुकनाशनाम्नि मन्त्रिणी सुहृदीव राज्यभारमारोप्य
सुस्थिताः प्रजाः कृत्वा कर्तव्यशेषमपरमपश्यत् ॥"

164. वही : पृ0
प्रजानुरागहेतोरन्तरान्तरा दर्शनं ददौ

165. वही : पृ0 590.
अखिलप्रजापालनव्यवहारेणैव दुःपालम्

166. वही : पृ0 591
न पीडिताः प्रजा लोभेन

167. रत्नावली : पृ0 1 व 122.

168. नागानन्द नाटकम् : ।अनु0 बलदेव उपाध्याय। वाराणसी 1986, पृ0 239.

169. शास्त्री नीलकण्ठ के0ए0 : नंद-मौर्ययुगीन भारत ।हिन्दी अनुवाद।
वाराणसी - 1969, पृ0 173.

170. मनु0 : 7.200

श्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसंभवे ।
तथा युध्येत संपन्नो विजयेत रिपून्यथा ॥

171. राय, यू0एन0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 594-596.

तस्य विविध-समर-शतावतरण-दक्षस्य स्वभुजपराक्रमैकबन्धोः

महाराजाधिराज श्रीसमुद्रगुप्तस्य-सर्व-पृथ्वी-विजय-जनितो-
दय-व्याप्त-निखिलवनितलां कीर्तिमितस्त्रिदशपति --------

172. रघुवंश : 4.67

173. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 129.

174. "विजित्य सप्तद्वीपवलयां वसुन्धरां तस्मिन् शुकनास
नाम्नि मन्त्रिणि सुहृदपि राज्यभारमारोप्य ----"

174. वही : पृ0 255-256.

"नमयन्नुन्नतान् , उन्नमयन्नतान्, आश्वासयन् भीतान्
रक्षन् शरणागतान् , उन्मूलयन् विटपकान् , उत्सादयन्
कंटकान् , अभिषिंचन् स्थान-स्थानेषु राजपुत्रान् ----
आदिशन् देश व्यवस्थाः स्थापयन् स्वचिन्हानि -----
लेखयन् शासनानि ------- दिशां विजिग्ये ।"

175. अग्रवाल, वासुदेवशरण : पूर्वोद्धरित, 1970, पृ0 133.

176. हर्षचरित : 5, पृ0 203.

177. वही : 4, पृ0 257.

178. वही : 3, पृ0 154.

179. अग्रवाल, वासुदेव शरण : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 54.

180. हर्षचरित : 3, पृ0 154.

181. त्रिपाठी, आर0एस0 : हिस्ट्री ऑव कन्नौज, पृ0

182. हर्षचरित : पृ0 343.

183. वाटर्स : पूर्वोद्धृत, 1, पृ0 346.

184. एकातपत्रमुद्रांको भूर्भवतो भविष्यतीति , हर्षचरित, पृ0

185. जी0 याजदानी (सम्पादक) : दकन का प्राचीन इतिहास (भाग 1), पृ0 199.

186. मनु0 : 7.35

"स्वे-स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः ।
वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता ॥"

187. कादम्बरी (पूर्वभाग) पृ0 169 (चन्द्रकला-विद्यो0 टीका)

"यस्तमः प्रसरमलिनवपुषा पापबहुलेन कलिकालेन
चालितमाकूलतो धर्म --- पुनरपि स्थिरीचकार ।"

188. हर्षचरित : 2, पृ0 136,

मनाविव कर्तरि वर्णाश्रमव्यवस्थानां -----

189. वही : 3, पृ0 159.

सततमसंकीर्णवर्णव्यवहारस्थितिः

190. हर्षचरित : 3, पृ0 168.
"-------- सर्ववर्णधरं धनुर्दधान:"

191. थपल्याल, के0के0: पूर्वोद्धरित, 1985, असीरगढ़ मुद्रालेख, पंक्ति 1-2, पृ0 147.
"वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्र इव --------।"

192. वही : हरहा अभिलेख श्लोक 6, पृ0 142.
वर्णाश्रमचार विधिप्रणीते ।
यं प्राप्य साफल्यमीयापथाता ॥

193. वही : बांसखेड़ा एवं अभिलेख मधुबन, पृ0 177, 182.
वर्णाश्रमव्यवस्थापनचक्र --------

194. अर्थशास्त्र : 3.56-57.।
चतुर्वर्णाश्रमस्यायं लोकस्याचार रक्षणात्
नश्यतां सर्वधर्माणां राजधर्म प्रवर्तक: ।

195. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, हरहा अभि0 पृ0 141.
"येनाच्छादित सत्पथं कलियुगध्वान्तवमग्न जगत्सूर्येण समुद्यताकुलामिदं भूय: प्रवृत्तक्रियम् ।"

196. यादव, बी0एन0एस0 : द एकाउन्ट आँव द इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यु में में छपा लेख
इर्ट्रिक्स न कलि एज एण्ड द सोशल एट्रांजिसन फ्राम एण्टीक्वटी टू द मिडिल एज ।"

जुलाई 1978-जनवरी 1979, वा0 5, पृ0 31.
आई0सी0एच0आर0 नई दिल्ली ।

197. देवहूति डी0 : हर्ष ए पॉलिटिकल स्टडी, पृ0 182.

198. देवहूति डी0 : पृ0 182.

199. अर्थशास्त्र : 4/85/10.

200. वही : 4/88/13

201. मनुस्मृति : 8/128

202. वही : 8/9-10

203. याज्ञ0 : 2.3

अपश्यता कार्यवशाद्व्यवहारान्नृपेणतु ।
सभ्यैःसह नियोक्तव्यो ब्राह्मणः सर्वधर्मवित् ॥

204. कात्यायनस्मृति : 63.

205. शुक्रनीति : 4.5.12

206. बृहस्पतिस्मृति : 6/5/6

207. थापर, रोमिला : अशोक तथा मौर्य साम्राज्य का पतन, दिल्ली, 1977, पृ0 105.

208. हर्षचरित : 2, पृ0 98.

अन्यस्मिन्दिवसे स्कन्धावारमुपमणिपुरमन्वजिरवति कृत-सन्निवेश -------

209. सिन्हा, बी0पी0: पूर्वोद्धरित, पृ0 38.

210. वाटर्स : ह्वेनसांग ट्रैवेल्स इन इण्डिया 1, पृ0 344.

211. हर्षचरित : 2, पृ0 98.

212. अर्थशास्त्र : 1.3.7

213. वही : 1.5.9

214. वही : 1.5.9

215. वही : 1.3.7

विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च ।
अमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युर्न तु मन्त्रिणा ॥

216. सिन्हा, जी०पी०: पूर्वोद्धृत, पृ० 45.

217. अर्थशास्त्र : 1.6

कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ॥

218. मनुस्मृति : 7.54

219. एपि. इण्डिका : 8 पृ. 42

220. अमरकोश : 2.8.4

मन्त्रीधीसचिवो मात्यः अन्ये कर्मसचिवास्ततः

221. सिन्हा, जी०पी०: पूर्वोद्धरित, पृ० 46.

222. कामन्दक नीतिसार : श्री पी. सिन्हा द्वारा उद्धृत, पो. गु. पॉ. पृ. 46

223. वही : पृ. 46-47

224. मनुस्मृति : 7/58

सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता ।
मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् ॥

225. या०0 : 2/3

सभ्यै सह नियोक्तव्यो ब्राह्मणः सर्वधर्मवित् ।

226. बृहस्पति स्मृति : 1.90

227. कात्यायन : 11

228. गुप्त-युग : दि एज ऑव इम्पीरियल गुप्ताज् ।अनु0। डॉ0 आनन्द कृष्ण, पृ0 31.

229. अर्थशास्त्र : 1.3.7

230. कामन्दक : V, 20-25

231. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 177-178, ।चन्द्रकला विद्या0 टीका।

232. विष्णुधर्मोत्तर पुराण : 2, अध्याय 6.61-66.

233. अर्थशास्त्र : 1.5.9

238. मनु0 : 7.54

239. राय, यू0एन0 : गुप्त सम्राट और उनका काल, पृ0 330.

240. वही : पृ0 330.

241. वही : पृ0 330.

242. अर्थशास्त्र : 1.10.14

243. मनु0 : 7.54
मौला शास्त्रविद: शूराल्लब्धलक्षान्कुलोद्भवान्
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ।

244. कामन्दक नीति सार : 7.54

245. सिन्हा, जी0पी0: पोस्ट गुप्ता पालिटी, पृ0 55.

246. अर्थशास्त्र : 1.10.14

247. वही : 1.3.6
सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते ।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च श्रृणुयान्मतम्॥

248. वही : 1.10.14

249.

250. मनु0 : 7.146
मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः

251. कात्यायनस्मृति : 56.

252. मालविकाग्निमित्र : अंक 5.

253. सिन्हा, जी0पी0: पोस्ट-गुप्ता पालिटी, पृ0 57.

254. कामन्दक नीति-सार : 8.61

255. सिन्हा, जी0पी0: पूर्वोद्धरित, पृ0 58.

256. कामन्दक-नीति-सार : 8.49

257. वही : 8.60

258. वही : 8.23-24.

258. हर्षचरित : 4, पृ0 205.
समज्या परिषद्गोष्ठीसभासमितिसंसदः-भाष्यकार ।

259. वही : 4, पृ0 205.
बहिस्विरचितविकटसभासत्र -------

261. हर्षचरित : 4, पृ0 250
गम्भीरनामा नृपतेः प्रणयी विद्वान्द्विजन्मा

262. वही : 4, पृ0 204
यस्य यासन्नेषु भृत्यरत्नेषु प्रतिबिम्बतेवतुल्यरूपा समलक्ष्यत लक्ष्मीः ।

263. वही : 5, पृ0 257
अरिमितबलानुयातं चिरतनैरमात्यैरनुरक्तैश्च महासामन्तैः कृत्वा ताभिसरमुत्तरापथं प्राहिणोत्"

264. देवहूति, डी0 : हर्ष, ए पोलिटिकल स्टडी, पृ0 173.

265. हर्षचरित : 6, पृ0 233-235.
7
पितुरपि मित्रं सेनापतिः ------- सिंहनादनामा ---
विज्ञापितवान् ।

266. वही : 6, पृ0 350.
स्वल्पं विज्ञाप्यमस्ति भर्तृभक्तेः । तदा कर्णयतु देवः"

267. वही : 6, पृ0 355.
देवो पि हर्ष सकलराज्यस्थितीश्चकार"

268. थपल्याल के0के0 : पूर्वोद्धरित, बांसखेड़ा एवं मधुबन अभि0 पृ0 177, 182.
दूतको त्र महाप्रमातारमहासामन्तश्रीस्कन्दगुप्तः

269. हर्षचरित : 6, पृ0 314.
अतिक्रमणीयवचैनस्यमत्य प्रधानसामन्तैर्विज्ञाप्यमानः कथं कथमप्यभुक्त------- ।"

270. वाटर्स : ह्वेनसांग ट्रेवेल्स ऑव इण्डिया, 1, पृ0 343.

271. मजूमदार आर०सी० :संपा०: : हिस्ट्री एण्ड कल्चर आँव इण्डियन पीपुल्स, 3, पृ० 349.

272. देवहूति डी० : पूर्वोद्धरित, पृ० 173.

273. अर्थशास्त्र : 5.94-95.6

274. वही : 5.94-95.6

275. कादम्बरी :पूर्व भाग: : पृ० 221.

276. वही : पृ०

277. वही : पृ० 179 :चन्द्रकला-विद्या०टीका:
शुकनासनाम्नि मन्त्रिणि सुहृदीव राज्यभार-मारोप्य सुस्थिता:--------- यौवनसुख-मनुबभूव ।

278. नागानन्द : अंक प्रथम, पृ० 18.
प्रधानामात्यसमधिष्ठितमपि न त्वया विना राज्यं सुस्थिरमिति ।

279. रत्नावली : अंक चतुर्थ, श्लोक 21.
किं नास्ति त्वयि सत्यमात्यवृषभे यस्मै करोमि स्पृहाम् ।

280. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली : 1, सं० 3, पृ० 529.

281. शिशुपालवध : 2.12

मम तावन्मतमिदं श्रूयतामङ्ग वामपि
ज्ञातसारो पि खल्वेक:संदिग्धे कार्यवस्तुनि ।

282. किरातार्जुनीयम : 1.5
------- सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्व-
मात्येषु च सर्वसंपदः ।

283. देवहूति, डी0 : हर्ष ए पोलिटिकल स्टडी, पृ0 173.

284. हर्षचरित : 8, पृ0 402.
कदाचित् राज्यवर्धनभुजबलोपार्जितमशेषं मालव-
राजसाधनमाधायागतं समीप स्वावासितं लेख-
हारकाद्भण्डिमश्रृणोत् ।

285. वही : 4, पृ0 231.
भण्डिनामानमनुचरं कुमारयोरर्पिवान् ।

286. देवहूति, डी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 173.

287. वाटर्स : ऑन ह्वेनसांग ट्रेवेल्स इण्डिया, 1,पृ0343.

288. अर्थशास्त्र : 1.10.14

289. कामन्दक नीतिसार : 11.44

290. वही : 4.16

291. हर्षचरित : 6, पृ0 352

292. थापर, रोमिला : अशोक तथा मौर्य साम्राज्य का पतन,
पृ0 110, दिल्ली 1977.

293. बनर्जी, राखालदास : द एज़ ऑव इम्पीरियल गुप्ताज़।गुप्त युग।
।अनु0। आनन्द कृष्ण, पृ0 57.

294. वही : पृ0 58.

295. वही : पृ0 63.

296. हर्षचरित : 6, पृ0 351.
प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिदेशं प्रतिद्वीपं प्रतिदिशं च भिन्ना वेशाश्चाकाराश्चाहाराश्च ---------- जनपदानाम् ।

297. थपल्याल केoकेo : पूर्वोद्धरित, बाँसखेड़ा एवं मधुबन अभि0 पृ0 177, 182, श्रावस्तीभुक्तौ कुण्डधानीवैषयिकसोमकुण्डकाग्रामे ।
पश्चिमपथकसम्बद्धमर्कटसागरे ।

29‌8.
298. वही : पृ0 177 एवं 182.

299. वही : पूर्वोद्धरित, पृ0 171.

300. चटर्जी, गौरीशंकर : हर्षवर्द्धन, पृ0 269.

301. थपल्याल, केoकेo : पूर्वोद्धरित, पृ0 97.

302. वही : पृ0 98.

303. वही : पृ0 98.

304. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव: प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0 291.

305. देवहूति, डी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 195.

306. हर्षचरित : 7, पृ0 377.
आग्रहारिकजाल्मैश्चपुर: सरजरन्महत्तरोत्ताम्भिताम्भः -------- ।

307. कावेल एण्ड टॉमस : हर्षचरित, परिशिष्ट बी. पृ0 274.

308. हर्षचरित : 7, पृ0 361.
तत्रस्थस्य चास्य ग्रामाक्षपटलिक: सकलकरणिपरिकर: ।

309. अग्रवाल, वासुदेव शरण : हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 140.

310. याजदानी, गुलाम [सं0]: दकन का प्राचीन इतिहास, पृ0 222.

311. वही पृ0 पृ0 222.

312. वही : पृ0 222.

313. वही : पृ0 222.

314. वही : पृ0 222.

315. वही : पृ0 222.

316. हर्षचरित : 2, पृ0 104
मेखलस्तु दूरादेव द्वारपाललोकेन------ ।

317. वही : 5, पृ0 266.
तत्र चातिनिःशब्दे गृहावग्रहणीग्राहिबहुवेत्रिणि ।

318. वही : 6, पृ0 309.
अनन्तरं च द्वारपालप्रमुक्तेन ------- ।

319. कादम्बरी [पूर्व भाग] : पृ0 189.
आगृहीत-कनक-वेत्रलतैः सितवारबाणैः सिताङ्ग-
रागैः सितकुसुमशेखरैः सिताङ्णीषैः सितवेष----
द्वारपालैरनुगितद्वारदेशम् ।

320. अग्रवाल, वासुदेवशरण : कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 102.

321. हर्षचरित : 4, पृ0 220.
विगतराजकुलस्थितिरथः कृतप्रतीहाराकृतिरपनीत-
वेत्रिवेत्रो ------- ।

हर्षचरित : 4, पृष्ठ 236
इत्युक्त्वा तयोराह्वानायप्रतिहारमादिदेश ।

वही : 4, पृ0 247.
प्रातरेव प्रतीहारैः ------- ।

वही : 7, पृ0 382.
अथ तत्र प्रतीहारः ।

वही : 7, पृ0 396.
प्रतीहारमण्डलकरप्रहारैर्निरस्यमानस्य ।

वही : 7, पृ0 402.
प्रतीहारनिवारणनिभृतनिःशब्दपरिजने ।

322. वही : 2, पृ0 106.
एष खलु महाप्रतीहाराणामनन्तरश्चक्षुष्यो----।

वही : 4, पृ0 247.
अथ महाप्रतीहारः प्रविश्य नृपसमीपम् -----।

वही : 7, पृ0 404.
महाप्रतीहारभवनस्नातेन ------- ।

323. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 202.
प्रतीहारमण्डलैरुपदिश्यमानमार्गः ।

324. वही : पृ0 197, 203.

325. अग्रवाल, वासुदेव शरण : हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 44.

326. हर्षचरित : 3, पृ0 172.

327. वही : 4, पृ0 222.

328. हर्षचरित : 5, पृ0 282.

329. कादम्बरी [पूर्व भाग] : पृ0 15.

330. वही : पृ0 16, 20, 29.

331. अर्थशास्त्र : 1.16.20

332. अमरकोश : 2.8.6
प्रतीहारो द्वारपालद्वा:स्थद्वास्थितदर्शका: ।

333. देवहूति, डी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 177.

334. वही : पृ0 177.

335. हर्षचरित : 2, पृ0 106.
एष खलु महाप्रतीहाराणामन्तरङ्गश्चक्षुष्यो देवस्य पारियात्रनामा दौवारिक: ।

336. वही : 7, पृ0 382.

337. वही : 7, पृ0 402.

338. कादम्बरी [पूर्व भाग] : पृ0 16, 20, 29.

339. हर्षचरित : 2, पृ0 126.
चामरग्राहिणी विग्रहिणीमिव ।

340. कादम्बरी [पूर्व भाग] : पृ0 28-29.
स्कन्धावसक्त-चामराणां चामरग्राहिणीनां -- ।

341. अर्थशास्त्र : 1.16.20

342. हर्षचरित : 2, पृ0 127, 129; 4, पृ0 223.

343. हर्षचरित : 4, पृ० 210.

344. वही : 7, पृ० 363.

345. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ० 32.
वारविलासिनी-कर-समुदितसुगन्धामलकलिप्त-
शिरसो राज्ञः समन्तात--गृहीतजलकलशाः ।

346. वही : पृ० 31, 219.
ताम्बूलकरंकवाहिनीमादिश्य ------- ।

347. हर्षचरित : 4, पृ० 247.
जामातुरन्तिकात्ताम्बूलदायकपारिजातकनामा-
सम्प्राप्तः ।

348. वही : 5, पृ० 287.
कञ्चुकिभिर्दुःखैश्चातिवृद्धैरनुगताम् ।

349. वही : पृ० 285.
तात् कञ्चुकिन् । किं मामाक्षणां प्रदक्षिणीकरोषि ।

350. वही : पृ० 300.

351. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ० 142, 203, 219, 221.

352. हर्षचरित : 2, पृ० 118.

353. अर्थशास्त्र : 9.137-39.2

354. हर्षचरित : 1, पृ० 43.

355. वही : 1, पृ० 47.
तद्धि नः कुलक्रमागतं राजकुलम् ।

356. हर्षचरित : 2, पृ0 89.
श्रीहर्षदेवस्य भ्राता कृष्णनाम्ना भवतामन्तिकं प्रज्ञाततमोदीर्घाध्वगः प्रहितो द्वारमध्यास्ते ।

357. वही : 5, पृ0 260.

358. वही : 7, पृ0 402.

359. वही : 5, पृ0 266.
कोणस्थिताह्वानचकिताचमनकवाहिनिः ।

360. वही : 6, पृ0 321.
वस्त्रकर्मान्तिकेन समुपस्थापितेषु वल्कलेषु ।

361. कादम्बरी (उत्तर भाग): पृ0 494.

362. वही (पूर्व भाग) : पृ0 149.

363. वही : पृ0 213.

364. वही (उत्तर भाग) : पृ0 562.

365. अग्रवाल, वासुदेव शरण : कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 79.

366. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 205.

367. हर्षचरित : 4, पृ0 211.

368. वही : 7, पृ0 360.

369. वही : 4, पृ0 218.

370. वही : 4, पृ0 250.

371. हर्षचरित : 7, पृ0 359.

372. पाण्डेय, भगवती प्रसाद : राजवंश मौखरि और पुष्यभूति, पृ0 139.

373. हर्षचरित : 7, पृ0 361.
तत्रस्थस्य चास्य ग्रामाक्षपटलिकःसकलः करणि-
परिकरः: ------- ।

374. अग्रवाल, वासुदेवशरण : हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 141.

375. अमरकोश : 2.8.5
प्रड्विवाकोऽक्षदर्शकः प्राड्विवाकाक्षदर्शकौ ।

376. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 141.

377. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, नालन्दा पाषाण अभि0 पं020,
पृ0 189, शीलचन्द्रपृथिकरणिक ----- ।

378. वही : पूर्वो0 मधुबन अभि0 पृ0 179.
----- महाक्षपटलाधिकरणाधिकृतसामन्त
महाराजेश्वरगुप्त ------- ।

वही : पूर्वो0 : बाँसखेड़ा अभिलेख, पृ0 184.
महाक्षपटलाधिकरणाधिकृतसामन्तमहाराजभानु--।

379. कार्पस इन्सि0इण्डिकेरम : जिल्द 3, पृ0 190, टिप्पणी 2.

380. अर्थशास्त्र : 2.23.7

381. अग्रवाल, वासुदेव शरण : डीड्स ऑव हर्ष, पृ0 169.

382. हर्षचरित : 1, पृ0 74,
लेखको गोविन्दकः----- पुस्तकृत्कुमारदत्तः--।

383. हर्षचरित : 1, पृ0 74.
पुस्तकृत्लेप्यकार: - भाष्यकार ।

384. सरकार, डी0सी0 : सलेक्ट इन्सिक्रिप्शन्स, अभि0सं0 34 और 36.

385. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 193.
अधिगतसकलग्रामनगरनामभिरेकभवनमिव जगदखिल-
मालोकयभिरालिखितसकलभुवनव्यापारतया धर्म-
राजनगर व्यतिकरमिव दर्शयदिभरधिकरणलेखकैरा-
लिख्यमानशासनसहस्रम् ------------------।

386. हर्षचरित : 5, पृ0 226.
चन्द्रशालिकालीनमूकमौलंलोके -------------।

वही : पृ0 267.
दुर्मनायमानमन्त्रिणि -------- ।

387. वही : 6, पृ0 308.
महाजनेन मौलेनाकाल आत्मानं वेष्टयमानमद्राक्षीत् ।

388. कावैल और थॉमस : हर्षचरित, पृ0 138.

389. हर्षचरित : 7, पृ0 361.
करोतु देवो दिवसग्रहणमद्यैवावन्ध्यशासन: शासनानाम्।

390. वही : 7, पृ0 362.
ततीरसहस्रसंमितसीम्नां ग्रामाणां शतमदाद्द्विजेभ्य:।

391. पाण्डेय, भगवती प्रसाद : राजवंश : मौखरि एवं पुष्यभूति, पृ0 143.

392. हर्षचरित : 7, पृ0 377.
आग्रहारिकजाल्मैर्मृग्यमाणस्यसंरक्षणमिति संगतिः।
भाष्यकार ।

393. हर्षचरित : पृ0 377.
मार्गग्रामनिर्गतैराग्रहारिकजाल्मैश्च पुर:
सरजरन्महत्तरोत्तम्भिताम्भ:कुम्भैरुपायनीकृत ।

394. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 166-167.

395. हर्षचरित : 7, पृ0 377.

396. कावेल एण्ड टॉमस : हर्षचरित, परिशिष्ट बी. पृ0 274.

397. अर्थशास्त्र : 3.66.10

398. हर्षचरित : 7, पृ0 375.
ध्व वारय बलीवर्दान् । वाहीक रक्षितं क्षेत्रमिदम्।

399. वही : पृ0 375.
वाहीक: काष्ठक:, परिपालक इत्यन्ये गोरक्षक इति
चान्ये - भाष्यकार ।

400. कावेल और थॉमस : हर्षचरित, पृ0 208.

401. हर्षचरित : 7, पृ0 378.

402. थापर, रोमिला : पूर्वोद्धरित, पृ0 117.

403. वही : पृ0 117.

404. कार्पस इन्सि0इण्डिकेरम : 3, अभि0सं0 1.
स्वभुजबल-विजितानेक-नरपति-विभव-प्रत्यर्पणा-
नित्यव्यापृतायुक्तपुरुषस्य ----- पंक्ति 26.

405. सरकार, डी0सी0 : सलेक्ट इन्सिक्रिप्शन्स, पृ0 360, टि0 9.

406. चटर्जी, गौरी शंकर : हर्षवर्द्धन, पृ0 268.

407. वैद्य, सी0वी0 : मिडिएवल इण्डिया, जिल्द 1, पृ0 149.

408. कावेल और थॉमस : हर्षचरित, पृ0 208.

409. हर्षचरित : 7, पृ0 378.

410. वही : पृ0 378.
चाटा धूर्ताः - भाष्य0 ।

411. चटर्जी, गौरी शंकर : पूर्वोद्धृत, पृ0 273.

412. फ्लीट : कार्पस इन्स्0इण्डि0 जिल्द 3, पृ0 98.

413. सिन्हा, जी0पी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 110.

414. याज्ञवल्क्यस्मृति : 2.336
चाटतस्करदुर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः
पीड्यमाना प्रजा रक्षेत्कायस्थैश्च विशेषतः ।

415. हर्षचरित : 5, पृ0 267.
कुलक्रमागतकुलपुत्रनिवहोह्यमानशुचि =----- ।

416. वही : 5, पृ0 287.
कुलपुत्रोच्छ्वसितैश्चमहत्तरैरधिष्ठिताम् ---- ।

417. वही : 5, पृ0 296.
कुलपुत्रेष्विव परित्यक्त कलत्रेषु ------- ।

418. वही : 5, पृ0 303.
पितृपितामहपरिग्रहागता श्चिरन्तनाः कुलपुत्राः-।

419. वही : 7, पृ0 399.
कुलपुत्रस्यापि कृतान्तस्य इव भीतभीतस्य समीपमुपसर्पतः ।

420. हर्षचरित : 7, पृ0 402.
अथ भण्डिरेकेनैव वाजिना कतिपयकुलपुत्रपरिवृतो ।

421. वही : 5, पृ0 279.
अपुण्यभवितवदमेव राजकुलं कुलपुत्रेण यादृशा वियुक्तम्।

422. फ्लीट : कार्पस इन्स्क्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द 3, अभि0सं0 55.

423. हर्षचरित : 7, पृ0 377.
कलचेटकैः छेद्यमानासं विभक्तकुलपुत्रलोकम् ।

424. वही : 6, पृ0 347.
तसंभ्रमैर्दण्डिभिरुत्सार्यमाणजनपदः ।

425. वही : 7, पृ0 377.
प्रकुपितप्रचण्डदण्डिवित्रासन -------- नरेन्द्रनिहित
दृष्टिभिरसतो पि -------- ।

426. वही : पृ0 379.
क्वचित्तलवर्तिविचित्रवेत्रवित्रास्यमानशाकिशिकरगत-
पिक्रोशद्विवादिब्राह्मणम् ।

427. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 29.
ससम्भ्रमसुत्सारितजनानां दण्डिनां ।

428. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 147.

429. पाथरी, भगवती प्रसाद : पूर्वोद्धरित, पृ0 147.

430. हर्षचरित : 2, पृ0 120,
दीर्घैर्दिगन्तपातिभिर्दृष्टिपातैर्लोकपालानां कृताकृता-
मिव प्रत्यवेक्षमाणम् ।

431. हर्षचरित : 3, पृ0 154
अत्र लोकनाथेन दिशां मुखेषु प्रकल्पिता लोकपाला:।

432. पान्धरी, भगवती प्रसाद : पूर्वोद्धरित, पृ0 147.

433. फ्लीट : कार्पस इन्सि0इण्डि0 जिल्द 3, अभि0 14.

434. हर्षचरित : 7, पृ0 391.
वीरस्य यस्या भवन्बाल्य एवं पादप्रणाम
प्रणयिनश्चूडामण्यो लोकपालानाम् ।

435. फ्लीट : पूर्वोद्धरित, जिल्द 3, अभि0 58.

436. हर्षचरित : 7, पृ0 406
अथालोच्य तत्सर्वमवनिपाल:स्वीकर्तुं यथाधिकार-
मादिशदध्यक्षान् ।

437. कावेल और थॉमस : हर्षचरित, पृ0 225.

438. अर्थशास्त्र : द्वितीय अधिकरण ।

439. हर्षचरित : 1, पृ0 62.
मनोरथा: सर्वगता: ----- रणरणक: संचालक: ।

440. वही : पृ0 62.
सर्वगताश्चारा अपि संस्थाइया ।"

441. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 179.
यस्य चानेक-चारपुरुष-सहस्र-स चार निचिते ।

442. अर्थशास्त्र : 1.8,12

443. मुकर्जी, आर0के0 : हर्ष, पृ0 94.

444. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 179 (चन्द्रकला-विद्यो0 टीका)

445. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 263.
अनेकद्वीपान्तरागतदूतशत-समाकुलं ।

446. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, 1, पृ0 154.

447. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, मधुवन ताम्रपत्राभिलेख, पृ0 182.
महाराजदौस्साध्साधनिकप्रमातारराजस्थानीय
कुमारामात्योपरिकविषयपतिभटचाटसेवकादीन्-
प्रतिवासिजनपदा ।

448. पांथरी, भगवती प्रसाद : पूर्वोद्धरित, पृ0 149.

449. सरकार, डी0सी0 : सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स, पृ0 351, पादटि0 5.

450. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 171.

451. एपिग्राफिया इण्डिका : 12, 141.

452. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, मधुबन ताम्रपत्र अभिलेख, पंक्ति 17.
महाप्रमातारमहासामन्तश्रीस्कन्दगुप्तः ।

453. मुकर्जी, आर0के0 : हर्ष, पृ0 96.

454. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 184.

455. मनुस्मृति : 7.63
दूतं ------------ सर्वशास्त्रविशारदम् ।
------ शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥

456. वही : 7.65
---- दूते सन्धिविपर्ययौ ।

457. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 94.

458. फ्लीट, जे0एफ0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 100, पादटिप्पणी 3.

459. हर्षचरित : 7, पृ0 382.
प्राग्ज्योतिषेश्वरेण कुमारेण प्रहितो हंसवेग नामा दूतो न्तरङ्गस्तोरणमध्यास्ते इति ।

460. कादम्बरी ‡पूर्व भाग‡ : पृ0 16.

461. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 172.

462. वही : पृ0 94-95.

463. वही : पृ0 178 और 183.

464. चटर्जी, गौरी शंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 269.

465. फ्लीट, जे0एफ0 : पूर्वोद्धरित, 3, 157, टिप्पणी 1.

466. त्रिपाठी, रमाशंकर : हिस्ट्री आँव कन्नौज, पृ0 138.

467. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 96.

468. लोक प्रकाश : प्रकरण 4.

469. स्टाइन : राजतरंगिणी 1, पृ0 316, टि0

470. सरकार, डी0सी0 : सेलेक्ट इन्सिक्रिप्शन्स, पृ0 273.

471. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 177 एवं 182.
कुमारामात्योपरिक ।

472. फ्लीट जे०एफ० : पूर्वोद्धरित, पृ० 16, पाद टिप्पणी 7.

473. थपल्याल, के०के० : पूर्वोद्धरित, देवबर्नार्क अभि० पृ० 172.
राजपुत्रराजामात्य ------- कुमारामात्यराज-
स्थानीयोपरिक ----- ।

474. पांधरी, भगवती प्रसाद : पूर्वोद्धरित, पृ० 151.

475. इण्डियन एन्टिक्वरी : जिल्द 15, पृ० 306.

476. हर्षचरित : 4, पृ० 231, 35, 36.
भण्डिनामानमनुचरं कुमारयोरर्पितवान् -------
कुमारगुप्तमाधवगुप्तनामानवस्माभिर्भवतोरनुचर-
त्वार्थमिमौ निर्दिष्टौ ।

477. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ० 114.

478. वही : पृ० 114.

479. शर्मा, राम शरण : भारतीय सामन्तवाद, पृ० 21.

480. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव: : पूर्वोद्धरित, पृ० 284.

481. वही : पृ० 285.

482. थपल्याल, के०के० : पूर्वोद्धरित, पृ० 97.

483. वही : पृ० 97, पादटिप्पणी 8.

484. त्रिपाठी, रमाशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ० 139.

485. घोषाल, यू०एन० : द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑव द इण्डियन पीपुल,
3, पृ० 350.

486. एपिग्राफिया इण्डिका : पृ0 115 और 142.

487. त्रिपाठी, रमाशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 139.

488. फ्लीट, जे0एफ0 : पूर्वोद्धरित, जिल्द 3, अभिलेख सं0 30, पृ0 144.

489. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 171-72.

490. वही : पृ0 177 और 182.

491. वही : पृ0 97.

492. वही : पृ0 97.

493. वही : पृ0 98.

494. वही : पृ0 98.

495. एपिग्राफिया इण्डिका : जिल्द 15, पृ0 113, टि0

496. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 98.

497. फ्लीट जे0एफ0 : पूर्वोद्धरित, जिल्द 3, पृ0 71,

498. बनर्जी, राखालदास : द एज आँव इम्पीरियल गुप्ताज, पृ0 86.

499. वही : पृ0 79.

500. त्रिपाठी, रमाशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 139.

501. सरकार, डी0सी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 291, पाद टिप्पणी 8.

502. पांडरी, वी0पी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 152.

503. बनर्जी, आर०डी० : पूर्वोद्धरित, पृ० 69.

504. अर्थशास्त्र : 9.135-36.।
स्वयं हि राजा शूरो बलवानरोग: कृतास्त्रो दण्डद्वितीयो पि शक्त:प्रभाववन्तं राजानं जेतुम्

505. वही : 8.127.।

506. कामन्दक-नीति-सार : 13.37

507. मनुस्मृति : 7.17।

508. कामन्दक नीतिसार : 9.11

509. बील, एस० : लाइफ ऑव ह्वेनसांग ।, पृ० 77-78.

510. वाटर्स : 1, पृ० 177.

511. सिन्हा, बी०पी० : पूर्वोद्धरित, पृ० 136.

512. बील, एस० : लाइफ ऑव ह्वेनसांग, 1, पृ० 82-83.

513. बासम, ए०एल० : वण्डर दैट वाज़ इण्डिया, पृ० 126.

514. शास्त्री, नीलकण्ठ : नन्द-मौर्य-युगीन भारत, पृ० 211.

515. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, 1, पृ० 343.

516. हर्षचरित : 7, पृ० 373.
स्वयमपि विनिर्गमिषये बलानां भूपाल: सर्वतो-विक्षिप्तचक्षुश्चाद्राक्षीदावासस्थानसकाशात् प्रति-ष्ठमानं स्कन्धावारम् ।

517. शर्मा, राम शरण : भारतीय सामन्तवाद, पृ० 30.

518. एपीग्राफिया इंडिका : भाग 6, पृ0 3.

519. अर्थशास्त्र : 9.137-39.2

520. वही : 9.137-39.2

521. हर्षचरित : 7, पृ0 367.

522. विष्णुधर्मोत्तर पुराण : 2, 177, 40.

523. हर्षचरित : 2/133
अष्टपदानां चतुरंगकल्पना ।

524. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 168.

525. अग्रवाल, वासुदेवशरण : पूर्वोद्धरित 1970, पृ0 90.

526. वाटर्स : ह्वेनसांग ट्रैवेल्स इन इण्डिया, 1, पृ0 171.

527. वही : 2, पृ0 138-39.

528. दशकुमारचरित : 1, पृ0 10.

529. प्रियदर्शिका : अंक 1, पृ0 13
करितुरगपदादि सैन्येन महान्तमप्यध्वानं दिवस-
त्रयेणोल्लङ्घ्य---विन्ध्यकेतोरुपरि निपतिता:क्रमः ॥

530. रत्नावली : अंक 4, पृ0 189.

531. गोयल, श्रीराम : हर्ष शीलादित्य, पृ0 222.

532. देवहूति, डी0 : हर्ष एक पॉलिटिकल स्टडी, पृ0 186.

533. हर्ष0 : 2, पृ0 100.
कपिलकपोलकपलै: क्रमेलककुलै: कपिलायमानम् ।

534. हर्ष0 :
दिप्रपातिनो दीर्घवगगानतिजविनचरपोऽद्रपालान्
पाहिणोत् ।

535. वही : 7, पृ0 364.

536. वही : 7, पृ0 364.

537. वही : 7पृ0 366.

538. वही : 7, पृ0 366.

539. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 177 एवं 182.

540. देवहूति, डी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 187.

541. हर्ष0 : 5, पृ0 130.

542. वही : 2, पृ0 130.

543. वही : 2, पृ0 93
दानवत्सु कर्मसु साधनश्रद्धा, नकरिकीटेषु ।

544. अग्रवाल, वासुदेवशरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 39.

545. अर्थशास्त्र : 2.48.32

546. शास्त्री, नीलकण्ठ : नन्द-मौर्य-युगीन भारत ।अनु0 मंगलनाथ सिंह। वाराणसी-1969, पृ0 171.

547. रघुवंश : 4.62

548. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 39.

549. हर्षचरित : पृ0 116.
कृतानेकबाणविवरसहस्रं लोकप्राकारम् ।

550. वही : पृ0 116.
उच्चकुम्भकूटाट्टलकविकटम् संवारिगिरिदुर्गं राज्यस्य।

551. शिशुपालवध : 18.9.24.39

552. हर्षचरित : 2, पृ0 115.
वरुणं हस्तपाशाकुण्ठितेषु, यमवागुरा मरातिसंवेष्टनेषु।

553. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 40.

554. हर्षचरित : 2, पृ0 115.
शृङ्काशनिपातमवस्कन्देषु, मकरं वाहिनीक्षोभेषु ।

555. कादम्बरी [पूर्व भाग] : पृ0 245.

556. वही : 7, पृ0 387.

557. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 143, पा0टि0 5.

558. अमरकोश : 3.3.18
अलिबाणौ शिलीमुखौ ।

559. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1970, पृ0 143, पा0टि0 5.

560. अर्थशास्त्र : 10.153-54.4

561. कामन्दक : 10.1-3.

562. अर्थशास्त्र : 2.2

563. अर्थशास्त्र : पूर्वोद्धरित 19.11

564. विष्णुधर्मोत्तर पुराण : 2.177.48

565. हर्षचरित : 7 पृ0 344

566. वही : 2, पृ0 99.

567. वही : 4, पृ0 34.

568. वही : पृ0 99.

569. वही : पृ0 99.

570. वही : पृ0 99.

571. वही : 6 पृ0 350
शीघ्रं प्रवेशयन्तां प्रचार निर्गतानि गजसाधनानि ।

572. वही : 5, पृ0 350.

573. वही : 6, पृ0 348.

574. वही : पृ0 348.

575. अर्थशास्त्र : 2.48.32

576. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 132.

577. हर्षचरित : 2, पृ0 98-99.

578. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1958, पृ0 39.

579. हर्षचरित : 2, पृ0 115.

580. वही : 2, पृ0 111.
प्रतिगजदानपवनादानदूरोत्क्षिप्तेनानेकसमर विजय-
गणनालेखाभिरिव ।

581. वही : पृ0 41.

582. वही : 2, पृ0 115.

583. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 41.

584. स्वप्नवासवदत्तम् : अंक 1 श्लोक 1, पृ0 41.

585. कादम्बरी।पूर्व भाग। : पृ0 21.

586. अर्थशास्त्र : 2.48.32

587. हर्षचरित : 5, पृ0 348.

588. वही : 6, पृ0 347.

589. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, 1964, पृ0 132.

590. हर्षचरित : 6, पृ0 347.

591. वही : 6, पृ0 347.

592. अर्थशास्त्र : 2.48.32

593. हर्षचरित : 6, पृ0 347.

595. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 132.

596. हर्षचरित : 6, पृ0 347.

597. कादम्बरी : पृ0 191.

598. वही : पृ0 196.

599. अर्थशास्त्र : 2.32
चिकित्सानीकस्थारोहकाधोरण ------ ।

600. हर्षचरित : 2, पृ0 114.

601. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 133.

602. कादम्बरी : पृ0 508
आरोहकचौकिता परिणी मारुह्य ।

603. वही : पृ0 133.

604. अर्थशास्त्र : 2.48.32

605. हर्षचरित : 5, पृ 300

606. वही : 6, पृ0 347.

607. अमरकोश : 2.6.115

608. हर्षचरित : 2, पृ0 111, 363

609. वही : पृ0 111, लेशिकैर्यातिकै:

610. वही : 6, पृ0 347.

611. हर्षचरित : 6, पृ0 348.

612. वही : 6, पृ0 364.

613. वही : पृ0 364
"नालीवाहिक: करिण्यां घासग्रहणनियुक्तो हस्तिपको मेण्ठाख्य: ।"

614. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 145.

615. वही : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 145, पा0टि0 1.

616. हर्षचरित : 2, पृ0 113.

617. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 40.

618. हर्षचरित : पृ0 112.

619. वही : पृ. 112

620. शास्त्री नीलकण्ठ : नन्द-मौर्य-युगीन भारत (अनु0 मंगलनाथ सिंह) पृ0 171.

621. अर्थशास्त्र : 2.46.30

622. रघुवंश : 4.62

623. वही : 4.70

624. वही : 5.73

625. हर्षचरित : 2, पृ0 106.

626. हर्षचरित : 7, पृ0 367.

627. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 149.

628. अर्थशास्त्र : 2.46.30

629. कादम्बरी : पृ0 173.

630. अर्थशास्त्र : 2.46.30

631. हर्षचरित : 2, पृ0 107

632. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 42, पा0टि0 6.

633. वही : पृ0 42, पा0टि0 7.

634. हर्षचरित : 2, पृ0 107,
"तारका: कदम्बककल्पानेकबिन्दुकल्माषितत्वच:"

635. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 174.

636. हर्षचरित : 2, पृ0 107.

637. कादम्बरी।पूर्व भाग। : पृ0 173-174.

638. हर्षचरित : 2, पृ0 107.

639. वही : 7, पृ0 365.

640. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0

641. अर्थशास्त्र : 2.46.30

642. अर्थशास्त्र : 2.46.30

643. वही : 2.46.30

644. हर्षचरित : 6, पृ0 324.

645. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, पृ0 343.

646. हर्षचरित : 7, पृ0 367, कञ्चुकटा वृद्धा:

647. अग्रवाल वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 149.

648. हर्षचरित : 1, पृ0 43.

649. वही : पृ0 44.

650. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 23.

651. हर्षचरित : 1, पृ0 44, "साधुना विनीतेन"

652. वही : पृ0 44.

653. अमरकोश : 2.7.3
"महाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधव:"

654. वही : 3.1.52 एवं 3.3.102
"सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्"

655. हर्षचरित : 1, पृ0 141
प्रतिक्षणदशनविमुक्तकण्ठकणायितकरकलीने

656. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 ~~xxxx~~ 173.
उभयत: कलीनककटकावलग्नाभ्यां पदे पदे ।

657. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 22.

658. महाभारत : 1.199.15
शतं रथानां वरहेममालिनां ।
चतुर्भुजां हेमखलीन शालिनाम् ॥

659. अमरकोश : 2.8.49
कपिका तु खलीनो स्त्री ।

660. हलायुध : पृ0 263-64.

661. पाण्डेय, जे0एन0 : पुरातत्वविमर्श, इलाहाबाद 1988, पृ0 476.

662. हर्षचरित : 1, पृ0 41

663. वही : पृ0 41.

664. वही : पृ0 41.

665. वही : पृ0 41.

666. वही : 7, पृ0 365.
स्थानपालपर्याणित म्यमानलवणकलायी-
किंकिणीनालीसनाथसंकलिततलसाके ।

267. वही : पृ0 365.
लवणकलायी मृगाकृतिरश्वानां
दारुमयी क्रियते ।

668. अल्तेकर : द क्वायनेज ऑफ दी गुप्ता एम्पायर, पृ0 173-83

669. हर्षचरित : 7, पृ0 365.
किङ्किण्यः सूक्ष्मघण्टाः ।

670. हर्षचरित : 7, पृ0 365.
"प्रधानार्थ वैणवी नाडिरुच्यते"

671. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 147.

672. हर्षचरित : 7, पृ0 365.

673. वही : 2, पृ0 108.

674. वही : 2, पृ0 108.

675. वही : 2, पृ0 108.

676. वही : 7, पृ0 367.

677. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 23, पा0टि0 1.

678. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 174-175.

679. हर्षचरित : 7, पृ0 363.

680. वही : 7, पृ0

681. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, 1964, पृ0 147, पा0टि0 3.

682. अर्थशास्त्र : 2.46.30

683. हर्षचरित : 7, पृ0 366.
"हयारोहाहूयमानलम्बितयुनि"

684. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 214.

685. हर्षचरित : 2, पृ0 109

686. अर्थशास्त्र : 2.46.30

687. वही : 2.46.30

688. हर्षचरित : 7, पृ0 365.

689. वही : पृ0 365.

690. वही : पृ0 365.

691. वही : पृ0 365.

692. वही : पृ0 365.

693. वही : 2, पृ0

694. कादम्बरी : पृ0 192-93.

695. हर्षचरित : 1, पृ0 36-37.

696. अग्रवाल, वासुदेव शरण : टेराकोटा गिरीन्स आॅव अहिच्छत्रा एन्शयेण्ट इण्डिया, अंक 4, पृ0 149, चित्र सं0 188.

697. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, जिल्द 1, पृ0 171.

698. हर्षचरित : 7, पृ0 365.

699. वही : 7, पृ0 368.

700. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित पृ0

701. हर्षचरित : 7, पृ0 368.

702. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 159.

703. हर्षचरित : 7, पृ0 378.

704. वही : 6, पृ0 354.

705. वही : 6, पृ0 356.

706. वही : 6, पृ0 357.

707. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 143.

708. हर्षचरित : 7, पृ0 363.

709. वही : 7, पृ0 363.

710. वही : 7, पृ0 363.

711. वही : 7, पृ0 363.

712. वही : 7, पृ0 363.

713. वही : 7, पृ0 363-64.

714. वही : 7, पृ0 363-64.

715. वही : 7, पृ0 364.

716. वही : 7, पृ0 364.

717. वही : 7, पृ0 366

718. वही : 7, पृ0 366.

719. हर्षचरित : 7, पृ0 366.

720. वही : 7, पृ0 377.

721. वही : 7, पृ0 366

722. वही : 7, पृ0 375-76

723. वही : 7, पृ0 375-76.

724. वही : 7, पृ0 359.

725. वही : 7, पृ0 359.

726. वही : 7, पृ0 360.

727. बृहत्संहिता : 46-47

728. हर्षचरित : 7, पृ0 360.

729. वही : 7, पृ0 360.

730. वही : 7, पृ0 360.

731. वही : 7, पृ0 360.

732. शास्त्री नीलकण्ठ : नन्द-मौर्य-युगीन भारत, पृ0 259.

733. हर्षचरित : 7, पृ0 360.

734. वही : पृ0 360.

735. वही : पृ0 360.

737. कादम्बरी : पृ0 452.

738. वही : पृ0 530.
दशपुरं यावत्परागतः स्कन्धावारः ।

739. वही : पृ0 549.

740. थापल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0

741. वार्ट्स : पूर्वोद्धरित, जिल्द 1, पृ0 348.
जिल्द 2, पृ0 183.

742. हर्षचरित : 7, पृ0 361.

743. कादम्बरी : पृ0 254.

744. रघुवंश : 5.41, 5.63, 13.79

745. वार्ट्स : पूर्वोद्धरित, जिल्द 2, पृ0 183.

746. शर्मा, रामशरण : भारतीय सामन्तवाद, पृ0 299.

747. हर्षचरित : 7, पृ0 364.

748. वही : 7, पृ0 366.

849. कादम्बरी।उत्तर भाग। : पृ0 550.

750. हर्षचरित : 1, पृ0 37, 7, पृष्ठ 352.

751. अर्थशास्त्र : 2.18

752. हर्षचरित : 6, पृ0 352.

753. हर्षचरित : 1, पृ0 37; 3, पृ0 192; 8, पृ0 415.

754. कादम्बरी : पृ0 10, 11, 168.

755. हर्षचरित : 8, पृ0 415
"कृमाण्या करा लितविशंकटकटिप्रदेशाम्"

756. वही : 3, पृ0 182+83.

757. वही : 3, पृ0 187; 6, पृ0 353.

758. अर्थशास्त्र : 2. 18

759. हर्षचरित : 7, पृ0 367.

760. फ्लीट : कार्पस इन्सि0 इण्डिकेरम्, जिल्द 3, पृ0 12.

761. अर्थशास्त्र : 2. 34. 18

762. हर्षचरित : 1, पृ0 37.

763. वही : 6, पृ0 355.

764. अर्थशास्त्र : 2. 18

765. हर्षचरित : 8, पृ0 415

766. वही : 6, पृ0 341; 7, पृ0 359; 8, पृ0 415.

767. वही : 6, पृ0 341, "चापवनाटनिटांकारनाद"

768. वही : 7, पृ0 410, "कार्मुककर्मण्य"

769. हर्षचरित : 8, पृ0 414 "अनवरतकठिनकोदण्ड"

770. अर्थशास्त्र : 2.18

771. हर्षचरित : 7, पृ0 367.

772. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, 1964, पृ0 150.

773. अमरकोश : 1/1/19

774. हलायुधकोश : पृ0

775. मेदिनी कोश : पृ0 6, श्लोक 50.

776. अनेकार्थसंग्रह कोश : पृ0 23, श्लोक 24.

777. रघुवंश : 4.62

778. वही : 4.62 भाष्य

779. हर्षचरित : 7, पृ0 367.

780. अर्थशास्त्र : 2.47.31

781. हर्षचरित : 7, पृ0 367.

782. वही : 8, पृ0 415.

783. वही : 8, पृ0 415.

784. अर्थशास्त्र : 2.18

785. हर्षचरित : 8, पृ0 416 "विषमविषदूषितपदनेन।"

786. हर्षचरित : 6, पृ0 341.

787. अर्थशास्त्र : 2.18

788. हर्षचरित : 8, पृ0 415

789. वही : 1, पृ0 37.

790. वही : 8, पृ0 414.

791. वही : 3, पृ0 187; 7, पृ0 368.

792. वही : पृ0 187

793. वही : 7पृ0 386.

794. मंजुश्री मूलकल्प : भाग 2, पृ0 322.
"कमरंगारव्य द्वीपेषु नाडिकेरसमुद्भवे ।
द्वीपे वारुषके चैव नग्नबलिसमुद्भवे ॥"

795. अग्रवाल, वासुदेव शरण : अहिच्छत्रा के खिलौने ऐंशेन्ट इण्डिया अंक 4, पृ0 134, चित्र 123.

796. हर्षचरित : 1, पृ0 43

797. वही : 6, पृ0 344.

798. वही : 7, पृ0 368.

799. वही : 1, पृ0 36; 7, पृ0 368.

800. वही : 7, पृ0 368.
"कंचुकैश्चाप चितचीनचोलकैश्च"

801. अर्थशास्त्र : 2.34.18

802. हर्षचरित : 7, पृ0 368.

803. वही : पृ0 368.

804. अर्थशास्त्र : 2.34.18

805. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 10.

806. वही : पृ0 168.

807. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, 1, पृ0 171.

808. हर्षचरित : 6, पृ0 333-34.

809. वही : 4, पृ0 206.

810. कादम्बरी : पृ0 651.

811. हर्षचरित : 2, पृ0 130.

812. वही : 6, पृ0 324.

813. वही : 7, पृ0 404.

814. वही : 6, पृ0 329.

815. कादम्बरी ।उत्तर भाग। : पृ0 651

816. वही : पृ0 651

817. हर्षचरित : 6, पृ0 343-44.

818. बनर्जी, राखालदास : द एज़ आँव इम्पीरियल गुप्ताज़, ।अनु० डाँ० आनन्द कृष्ण।पृ० 58.

819. हर्षचरित : 6, पृ० 343-44.

820. बनर्जी, राखालदास : पूर्वोद्धरित, पृ० 207.

821. हर्षचरित : 6, पृ० 347.

822. धमल्पाल, के०के० : पूर्वोद्धरित, पृ०

823. हर्षचरित : 6, पृ०

824. वही : 2, पृ० 99; 6, पृ० 347.

825. वही : 7, पृ० 363.

826. एपि० इंडिका : जिल्द 10, पृ० 71-72.

827. कादम्बरी : पृ० 651.

828. वही : पृ० 625

829. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, 1964, पृ० 143.

830. टॉमस एवं कॉवेल : पृ० 215

831. हर्षचरित : 7, पृ० 366.

832. वही : 7, पृ० 378.

833. शास्त्री, नीलकण्ठ : नन्द-मौर्ययुगीन भारत, पृ० 121.

834. अर्थशास्त्र : 1.19

835. मनुस्मृति : 8.1

836. गौतमस्मृति : 10.19-25.

837. मनु० : 8.9-10.

838. नारद० : 3.4

839. बृहस्पति० : 1,2

840. मनु० : 8.4-7.

841. बृहस्पति० : 2-5.

842. मनु० : 8.18

843. याज्ञ० : 2.4

844. कात्या० : 72-78,

845. दशकुमारचरित : 8, पृ० 420.

846. प्रोसीडिंग्स आँव इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1959, पृ० 133.

847. वही : 1959, पृ० 130.

848. मृच्छकटिक : 9, पृ० 308.

849. वही : पृ० 310.

850. सिन्हा, बी०पी० : पूर्वोद्धरित, पृ०134.

851. मृच्छकटिक : अंक 9, पृ० 346.

852. मृच्छकटिक : पृ0 306.

853. दशकुमारचरित : अष्टम उच्छ्वास, पृ0 420.

854. मीनाक्षी सी0 : एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड सोशल लाइफ अण्डर द पल्लवाज, मद्रास, 1938.

855. कादम्बरी ‡पूर्व भाग‡ : पृ0 28.

856. दशकुमारचरित : अष्टम उच्छ्वास, पृ0 422.

857. नारद0 : 1, 147-50.

858. बृहस्पति0 : 19-26.27

859. नारद0 : 1,178,181-82.

860. बृहस्पति : 7, 28.

861. याज्ञ0 : 2.69.

862. नारद0 : 1, 54.

863. कात्यायन : 341

864. मनु0 : 8.73

865. बृहस्पति : 7,35.

866. कात्यायन : 408.

867. मनु0 : 8.60.

868. नारद : 1,153.

869. वृहस्पति0 : 7.16-17.

870. मनु0 : 8.77

871. वृहस्पति0 : 7.18

872. हर्षचरित : 2, पृ0 133.

873. वही : 3, पृ0 147.

874. वही : 2, पृ0 121.

875. वही : 2, पृ0 136.

876. कादम्बरी : पृ0 10-11.

877. वाटर्स : पूर्वोद्धृत जिल्द 1, पृ0 171-72.

878. लाइफ आॅव ह्वेनसांग : पृ0 86-89.

879. वही : पृ0 73-79.

880. शर्मा, राम शरण : शूद्रों का इतिहास, पृ0 251.

881. कात्यायान0 : 485.

882. वृहस्पति0 : 27.11-12.

883. कात्यायन0 : 483.

884. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, जिल्द 1, पृ0 172.

885. मनु0 : 8.114-115.

886. याज्ञ0 : 2.95

887. नारद0 : 4.252

888. बृहस्पति0 : 10.4

889. मृच्छकटिक : 9.43

890. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 175 ।चन्द्र कला विद्यो0 टीका।

891. घमल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0

892. देवहूति, डी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 185.

893. त्रिपाठी, आर0एस0 : हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ0 140.

894. एपि0 इण्डिका : 1, 118.

895. देवहूति, डी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 185.

896. एपि0 इण्डिका : 17, पृ0 321.

897. घमल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 102-03.

898. वही : पृ0 103.

899. सिन्हा, बी0पी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 191.

900. सरकार, डी0सी0 : इण्डियन एपिग्राफिकल ग्लोसरी, पृ0 82.

901. हर्षचरित : 7, पृ0 379.

902. घमल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 103.

903. एपि0 इण्डिका : 30, संख्या 40, पृ0 241.

904. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 103.

905. वही : पृ0 103.

-------::0::-------

द्वितीय-अध्याय

सामन्त व्यवस्था

सामन्त-व्यवस्था

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में सामन्त को स्वतन्त्र शासक के रूप में उल्लिखित किया है ।[1] मनु के अनुसार ग्राम की सीमा निर्णय में सामन्तों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी । साक्षियों के अभाव में समीपस्थ चार ग्राम सावधान होकर राजा के सामने सीमा का निर्णय करें ।[2] सामन्तों के सीमा विवाद निर्णय के विषय में याज्ञवल्क्य भी निर्दिष्ट करते हैं ।[3] गुप्त-काल में कालिदास ने सामन्त शब्द का प्रयोग पड़ोसी राजा के लिए किया है ।[4] रघुवंश में सामन्तों को सैनिक अभियान के साथ दिखाया गया है ।[5] समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति में अधीनस्थ राजाओं से सर्वकरदानाज्ञाकरण, प्रणामागमन, आत्मनिवेदन, कन्योपायनदान आदि करना अपेक्षित था किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि अधीनस्थ राजा सामन्त होते थे या नहीं क्योंकि प्रशस्ति में कहीं भी ऐसे राजाओं के लिए सामन्त शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है ।[6] प्रयाग प्रशस्ति ही नहीं अपितु गुप्त-काल के किसी भी अभिलेखीय साक्ष्य में सामन्त शब्द का प्रयोग अधीनस्थ राजा के लिए नहीं [illegible] किया गया है ।[7] मौखरि वंश के द्वितीय शासक शार्दूल वर्मा को बिहार के गया जिले में स्थित बराबर [illegible] पहाड़ियों की गुफाओं से प्राप्त अभिलेखों में "सामन्त-चूड़ामणि" की उपाधि प्रदान की गयी है ।[8] यशोधर्मन (ई0 सन् 525-535) के मन्दसौर पाषाण स्तम्भ लेख में सामन्त शब्द का प्रयोग किया गया है जिसमें वह दावा करता है कि सम्पूर्ण उत्तर भारत के सामन्त उसके अधीन हैं ।[9]

दक्षिण-भारत के पल्लव शासक शान्तिवर्मन 455-470 ईसवी सन् के काल के एक पल्लव अभिलेख से ज्ञात होता है कि सामन्त शब्द का प्रयोग अधीनस्थ शासक के लिए किया जाता था क्योंकि इसमें "सामन्तचूड़ामणय:" पद का प्रयोग मिलता है ।[10] पाँचवी शताब्दी के अन्तिम चरण में दक्षिण एवं पश्चिम भारत के अनेक दानपत्रों में सामन्त शब्द अधीनस्थ शासक के अर्थ में प्रयोग किया गया है ।[11] छठीं शताब्दी ईसवी में वलभी के शासक सामन्त-महाराज और महासामन्त की उपाधि

धारण करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि सामन्त शब्द का प्रयोग बाद में अधीनस्थ राजाओं के अलावा राज्याधिकारियों के लिए भी होने लगा।[12]

उल्लेखनीय है कि ईसवी सन् की पाँचवी शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक के काल को यूरोप के इतिहास में सामन्त व्यवस्था का काल कहा जाता है। सामन्त-व्यवस्था की सही व्याख्या के विषय में विद्वान् एक मत नहीं हैं। इसका कारण क्षेत्रीय विभिन्नता एवं संस्थाओं का विषम अस्तित्व माना जा सकता है। कतिपय विद्वानों का मत है कि सामन्तवाद भूस्वामित्व पर आधारित समाज और सरकार का एक रूप है।[13] मुख्य रूप से कहा जा सकता है कि सामन्तवाद का आश्रित कृषकों पर अभिजात तंत्र द्वारा सत्ता और अधिकारों का प्रयोग सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामाजिक पहलू है जो प्रमुखतः अवरुद्ध कृषि अर्थव्यवस्था में उन्नति करता है।[14] कूलबर्न के अनुसार सामन्तवाद सामाजिक और आर्थिक वातावरण को रूपान्तरित करता है और उससे रूपान्तरित भी होता है किन्तु यह आर्थिक या सामाजिक प्रणाली नहीं है।[15] उनके अनुसार जिस समाज में सामन्तवाद का उद्भव हुआ उनमें सामान्यतः कृषि की भूमिका निर्णायक रही है और इनमें आर्थिक स्वार्थों की स्थानीयता निर्विवाद रूप से दिखाई पड़ती है।[16] मार्क ब्लाक का मत है कि सामन्तवाद ने राजसत्ता को निर्बल करके सामाजिक ढाँचे को बदला और मौद्रिक अर्थव्यवस्था को सीमित करके वेतनभोगी वर्ग को अस्तित्व हीन कर दिया।[17] यूरोपीय सामन्तवाद में कभी प्रभु और सामन्त के अनुबन्धात्मक निहित कानूनी पक्ष पर जोर दिया जाता और कभी आर्थिक पक्ष अर्थात् कम्मी प्रथा के प्रचलन पर। इससे ऐसा लगता है कि राजनीतिक और प्रशासनिक ढाँचा भूमि अनुदानों के आधार पर गठित था और असली ढाँचा कृषि दासत्व के आधार पर।[18] भारतीय सामन्तवाद भी कुछ अंशों तक इन्हीं का अनुकरण था जिसमें किसान भूमि से बंधे होते थे और भूमि के मालिक वे जमींदार होते थे जो राजा और किसानों के मध्य कड़ी का काम करते थे। किसान जमीन जोतने के बदले सामन्तों को उपज का एक बड़ा भाग

लगान के रूप में देते थे जिससे आत्म-निर्भर अर्थव्यवस्था की शुरूआत हुई। इसके अतिरिक्त बेगार भी करने को बाध्य होते थे।[19]

सामन्तवाद का उदय

सामन्त-व्यवस्था के उदय एवं विकास के सन्दर्भ में अनेक परिस्थितियों का योगदान रहा। सर्वप्रथम इनमें विदेशी आक्रमणों और केन्द्रीय सत्ता की दुर्बलता को कारण माना जा सकता है। खानाबदोश जातियों के निरन्तर आक्रमण से गुप्त साम्राज्य की सत्ता कमजोर हुई जिसके कारण उत्तर भारत में अनेक राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन हुये।[20] हूण आक्रमण ने गुप्त साम्राज्य को झकझोर दिया। हूण आक्रमण को भारत में सामन्तवाद के उदय का एक कारण माना जा सकता है किन्तु प्रोफेसर शर्मा के अनुसार यह तो स्पष्ट है कि यूरोप की तरह यहाँ सामन्तीकरण में विदेशी आक्रमणों का कोई विशेष हाथ नहीं था।

साम्राज्य के पतन के समय अनेक महत्वाकांक्षी प्रान्तीय शासकों तथा सेनानायकों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया।[21] छठीं शताब्दी ईसवी में वलभी के द्रोण सिंह ने जिसके पूर्वज भट्टारक (लगभग 460 ईसवी) गुप्तों के अधीन गुजरात के सेनापति मात्र थे, स्वयं को श्रीमहाराज की उपाधि से विभूषित किया।[22] इस प्रकार छठी शताब्दी ईसवी के अन्त तक हूणों एवं गुर्जरों के आक्रमण के फलस्वरूप परिस्थितियाँ और नाजुक होती गयी।[23] इस प्रकार गुप्त साम्राज्य जिसमें सामन्तवादी तत्वों का समावेश था, के पतन के दीर्घकालिक होने से राजनैतिक उलझन एवं अव्यवस्था ने आर्थिक ढाँचे को कमजोर कर दिया जिसने सामन्तीय ढाँचे के विकास के लिए पृष्ठभूमि तैयार किया। छोटे-छोटे राज्यों का उदय और प्रशासनिक अधिकारियों का भूमि से जुड़ जाना सामन्तवाद के उदय का प्रमुख कारण बना।[24] ऐसा प्रतीत होता है कि राजाओं की प्राचीन काल की दिग्विजय की परम्परा भी सामन्तवाद के उदय में सहायक सिद्ध हुई। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि दक्षिण विजय अभियान में उसने राजाओं के साथ मोक्षानुग्रह की नीति का आश्रय लिया जिसमें नरेशों को जीत लेने के पश्चात् कृपापूर्वक छोड़ दिया जाता

था ।[25] इस प्रकार की नीति से विजित नरेश विजयी नरेश के प्रति विशेष सम्मान प्रदर्शित करते थे और समय-समय पर आदेशों का पालन करते रहे होंगे जिससे सामन्त व्यवस्था की नींव मजबूत हुई । कालिदास ने रघुवंश में इस प्रकार की नीति को धर्मविजय कहा है । उनके अनुसार राजा रघु ने महेन्द्र पर्वत के राजा को जीतकर बन्दी बनाया किन्तु बाद में कृपापूर्वक मुक्त कर दिया ।[26] उल्लेखनीय है कि बाण ने कादम्बरी में उक्त नीति की ओर इंगित किया है । चन्द्रापीड ने अपने दिग्विजय अभियान में स्थान-स्थान पर राजपुत्रों का अभिषेक करता हुआ सभी दिशाओं को जीत लिया ।[27]

सामन्तवाद के उदय में आर्थिक दबाव का महत्वपूर्ण योगदान रहा । गुप्त साम्राज्य तक विभिन्न विदेशी आक्रमणों के कारण जो राजनैतिक और सामाजिक संभ्रम एवं अव्यवस्था की स्थिति पैदा हुई उससे देश का आर्थिक ढाँचा अस्त-व्यस्त हो ग्र गया । छठीं,सातवीं और आठवीं शताब्दियों में आर्थिक ह्रास के स्पष्ट प्रमाण प्राप्त हैं ।[28] ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि सातवीं शताब्दी ईसवी में नगरों का पतन हो रहा था ।[29] ईसवी सन् 600 से 1000 के इस मध्यवर्तीकाल में मुद्राओं का अभाव दृष्टिगोचर होता है ।

अहिच्छत्रा एवं कौशाम्बी पुरास्थलों के उत्खनन से भी गुप्तोत्तर काल की आर्थिक विपन्नता का दृश्य सामने आता है क्योंकि उत्खनन में मुद्राओं का पर्याप्त अभाव है । इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मुद्रा के अभाव के कारण व्यापार वाणिज्य के साथ-साथ नगरीय जीवन में ह्रास हुआ होगा तथा अधिकांश लोगों ने कृषि को अपना लिया । इन परिस्थितियों के कारण अर्थ-व्यवस्था का स्थानीयकरण हुआ जो बाद में गाँवों की आत्मनिर्भर आर्थिक इकाइयों के रूप में उभरी । इस प्रकार एक ओर भूमि सम्पन्न अभिजात वर्ग और कृषकों के मध्य तथा दूसरी ओर सत्ता सम्पन्न कुलीन वर्ग के मध्य सामन्तीय सम्बन्धों के सूत्रपात के लिए अनुकूल वातावरण बना ।[30] उल्लेखनीय है कि मध्यकालीन यूरोप में सामन्तवाद

स्वतन्त्र आत्मनिर्भर आर्थिक इकाइयों के उदय के कारण पनपा ।[31] विचारणीय है कि ऐसी अर्थ-व्यवस्था में जब मुद्रा का अभाव हो, वाणिज्य-व्यापार ह्रास की ओर उन्मुख हो, तब शासक के पास अधिकारियों, सैनिकों आदि को भूमि-अनुदान के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था । इस प्रकार सामन्त-व्यवस्था के उदय में मूल भूमिका भूमि-अनुदानों की थी ।

भूमि - अनुदान प्रारम्भ में धार्मिक कार्यों के लिए प्रदान किये जाते थे किन्तु बाद में अर्थव्यवस्था के क्षीण हो जाने पर प्रशासनिक अधिकारियों, सैनिकों आदि को भी वेतन के रूप में भूमि अनुदान दिये जाने लगे। इस प्रकार धार्मिक तथा गैर-धार्मिक कार्यों के लिए भूमि अनुदान देने की परम्परा बन गयी । धार्मिक भूमि अनुदान का प्राचीनतम अभिलेखीय प्रमाण ईसवी पूर्व की प्रथम शताब्दी के सातवाहन अभिलेख से प्राप्त होता है जिसमें अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर एक गाँव दान देने का उल्लेख है ।[32] इसके पूर्व पालि साहित्यिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि प्राङ् मौर्य काल में कोशल और मगध के राजाओं के द्वारा ब्राह्मणों को गाँव दान में दिए गए थे ।[33] उल्लेखनीय है कि इन दानों से ऐसा कोई आभास नहीं मिलता कि प्रशासनिक अधिकार दान गृहीता को दिया गया हो । किन्तु द्वितीय शताब्दी ईसवी में सातवाहन राजा गौतमीपुत्र सातकर्णि के द्वारा जो गाँव बौद्धों को दान दिया गया था उसमें राजसेना के प्रवेश का निषेध था । राज्याधिकारी वहाँ के जीवन यापन में कोई बाधा नहीं डाल सकते थे ।[34] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि द्वितीय शताब्दी ईसवी से दानदाता द्वारा दान गृहीता को प्रशासनिक अधिकार भी सौंप दिया जाता था ।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है कि नयी बस्तियों में ऋत्विक, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रिय के ब्रह्मदेय भूस्वामित्व के अनुरूप भूमिदान करना चाहिए । ब्रह्मदेय भूस्वामित्व की शर्तों में कर और दण्ड से मुक्ति भी शामिल है ।[35] पालि साहित्य में उल्लिखित ब्रह्मदेय शब्द की टीका करते हुए पाँचवीं शताब्दी ईसवी में

बुद्धघोष कहते हैं कि ब्रह्मदेय अनुदान में न्यायिक और प्रशासनिक अधिकार भी शामिल है ।[36] इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'ब्रह्मदेय' शब्द की उक्त व्याख्या से भाष्यकार के समय की स्थिति का पता चलता है न कि मौर्य युग की व्यवस्था का ।[37] इस प्रकार भूमिदान का व्यापक प्रचलन सामन्तवाद के उदय का कारण बना जिसने ब्राह्मणों के एक ऐसे वर्ग को जन्म दिया जो राजा की सत्ता से लगभग स्वतन्त्र रहकर अनुदत्त क्षेत्रों का प्रशासन चलाने लगे । इस प्रकार के अनुदानों का परिणाम केन्द्रीय सत्ता की आर्थिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था पर पड़ा । जैसे - जैसे भूमिधर किसानों की संख्या बढ़ती गयी उनमें से कुछ लोग पुरोहित की वंश परम्परा को त्याग कर मुख्यरूप से भूसम्पत्ति की व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित करने लगे । फलस्वरूप शासन तन्त्र पर से केन्द्र का वह सक्षम और व्यापक नियन्त्रण, जिसके लिए मौर्यों का राज्य प्रसिद्ध था, मौर्योत्तर काल और गुप्त काल में लुप्त होने लगा और उसके स्थान पर सत्ता का विकेन्द्रीकरण लेने लगा ।[38] हर्षचरित से ज्ञात होता है कि सम्राट हर्ष दिग्विजय अभियान के पूर्व सौ गाँव जिनमें प्रत्येक का क्षेत्रफल एक सहस्र हल के द्वारा नापा गया था भूमि को ब्राह्मणों को दान में दिया ।[39]

बाण कादम्बरी में लिखता है कि राजा तारापीड के प्रसाद में में हजारों शासनों के मसविदे तैयार करने में लिपिक संलग्न थे ।[40] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों को बहुत सारी भूमि दान में दी जाती थी । हर्षचरित से ज्ञात होता है कि दान में प्राप्त गाँवों के अग्रहारिक आगे आगे मंगल के लिए गाँव से वृद्ध पुरुषों के हाथों में जलकुम्भ उठाये हर्ष का स्वागत करने आ रहे थे ।[41] इस विषय में रामशरण शर्मा का मन्तव्य है कि यदि यह मान भी लिया जाय कि बाण अपने आश्रयदाता का अतिरंजित वर्णन किया है और तारापीड के प्रासाद का बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया है तो भी उसकी कृतियों से सातवीं सदी के पूर्वार्द्ध की वस्तुस्थिति का मोटा अन्दाज लगता है कि इस समय तक ब्राह्मणों के हाथ में काफी जमीन आ गयी थी ।[42] यद्यपि ब्राह्मणों को हर्षचरित में बाण ने एक स्थान पर नकद दान देने का संकेत किया है । वह लिखता है कि प्रभाकर वर्द्धन का ब्राह्मणों के लिए दान

में समर्पित होने वाले धन से भरे कलशों से मानों सौभाग्य की सम्पत्ति फलित हो गयी ।[43] किन्तु बाण के समय देश की आर्थिक स्थिति देखते हुए ऐसा तर्कसंगत नहीं लगता की ब्राह्मणों को नकद दान दिया जाता रहा हो । इस प्रकार के दान के पीछे दानदाता का कुछ उद्देश्य होता था जिसके विषय में विद्वान् मानते हैं कि भूमि अनुदानों के बदले पुरोहितों को दाताओं या उनके पूर्वजों के आध्यात्मिक कल्याण के लिए पूजा प्रार्थना करनी पड़ती थी ।[44] वाकाटक राजा प्रवरसेन द्वितीय के चम्मक ताम्रपत्र अभिलेख से इस बात की पुष्टि होती है जिसमें दानदाता द्वारा ब्राह्मणों के लिए कतिपय कर्तव्य निर्दिष्ट किये गये हैं । वे राजा और राज्य के विरुद्ध विद्रोह नहीं करेंगे, चोरी, व्यभिचार और ब्रह्महत्या नहीं करेंगे, राजा को विष नहीं देंगे, इसके अलावा पड़ोसी गांवों से झगड़ा नहीं करेंगे और उन्हें नुकसान नहीं पहुँचायेंगे ।[45] हर्ष के मधुबन एवं बांसखेड़ा अभिलेखों में ब्राह्मणों को दान दिये जाने का उल्लेख है ।[46] ब्राह्मणों के अलावा बौद्ध भिक्षुओं और देवी-देवताओं को ग्राम दान दिये जाने का जिक्र उत्तर भारत के अभिलेखों से प्राप्त होता है । मौखरि शासक अनन्तवर्मा के नागार्जुनी गुफा के अभिलेख संख्या 2 छठी शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध से ज्ञात होता है कि देवी भवानी को एक गाँव दान में दिया गया था ।[47] उत्तर गुप्त वंश के जीवितगुप्त द्वितीय के देवबर्नार्क अभिलेख (लगभग आठवीं शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध) से यह पता चलता है कि वरुण स्वामी को एक गाँव दान में दिया गया था ।[48] इसी प्रकार जीवितगुप्त कटरा ताम्रपत्र अभिलेख (आठवीं शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध) में देवी चामुण्डा के लिए तीन गाँव दान दिये जाने का उल्लेख मिलता है ।[49] यशोवर्मा के नालन्दा पाषाण अभिलेख (लगभग आठवीं शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध) से ज्ञात होता है कि यशोवर्मा के कृपापात्र मालाद नामक व्यक्ति ने बौद्ध-संघ को एक ग्राम दान में दिया था ।[50] उल्लेखनीय है कि कटरा भूमि दान पत्र में दानग्रहीता को समस्त करों के साथ जल, स्थल, आम, महुआ, गड्ढे तथा ऊसर अपनी सीमापर्यन्त सभी पल्लिकाओं के सहित नमक और लोहे की खानों का अधिकार भी दिया गया है ।[51] विशेष बात यह

है कि खानों का स्वामित्व गृहीता को दिया गया है जिसके विषय में विद्वान् यह मानते हैं कि खानों का राजकीय स्वामित्व भी गृहीता को दें दिया जाता था जो कि राजा की प्रभुसत्ता का एक महत्वपूर्ण प्रतीक था ।[52]

ऐसा प्रतीत होता है कि भूमि दान प्राप्त मन्दिरों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई और मन्दिरों ने आगे चलकर मठों का रूप ले लिया । चीनी यात्री फाहियान लिखता है कि बुद्ध के निर्वाण के बाद से राजा, महत्तर लोग तथा बौद्ध गृहस्थ भिक्षुओं के लिए विहार और घर बनवाते थे तथा उन्हें वित्त और बगीचे के साथ ही जुताई-बुआई के लिए कृषक, मजदूर और पशु भी देते थे ।[53] इस प्रकार भूमि प्राप्त मन्दिरों और विहारों के उदय और विकास में धार्मिक तथा शैक्षणिक प्रयोजनों हेतु राजाओं द्वारा अग्रहारों का दान दिया जाना महत्वपूर्ण बात थी । छठीं शताब्दी में परवर्ती गुप्त राजा दामोदर गुप्त के द्वारा एक सौ अग्रहार दिये जाने का उल्लेख मिलता है ।[54] ह्वेनसांग लिखता है कि लगभग सौ गांवों के राजस्व से नालन्दा विहार का खर्च चलता था ।[55] किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इत्सिंग के समय तक दान में दिये गये गाँवों की ब संख्या 200 तक पहुँच गई थी ।[56] इस तरह भूमि अनुदान की परम्परा के फलस्वरूप मन्दिर और विहार अनेक रियायतों को पाकर अर्धस्वतंत्र इकाइयाँ बन गये जिससे सामन्तवाद को बढ़ावा मिला । रामशरण शर्मा सत्ता के विकेन्द्रीकरण का सबसे महत्वपूर्ण कारण ब्राह्मणों एवं मन्दिरों को भूमि दान देना ही मानते हैं अन्य कारण तो गौण हैं ।[57]

ब्राह्मण, पुरोहितों को भूमि अनुदान देने से सत्ता का विकेन्द्रीकरण अवश्य हुआ जिससे केन्द्रीय सत्ता कमजोर हुई किन्तु इसके सकारात्मक पक्ष के विषय में राम शरण शर्मा का कथन उचित ही प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों ने अपने उदार दाताओं से जितना प्राप्त किया उससे अधिक दानदाता को लाभ मिला । उन्होंने अपने अधीनस्थ क्षेत्रों में शान्ति-सुव्यवस्था कायम रखी, प्रजा को वर्ण-धर्म के निर्वाह का पवित्र कर्तव्य समझाया तथा उसके मन में राजा के प्रति यह भाव जगाया कि उसकी आज्ञा का पालन करना पवित्र कार्य है । यह ठीक है कि पुरोहित दाताओं के

आध्यात्मिक कल्याण के लिए पूजा प्रार्थना करते थे, इंग्लैण्ड के पादरियों की तरह सेना नहीं एकत्रित करते थे, किन्तु यदि जनता का आचरण ठीक हो और प्रचलित व्यवस्था को स्वीकार करने के लिए समझाया जा सकता था तो फिर सैनिक सेवा की जरूरत ही क्या थी ?[58]

गुप्त-काल के अभिलेखीय प्रमाण इस बात के साक्षी हैं कि धार्मिक कार्यों में रत पंडित एवं पुरोहितों के अलावा गृहस्थों को भी गांव दान में दिये जाते थे जिनसे होने वाली आय का उपयोग धार्मिक कार्यों में करने का निर्देश है ।[59] मध्य भारत में उच्च कल्प महाराज जयनाथ (496-97 ईसवी) द्वारा प्रदत्त एक ग्राम दान के सन्दर्भ में इस बात की पुष्टि होती है जिसमें कहा गया है कि ग्राम निवासी नियमतः भाग, भोग, कर आदि भोक्ताओं को दें तथा उनके आदेशों का पालन करें किन्तु दान दाता के पास चोरों को दण्डित करने का अधिकार सुरक्षित था ।[60] इससे स्पष्ट है कि इस प्रकार के दान से राजस्व तथा प्रशासन सम्बन्धी सत्ता का प्रयोग गृहस्थ भोक्ताओं द्वारा किया जाता था आय का उपयोग मात्र धार्मिक कार्यों के लिए होता था । इससे यह आभास मिलता है कि व्यवस्थापक के रूप में गृहस्थ भोक्ता-सामन्तवाद के उदय में कड़ी साबित हुए ।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि मौर्य काल में राज्याधिकारियों को भूमि के दान का विधान किया गया था । उसके अनुसार नयी बस्तियों में विभागीय अध्यक्षों, संख्या को गोपों (दस-दस गाँवों के अधिकारियों), स्थानिकों अनीकस्थों (हस्तिशिक्षकों) वैद्यों, अश्वशिक्षकों और जंघाकरिको (दूर देश में जीविकोपार्जन करने वाले लोगों) आदि अधिकारियों, कर्मचारियों और प्रजाजनों के लिए राजा भूमि-दान करें । किन्तु इस प्रकार की जमीन को बेचने या गिरवी रखने के लिए वर्जित कर दे ।[61] इससे ऐसा अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि मौर्य काल में वेतन के स्थान पर भूमि प्रदान की जाती थी क्योंकि कौटिल्य नकद वेतन का विस्तृत विवरण भी प्रस्तुत करता है जिसमें ऋत्विक, आचार्य, मन्त्री, पुरोहित, सेनापति,

युवराज, राजमाता, पटरानी आदि को प्रतिवर्ष अड़तालीस हजार पण वेतन का विधान किया गया है । न्यूनतम वेतन साठ पण निर्धारित किया गया है ।[62] भूमि दान के विषय में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नकद वेतन के अलावा भूमि दान मिलता था जिसका उद्देश्य संभवतः नयी बस्तियों को आबाद करने से रहा होगा । किन्तु आगे की शताब्दियों में राज्याधिकारियों को मिलने वाले नकद वेतन की व्यवस्था में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है । मनु के अनुसार "राजप्रदेयानि" एकत्र करने और शान्ति-सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए गठित एक, दस, बीस, सौ या हजार गाँवों के एकांशों के प्रधान अधिकारियों को वेतन के रूप में भूमि प्रदान करने की सिफारिश की गयी है ।[63] इसी नियम के अनुरूप पाँचवीं शताब्दी ईसवी के स्मृतिकार वृहस्पति का मन्तव्य है कि जब राजा किसी की सेवा, शौर्य आदि से प्रसन्न होता था तो उसे भूमि अनुदान देता था ।[64] अधिकारियों और कर्मचारियों को भूमि प्रदान करने की परम्परा का कोई उल्लेख बाण के साहित्य से नहीं उपलब्ध होता किन्तु चीनी यात्री ह्वेनसांग लिखता है कि निजी खर्च के लिए प्रत्येक गवर्नर, मन्त्री, मजिस्ट्रेट और अधिकारी को जमीन मिली हुई थी ।[65]

इस प्रकार इस बात की पुष्टि हो जाती है कि बाण के समय तक न केवल पंडित, पुरोहितों को भूमि दान में दी जाती थी जैसा कि हर्षचरित में उल्लेख आया है अपितु राज्याधिकारियों को भी वेतन के रूप में जमीन प्रदान की जाती थी । इस प्रथा की पुष्टि इस बात से भी होती है कि उस काल की मुद्राएँ बहुत कम मिली हैं । भूमि-दान प्राप्त करने वालों में न केवल प्रशासनिक अधिकारी होते थे अपितु सैनिक अधिकारी भी हुआ करते थे । बाण हर्षचरित में लिखता है कि प्रभाकरवर्द्धन सब दिशाओं में नदियों के किनारे, गड्ढे, वन, वृक्ष, तृण, झाड़ी पर्वत आदि को समतल करवाकर भृत्यों के उपयोग के लिए दूर तक विस्तृत सैन्यमार्ग बनवाकर पृथ्वी को मानों अनेक भागों में विभक्त कर दिया ।[66] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सैन्य दृष्टि से सम्पूर्ण साम्राज्य को विभाजित करके प्रत्येक भाग

सुरक्षा की दृष्टि से उच्च सैनिक अधिकारियों को दिया गया था । सैनिक अनुदान के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं । सातवीं या आठवीं शताब्दी ईसवी में राजा बुवाद जिसके पूर्वज सोलंकी वंश के थे, ने कहा कि उसने अपने सम्पूर्ण राज्य के गांवों को सोलह बराबर हिस्सों में विभक्त कर उच्चाधिकारियों को सौंप दिया । उनमें से आठ उच्चाधिकारियों को उसने चारों दिशाओं को जीतने के लिए भेजा ।[67] इस प्रकार उत्तर गुप्त में सामन्तवादी परम्परा के अन्तर्गत जमींदारी प्रथा का विकास सैनिक एवं प्रशासनिक अधिकारियों के साथ वंशानुगत सम्बन्धियों आदि को भी भूमि दान देने से हुआ ।[68] मानसोल्लास से ज्ञात होता है कि शरणार्थियों को गांव अनुदान में दिये जाते थे । शरणार्थियों को गांव अनुदान देना राजा का कर्तव्य माना गया है ।[69]

गुप्त-काल तक व्यापारियों एवं शिल्पियों को ऐसी कोई सनद (प्रमाणपत्र) नहीं दिया जाता था जिससे व्यापारी को कोई क्षेत्र विशेष का अधिकार सौंपने का प्रमाण प्राप्त हो किन्तु गुप्त काल के अन्तिम दिनों में इस प्रकार के सनदों का उल्लेख मिलता है जिसमें पुरोहितों और मन्दिरों को कृषकों पर सत्ता दिये जाने के अनुरूप व्यापारियों को भी शिल्पियों पर सत्ता चलाने का अधिकार दे दिया जाता था । इससे व्यापारी गृहीताओं का नगरीय श्रमिकों एवं शिल्पियों पर पूरा अधिकार हो जाता था । कालक्रम से व्यापारियों को भी नगरवासियों पर कर लगाने का अधिकार दिया जाने लगा । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि व्यापारियों की श्रेणियाँ राजकीय नियन्त्रण से अधिकाधिक स्वतंत्र होती जा रही थी और उत्तरोत्तर आत्मनिर्भर बनती गयी ।[70] इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि मौर्योत्तर और गुप्त काल में निगम अपने सिक्के जारी किया करते थे जिससे उनकी स्वतन्त्रता और आत्मनिर्भरता का प्रमाण मिलता है । इससे देश के विभाजन की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला क्योंकि सिक्के जारी करना प्रभुसत्ताधारी का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण काम था ।[71]

सामन्तवाद के उदय में भूमि अनुदानों के साथ-साथ प्रशासनिक एवं आर्थिक अधिकारों का दानदाताओं द्वारा स्थानान्तरण करना मुख्य कारक तत्व माना जाता है। अभिलेखीय साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि महाराष्ट्र एवं गुजरात में चौथी से छठीं शताब्दी में दान गृहीताओं को यह अधिकार दिया गया था कि वह अपनी सुविधानुसार स्वयं खेती कर सकता था अथवा किसी से करवा सकता था।[72] मनु के अनुसार ब्राह्मण यदि चाहे तो खेती कर सकते हैं।[73] इसी प्रकार का अधिकार याज्ञवल्क्य[74] एवं नारद[75] भी ब्राह्मणों को देते हैं। किन्तु विचारणीय तथ्य यह है कि जहाँ पूरा का पूरा गाँव थोड़े से ब्राह्मणों को दे दिया जाता था, वहाँ स्पष्ट है कि वे सम्पूर्ण भूमि पर स्वयं खेती नहीं कर सकते थे। परिणामस्वरूप ब्राह्मणों के बहुत से गाँवों या अग्रहारों का स्वरूप अर्द्ध सामन्तवादी हो गया।[76] राज्याधिकारियों द्वारा प्राप्त भूमि अनुदानों में से धार्मिक भूमि-अनुदान दिये जाने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। छठीं शताब्दी ईसवी के मध्य कुमारामात्य महाराज नन्दन ने आधुनिक गया जिले में एक गाँव दान में दिया था जो स्वयं गुप्तों के अधीन एक राज्याधिकारी के पद पर था।[77] मध्य भारत में एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि पुलिन्द भट्ट नामक अधिकारी ने कुमारस्वामिन् जो पुजारी था, को भूमि-दान देने के लिए महाराज सर्वनाथ से अनुमति प्राप्त किया था।[78] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि बाण के पूर्व ही उपसामन्तीकरण की प्रक्रिया धार्मिक क्षेत्र में प्रारम्भ हो गयी थी। किन्तु सातवीं शताब्दी ईसवी के आधुनिक बिहार के हजारी बाग जिले से प्राप्त उदयमान के दूधापनि शिलालेख से धर्मनिरपेक्ष उपसामन्तीकरण का प्रमाण प्राप्त होता है।[79] जिसके अनुसार एक गाँव के निवासियों ने राजा की संस्तुति से उदयमान नामक व्यापारी को अपना राजा स्वीकार करने के लिए कहा। उसने निवासियों को सुरक्षा प्रदान करने का वचन दिया। इसके अलावा दो अलग-अलग गाँव के निवासियों के निवेदन पर उसने अपने दो भाइयों को वहाँ नियुक्त किया। अभिलेख से ज्ञात होता है कि राजा का जमींदार उदयमान था और उदयमान के दो सहायक जमींदार उसके भाई थे जिससे सामन्तों की दो श्रेणियों सामन्त एवं उपसामन्त का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार सामन्तों के बाद उपसामन्तों की एक अलग श्रेणी बनी जिसने उपसामन्तीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया।

बाणभट्ट के साहित्य में सामन्तों के दायित्वों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। हर्षचरित एवं कादम्बरी में जिस प्रकार के कर्तव्यों का उल्लेख मिलता है वह समकालीन साहित्यों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। हर्षचरित से ज्ञात होता है कि सम्राट पुष्यभूति ने पुरवासी, राज्य के कर्मचारी मन्त्री और भुजबल से पराजित होकर कर देने वाले बड़े-बड़े सामन्त भी भगवान् शिव की पूजा में उपयोग आने वाले उपहारों और भेंटों से उसकी सेवा करते थे।[80] विद्वान् ऐसा मानते हैं कि सामन्तों की शासित भूमि में सम्राट् स्वयं ग्राह्य भाग नहीं वसूल करते थे, अपितु सामन्तों से ही प्रतिवर्ष कर उगाह लेते थे।[81] उल्लेखनीय है कि बाण इस विषय में कोई अन्य संकेत नहीं करता कि कर में राजा और सामन्त का कितना कितना भाग होता था? मानसार से ज्ञात होता है कि सामन्तवाद के कारण जो कर में वृद्धि हुई उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि के अनुसार शासक और जागीरदारों का हिस्सा इस प्रकार था : चक्रवर्ती महाराज, (या अधिराज), नरेन्द्र, पार्षणक और पट्टधर को उपज का क्रमशः 1/10, 1/6, 1/5, 1/4 और 1/3 हिस्सा प्राप्त होता था।[82] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कर-व्यवस्था में सामन्तों की अहं भूमिका थी किन्तु राज्य की आय में घटोत्तरी हुई।

हर्षचरित में हर्ष ने जो भूमि-दान विजय अभियान के पूर्व किया था उसका क्षेत्रफल हल से नापा गया था।[83] इस विषय में विद्वान् यह मानते हैं कि बाण के समय सामन्तों की आय घट गयी थी क्योंकि एक सहस्र हल का तात्पर्य 1333 एकड़ होता है जिससे 1000 कार्षापण की आय का अनुमान लगाया जाता है।[84] इससे पूर्व गुप्त-कालीन शुक्रनीति में इस सन्दर्भ में विस्तृत ब्यौरा प्राप्त होता है उसके अनुसार सामन्त की भूमिकर से वार्षिक आय तीन लाख चाँदी के कार्षापण हुआ करती थी इसी प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धि क्रम से मांडलिक की दस लाख, राजा की 20 लाख, महाराज की 50 लाख, स्वराट् की एक करोड़, सम्राट की दस करोड़, विराट् की ग्यारह करोड़ और इससे ऊपर की आय वाला सार्वभौम कहा जाता था।[85] सम्राट् के सामन्तों को अपनी इच्छानुसार करों में वृद्धि करने अथवा नये

कर लगाने की छूट थी या नहीं, यह स्पष्ट नहीं है किन्तु अपने-अपने अधीनस्थ क्षेत्रों में राजकर के लिए उत्तरदायी वे ही लोग थे ।[86]

कतिपय पाश्चात्य विद्वान् सामन्तवाद का सम्बन्ध जाति प्रथा से जोड़ते हैं । कालबर्न का विचार है कि सामन्तीय ढांचे में समाज के उच्चवर्ग और जातियों का आधार के विभाजन के कारण गाँव धीरे-धीरे सम्पर्क सूत्र बनकर रह गये ।[87] जाति व्यवस्था आधाभूत ढांचे को अनुकूल सम्मान प्रदान किया जबकि भारतीय सामन्तीय ढांचे ने जाति व्यवस्था की उपेक्षा की, जमींदारों या सामन्तों के लिए किसी जाति विशेष का होना या न होना कोई महत्वपूर्ण बात नहीं थी ।[88] सामन्त जो युद्ध प्रिय लोग थे क्षत्रिय स्तर का होने का दावा करने लगे जो समाज के उच्च और निम्न वर्ग के मध्य दूसरा सेतु बना ।[89] किन्तु कुछ विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं । उनके अनुसार गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद तीन सौ वर्षों तक जो विदेशी आक्रमण, राजनैतिक अव्यवस्था, सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक गिरावट आयी उसके कारण चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में आये उलट-फेर के फलस्वरूप सामन्त वाद का विकास हुआ ।[90] इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, निम्न जातियाँ, अज्ञात वंश, जनजातियों और विदेशी जो भारतीय बन गये थे आदि के सत्ता में जुड़ने के प्रमाण हैं । एक और प्रशासक वर्ग वर्ण व्यवस्था को लागू करने के लिए उत्साह से प्रयत्न कर रहे थे, दूसरी ओर विशेष परिस्थितियाँ प्रशासकीय अभिजातवर्ग में सम्मिलित होने के लिए उतावली थी ।[91] प्राचीन काल में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था वैश्यों को कृषक के रूप में अभिहित किया जाता था ।[92] किन्तु मनु के अनुसार शूद्रों को अधबटाय पर खेती करने के लिए देने का विधान है ।[93] उससे ऐसा प्रतीत होता है कि शूद्रों की कृषकxxxx स्थिति में सुधार आ रहा था । ह्वेनसांग तो शूद्रों को कृषक कहा है ।[94] इस तरह शूद्रों का दासों एवं श्रमिकों की स्थिति से निकल कर आना सामन्तवाद की उदय की दृष्टि से महत्वपूर्ण कारक तत्व माना जा सकता है ।[95]

सामन्तीय परम्परा में जातीय विचार को स्तरीय प्रतिमान से कम करके

आँका गया । इसे विभिन्न श्रेणियों के सामन्तों द्वारा प्राप्त गाँवों की संख्या तथा राजा के साथ सम्बन्धों के आधार पर प्रस्तुत किया गया ।[96] इसे प्रकार सत्ता के आधार पर वर्गों का निर्धारण महत्वपूर्ण हो गया जबकि वर्णव्यवस्था के नियम शिथिल हो गये ।

बाणभट्ट के साहित्य में सामन्त-व्यवस्था की स्पष्ट रूपरेखा परिलक्षित होती है । हर्षचरित से अनेक प्रकार के सामन्तों का ज्ञान होता है जिनमें सामन्त[97], महासामन्त[98], आप्त-सामन्त[99], प्रधान सामन्त[100], प्रतिसामन्त[101], अनुरक्त सामन्त[102], शत्रुमहासामन्त[103] और करदीकृत सामन्त[104] एवं आटविक सामन्त थे । बाण के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि सामन्तों से ऊँची श्रेणी के महासामन्त होते थे । आप्त सामन्त संभवतः ऐसे सामन्तों को कहा जाता था जो स्वेच्छानुसार राजा की अधीनता स्वीकार कर लेते थे ।[105] प्रधान सामन्त राजा के सबसे अधिक विश्वस्त व्यक्तियों में होते थे जिनकी बात टाली नहीं जा सकती थी ।[106] ग्रह-वर्मा की मृत्यु से शोक विह्वल राज्यवर्द्धन को प्रधान सामन्तों ने ही समझाकर भोजन कराया था ।[107]

हर्ष के दिग्विजय अभियान की घोषणा के पश्चात् प्रतिसामन्तों के घरों में अपशकुन होने लगे ।[108] अग्रवाल महोदय प्रतिसामन्त के विषय में कुछ नहीं कहते किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिसामन्त से बाण का तात्पर्य संभवतः प्रतिकूल सामन्तों से रहा हो जो राजा के आदेश का उल्लंघन करते रहे हों जिन्हें शत्रु सामन्तों की श्रेणी के समकक्ष माना जा सकता है । अनुरक्त महासामन्त संभवतः राजा के गुणों से आकर्षित होकर स्वतः आदेश का पालन करने वाला होता था ।[109] राज्यवर्द्धन द्वारा हूणों के दमन के लिए जाते समय चुने हुए अनुरक्त महासामन्तों के भेजे जाने का उल्लेख बाण ने किया है ।[110] हर्षचरित के अनुसार बाण जब प्रथमतः हर्ष से मिलने मणितारा स्कन्धावार गया, उस प्रसंग में शत्रु महासामन्तों का उल्लेख आया है । बाण लिखता है कि भुजनिर्जित अनेक शत्रु महासामन्त वहाँ उपस्थित थे।

अतः

वे पराजित थे फिर भी सम्मानित के समान थे । उनका कोई दूसरा आश्रय नहीं था । वे राजद्वार पर खड़े होकर सम्राट के दर्शनों की आशा में दिन बिताते थे।[111] शत्रुमहासामन्त पराजित राजा होते थे जो राजदरबार में उपस्थित रहा करते थे । प्रोफेसर बी०एन०एस० यादव के विचार से शत्रुसामन्त अर्द्ध-स्वतन्त्र राजकुमार प्रतीत होते हैं । पराजित राजाओं के साथ जो लोग स्वेच्छा से अधीनता मान लेते थे उन्हें भी सामन्त बना लिया जाता था ।[112]

हर्षचरित से ज्ञात होता है कि सम्राट् पुष्यभूति ने महासामन्तों को अपना करद बना लिया था ।[113] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सामन्तों की शासित भूमि में स्वयं सम्राट् अपना भाग नहीं वसूल करता था अपितु सामन्तों से वार्षिक कर उगाह लेता था ।[114] ऐसे करदाता सामन्तों को करदीकृत महासामन्त की उपाधि प्रदान की जाती थी । कादम्बरी में राजा शूद्रक को "प्रतापानुरावनत-समस्त-सामन्तचक्रः" की उपाधि से विभूषित किया गया है ।[115] हर्षचरित में एक अन्य प्रकार के आटविक सामन्त का उल्लेख मिलता है । सम्राट् हर्ष राज्यश्री की खोज करते हुए जब विन्ध्याटवी में इधर-उधर भटक रहे थे उसी समय आटविक सामन्त शरभ केतु का पुत्र व्याघ्रकेतु कहीं से एक शबर युवक को साथ लेकर मिलने आया ।[117] आटविक सामन्त के विषय में विद्वान् यह मानते हैं कि इनका पद सामन्त जैसा माना गया था जैसे अन्य सामन्त दरबार के समय सेवाचामर ग्रहण, पट्टिग्रहण आदि सेवायें करते थे उसी प्रकार आटविक राजा की भी उस पद पर नियुक्त होते थे।[118] उल्लेखनीय है कि समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उसने समस्त आटविक राजाओं को अपना परिचारक बना लिया था ।[119] पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल अभिलेख से ज्ञात होता है कि हर्ष के पास जो विशाल सेना थी वह सामन्तों के द्वारा जुटाई गई सेना ।सामन्त-सेना। थी ।[120]

सामन्तों के प्रशासनिक एवं न्यायिक कर्तव्यों के विषय में बाण कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं करता । हर्षचरित में बाण लिखता है कि राज्यवर्द्धन ने जब अन्न-जल

का त्याग कर दिया । ऐसी परिस्थिति में प्रधान सामन्तों ने उसे समझा बुझाकर भोजन कराया । इस सन्दर्भ में बाण लिखता है कि वे प्रधान सामन्त ऐसे थे जिनकी बात का उल्लंघन नहीं किया जा सकता था ।[121] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जब व्यक्तिगत मामलों में सामन्तों की सलाह को अमान्य नहीं किया जा सकता था तब फिर प्रशासनिक मामलों में उसकी कैसी अवहेलना की जा सकती थी, क्योंकि इन विषयों में तो उनकी सहायता और सहयोग की भी आवश्यकता थी ।[122] हर्ष चरित के अनुसार प्रभाकरवर्द्धन के मृत्यु के पश्चात् राज्यवर्द्धन को सिंहासनारूढ़ करने के लिए सामन्तों में प्रयास किया ।[123] इससे यह स्पष्ट नहीं है कि कोई नियमित सामन्तीय परिषद् थी परन्तु इतना कहा जा सकता है कि उत्तराधिकार जैसे महत्व पूर्ण प्रश्नों पर सामन्तों की सलाह अवश्य ली जाती थी ।[124]

बाणभट्ट एक स्थान पर लिखता है कि राज्यवर्द्धन जब पिता की मृत्यु से शोक विह्वल अन्न-जल ग्रहण करने के बाद रात में सलाह मशविरा के लिए हर्ष के साथ बैठे तो तब राजा लोग जुट आये ।[125] इससे ऐसा आभास होता है कि ये जुटने वाले राजा लोग सामन्त थे जो राजदरबार में रहा करते थे जिनको महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार करते समय बुलाया जाता था । कादम्बरी में राजा शूद्रक के सभामण्डप के वर्णन में बाण लिखता है कि शूद्रक अनेक राजपुत्रों के साथ आमोद - प्रमोद में लगा रहता था जो अवस्था, विद्या तथा आभूषणों में उसी के समान मूर्धाभिषिक्त राजाओं के वंशों में उत्पन्न थे । वे अनेक कलाओं के मनन से परिपक्व बुद्धि तथा अत्यन्त प्रखर थे । वे व्यावहारिक, शूद्रक के प्रति आसक्त, शिष्ट परिहास करने में कुशल, संकेत और आंगिक चेष्टाओं के ज्ञाता तथा काव्य, नाटक, कथा कहानी, चित्रलेखन आदि क्रियाओं में निपुण थे ।[126] इससे ऐसा परिलक्षित होता है कि बाण ने मूर्धाभिषिक्त राजाओं की योग्यता का परिचय दिया है । विद्वान् ऐसा मानते हैं कि योग्यताओं के संकेत से ऐसा लगता है कि ये उच्च वर्गीय सामन्त थे ।[127] बाण के वर्णन से आभासित होता है कि राज दरबार में इस प्रकार के सामन्तों की संख्या अधिक थी । इस विषय में अपराजितपृच्छा में लिखा है कि

महाराजाधिराज परमेश्वर उपाधि धारण करने वाले सम्राट् के राजदरबार में चार मंडलेश, बारह मांडलिक, सोलह महासामन्त, बत्तीस सामन्त, एक सौ साठ लघु-सामन्त और चार सौ चतुराशिक उपाधिधारी होने चाहिए ।[128] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बाण के समय भी राजदरबार में सामन्तों की पर्याप्त संख्या रहती होगी जो संभवतः घोषित परिषद् के रूप में न सही, अघोषित परिषद् के रूप में प्रशासनिक कार्यों में सलाह मशविरा देते रहे हों ।

हर्षचरित से ज्ञात होता है कि सम्राट् हर्ष ने विजय अभियान के पूर्व अपनी विशालकाय सेना देखकर आश्चर्यचकित हो गये ।[129] चीनी यात्री ह्वेनसांग भी हर्ष की सेना में साठ हजार हाथी और एक लाख घुड़सवारों का विवरण प्रस्तुत करता है ।[130] स्वयं हर्ष को महावाहिनीपति के रूप में बाण ने सम्बोधित किया है ।[131] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष की सेना विशालकाय थी । किन्तु विद्वान् ऐसा मानते हैं कि हर्ष की सेना का जो विवरण प्राप्त होता है उसे यदि अतिरंजित भी माना जाय तो भी वस्तुतः मौर्य सेना से बड़ी रही होगी । ध्यातव्य है कि हर्ष का राज्य मौर्यों के राज्य से छोटा है उस पर भी प्रभावकारी नियंत्रण का अभाव दृष्टिगत होता है । ऐसी परिस्थिति में विशालकाय सेना के रखने का क्या औचित्य हो सकता है । संभवतः यह सामन्ती सेना रही हो जो युद्धकाल के समय जुटा ली जाती थी ।[132] उल्लेखनीय है कि चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल अभिलेख[133] से ज्ञात होता है कि हर्ष की सेना वस्तुतः सामन्ती सेना थी । जिसमें पुलकेशिन की प्रशंसा में लिखा गया है कि हर्ष अपने सामन्तों द्वारा एकत्रित सेना से सुसज्जित था । इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सामन्तों का एक मुख्य दायित्व अपने शासक के लिए सेना का प्रबन्ध करना भी था । हर्षचरित से ज्ञात होता है कि सामन्त भी सेना के साथ युद्ध में जाते थे । उसके अनुसार सेना के प्रस्थान के समय महासामन्तों के रसोड़े आगे ही भेज दिये गये थे ।[134] इसके अलावा बाण आगे लिखता है कि राजाओं के अन्न-पान ढोने वाले कर्मचारी

बाहर निकल रहे थे, वे अपने काले कठोर कन्धों पर भारी लटठ रखे हुए थे, सोने का पादपीठ, पानदान, पानी का कलश, पीकदान, नहाने की द्रोणी आदि राजाओं की निजी सामग्री को लेकर चले रहे थे।[135] बाण ने अपने वर्णन में राजाओं के जिन निजी सामानों का जिक्र किया है उससे यह अनुमान लगाना असंगत न होगा कि ये राजा लोग उच्चवर्गीय सामन्त रहे हों। विजय अभियान के प्रसंग में बाण लिखता है कि रंग-बिरंगी झूलों से ढंके हुए जवान हाथी पर सवार होकर राजा लोग पहुँचे हुए थे। राजाओं के नाम पुकारे जा रहे थे। पैदल सैनिक राजाओं की आज्ञा को उन्मुख हो सुनकर पालन में लग रहे थे। इस प्रकार राजाओं से राजद्वार भरा हुआ था।[136] सैन्य अभियान में राजाओं का जैसा वर्णन बाण ने किया है उसका तात्पर्य निश्चित रूप से सामन्तों से ही रहा होगा जो अपने सैन्य-बल के साथ स्वयं उपस्थित थे। बाणभट्ट इसी प्रकार राजाओं की उपस्थिति का वर्णन कादम्बरी में भी करता है। उसके अनुसार चन्द्रापीड दिग्विजय अभियान के समय जब राजद्वार पर आया तो राजा लोग आदर से मौलि और मुकुट उतारकर प्रणाम करने लगे। सेनापति ने नाम लेकर उनका परिचय कराया।[137] सेना-प्रस्थान के समय भूपाल परस्पर सामने उपस्थित होकर राजपुत्र को प्रणाम करने लगे।[138] स्कन्धावार में सारे नरपति एवं अमात्यों ने कथोपकथन से चन्द्रापीड का मनोरंजन करने लगे।[139] इस प्रकार बाण ने सैन्य अभियान के समय सेना सहित सामन्तों का अच्छा चित्र खींचा है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि बाण के समय तक सामन्तों का मुख्य दायित्व शासक के लिए सेना का प्रबन्ध करना भी हो गया था।

बाणभट्ट के साहित्य में सामन्तों के उत्तरदायित्व के अलावा शासक के साथ पारस्परिक शिष्टाचार एवं सम्बन्धों का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। गुप्तकाल में समुद्रगुप्त के प्रयाग-प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि शासक विजित राजाओं के साथ अनेक नीतियों का व्यवहार करते थे उनमें प्रणामागमन, आज्ञाकरण, सर्वकरदान, कन्योपायनदान तथा परिचारिकीकरण आदि थे।[140] बाणभट्ट के साहित्य

में भी गुप्तकालीन इसी प्रकार की व्यवस्था की झलक सामन्तों के प्रति मिलती है। हर्षचरित में बाण लिखता है कि जब वह हर्ष से मिलने प्रथम बार अचिरावती के तट पर स्थित स्कन्धावार में गया तो राजद्वार के बाहर शत्रुमहासामन्तों को देखा। उनकी स्थिति का सही चित्र खींचते हुए बाण वर्णन करता है कि हर्ष के राजद्वार पर अनेक शत्रु महासामन्त उपस्थित थे। कुछ भीतर प्रवेश न पाने के कारण मुख नीचा किये हुए खड़े थे। कुछ बैठे-बैठे अंगुलियों से जमीन पर लिख रहे थे, अपने नख से फैलते किरण जाल से महाराज की सेवा में मानो चँवर अर्पित कर रहे हो। कुछ के वक्ष पर लटकते हुए इन्द्रनील मणि की प्रभा तरल हो रही थी मानों अपने कण्ठ में कृपाण बाँध लिये थे। कुछ के मुख पर उच्छ्वास की सुगन्ध से भौंरे छा गये थे मानों लक्ष्मी अपहरण के कारण लम्बी दाढ़ी बढ़ा रखी थी। उनके मस्तक के ऊपर भौंरे मंडरा रहे थे, मानों प्रणाम करने के लिए झुकने के तिरस्कार के भय से उनके धम्मिल उड़ जा रहे थे। वे पराजित थे फिर भी सम्मानित के समान थे। वे भीतर आने जाने वाले पुरुषों से सम्राट् के दर्शन के विषय में पूछते रहते थे।[141]

उल्लेखनीय है कि शत्रु महासामन्तों के द्वारा दरबार में चँवर डुलाने का काम करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त कुछ शत्रु महासामन्त अपने गले में खड्ग लटकाकर, कुछ दाढ़ी बाल बढ़ाकर तथा कुछ सिर पर से मुकुट उतार कर उपस्थित थे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि शत्रु महासामन्तों की भी अनेक श्रेणियाँ रही हो जिन्हें उनके अपराध के अनुसार दंड या पुरस्कार स्वरूप परिचारिकीकरण आदि की सेवा उपलब्ध करायी जाती रही हो। युद्धस्थल में अपराजित हो जाने के पश्चात् प्राण-भिक्षा के लिए लाचार शत्रुओं के साथ किये गये ये व्यवहार उस युग में अनुग्रह या सम्मान ही समझे जाते थे।[142] हर्षचरित में बाण लिखता है कि सम्राट् हर्ष गौडाधिप के विरुद्ध सैन्य अभियान के पूर्व घोषणा करता है कि शत्रु राजा कर-दान के लिए तैयार हों अथवा शस्त्र ग्रहण करने के लिए, दिशाओं का ग्रहण करें या सेवा-चामरों का, अपने मस्तक को नम्र करें या धनुष को, आज्ञा को कानों तक करें या धनुष की मौर्वी को, अपने सिर पर चरण की धूलि धारण करें या शिरस्त्र। युद्ध

के लिए।, प्रणाम के लिए अंजलि का संघटन करें या युद्ध के लिए हाथियों की सूंडें भूमि का त्याग करें या बाणों का, वेत्रयष्टि धारण करें या बर्छियाँ लें, झुक कर मेरे चरण के नखों में अपना प्रतिबिम्ब देखें अथवा कृपाण के दर्पणों में अपना रूप देखें ।[143]

उल्लेखनीय है कि बाण के वर्णन में शत्रु राजाओं जो हार जाने के बाद शत्रु महासामन्तों के रूप में राजद्वार पर उपस्थित रहते होंगे के विषय में दो अन्य परिचारिकीकरण चंवर डुलाना और हाथ में वेत्रयष्टि लेकर दरबार में प्रतिहार का काम करने की ओर इंगित किया है । यहाँ बाण ने शत्रु राजाओं के द्वारा चार प्रकार के प्रणाम करने की विधियों का उल्लेख किया है :- 1. केवल सिर झुकाकर प्रणाम करना, 2. अंजलिबद्ध प्रणाम, 3. सम्राट के चरणों तक सिर झुकाकर प्रणाम करना तथा 4. चरण की धूल अपने मस्तक पर धारण करना । इसी प्रकार का वर्णन बाणभट्ट की कादम्बरी में मिलता है । चन्द्रापीड के दिग्विजय अभियान के पूर्व अगणित सेनाओं को देख, विस्मय से सब दिशाओं में दृष्टिपात कर वैशम्पायन ने चन्द्रापीड से कहा कि युवराज । महाराजाधिराज तारापीड ने क्या नहीं जीता ? कौन-कौन से राजा उनके समक्ष नत नहीं हुए ? कौन-कौन राजा ने अपने मस्तक पर अभिनव कमल के समान कोमल सेवांजलि नहीं बनाई ? कनककिरीटधारी अपने-अपने ललाट से कितने सभामण्डप की भूमि को चिकना नहीं किया ? कितने नमस्कार करने के लिए महाराज तारापीड के पादपीठ पर अपनी चूडामणि नहीं रगड़ी ? कितने ।प्रतिहारी के समान। छड़ियाँ नहीं पकड़ी ? कितने चमर नहीं डुलाया ? कितने जय शब्द का उच्चारण नहीं किया ? कितने मुकुट के स्वर्णपत्र निर्मित मकराकार चिन्ह से, महाराज तारापीड के निर्मल चरणनख किरणों की राशि का पान नहीं किया ?[144] कादम्बरी के इस वर्णन में परिचारिकीकरण में सेवा चामर तथा वेत्रयष्टि के साथ प्रतिहार का काम करने के अलावा पराजित राजाओं के द्वारा जय शब्द का उच्चारण करते हुए सम्राट् के आगे चलने वाले भृत्यों के कार्यों का अतिरिक्त उल्लेख मिलता है ।

इस प्रकार परिचारिकीकरण के तीन प्रकार सेवा-चामर अर्पित करना, वेत्रयष्टि धारण करना तथा जय शब्द का उच्चारण करते हुए भृत्यों का कार्य करना, प्राप्त होता है । इसी प्रकार जहाँ बाण ने हर्षचरित में चार प्रकार के प्रणाम करने के तरीके का उल्लेख किया है वहीं कादम्बरी में पाँच प्रकार के प्रणामागमन का उल्लेख करते हैं जिनमें 1. सिर झुकाकर प्रणाम करना, 2. सम्राट् के सामने सिर झुकाकर अंजलिबद्ध प्रणाम करना, 3. सिर झुकाकर सम्राट् के चरणों का स्पर्श करना, 4. सिर झुकाकर पादपीठ का स्पर्श करना, 5. सम्राट् के पादपीठ के समीप पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम करना था । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रणाम करने की शैलियों में उत्तरोत्तर हीन अवस्था की द्योतक थी । द्रष्टव्य है कि हर्षचरित्र में कादम्बरी के चौथे और पाँचवें प्रकार के प्रणाम शैलियों को अलग-अलग न कहकर "शेखरी भवन्तु पादरजांसि" वाक्य में ही दोनों का समावेश कर लिया ग गया है ।[145]

बाणभट्ट एक अन्य स्थान पर सम्राट् और राजाओं के बीच पाँच प्रकार के सम्बन्धों का उल्लेख करता है । उसके अनुसार सम्राट् के दोनों चरण प्रणत न होने वाले लोकपालों पर क्रोध के कारण मानों अत्यन्त लाल थे । समस्त नरपतियों के मुकुटों में अधिक पान किये हुए पद्मराग मणि की प्रभा को मानो वमन कर रहे थे। समस्त तेजस्वियों के अस्त हो जाने के कारण मानों सन्ध्या को धारण कर रहे थे । समस्त राजाओं के सिर की पुष्परचित माला के मधुरस के प्रवाह को मानों बहा रहे थे, समस्त सामन्तों के केश विन्यास की माला की सुगन्ध में लुभाए हुए भौंरे शत्रुओं के सिर के रूप में मानों क्षणभर भी इन चरणों को नहीं छोड़ते, सेवा में लीन लक्ष्मी के निवास के लिए खिले हुए लाल कमलों के भवनों को मानों बना रहे थे ।[146] उल्लेखनीय है कि इनमें 1. अप्रणत लोकपाल जिन्होंने अधीनता न मानी थी, 2. जो अनुराग से अनुनत हुए थे, 3. उसके तेज से अस्त हुए मंडलवर्ती या माँडलिक राजा, 4. अन्य अवशिष्ट राजसमूह तथा 5. समस्त सामन्त लोग थे । कादम्बरी में बाणभट्ट राजशूद्रक को "विधेयीकृतराजकसंमण्डल"[147] पद से सुशोभित करते

हुए इस ओर संकेत किया है जिसमें मण्डल सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इसी को हर्षचरित में "सर्वतोऽस्त्विमण्डलास्तमयतंध्या मित्र" कहा गया है।

मंडल नीति का विकास कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पाया जाता है जिसके अनुसार विजीगीषु राजा को मित्र, शत्रु, उदासीन राजाओं के साथ यथोचित व्यवहार करके उन्हें शासन तन्त्र के अनुकूल बनाना आवश्यक है।[148] देवहूति का मन्तव्य है कि मण्डलवर्ती शासक ऐसे अधीनस्थ शासक थे जिनमें कुछ सामन्त और महासामन्त होते थे, कुछ सीमावर्ती मित्र राजा होते थे। कुछ का सम्राट् से क्षैतिज सम्बन्ध और कुछ का समानान्तर सम्बन्ध होता था।[149]

सामन्तों के परिचारिकीकरण और प्रणामागमन के अतिरिक्त बाण के साहित्य से सामाजिक कर्तव्यों की झलक भी प्राप्त होती है। कादम्बरी में राजा शूद्रक के राजदरबार में ऐसे सामन्तों का वर्णन आता है जो राजा के मनोरंजन में भाग लेते थे। बाण लिखता है कि राजा शूद्रक अनेक राजपुत्रों के साथ आमोद-प्रमोद में लगा रहता था, जो अवस्था, विद्या तथा आभूषणों में उसी के समान थे जो मूर्धाभिषिक्त राजवंशों में उत्पन्न थे। अनेक कलाओं के मनन से परिपक्वबुद्धि तथा अत्यन्त प्रखर थे। वे व्यावहारिक, शूद्रक के प्रति आसक्त शिष्ट परिहास करने में कुशल, संकेत और आंगिक चेष्टाओं के ज्ञाता तथा काव्य, नाटक, कथा, कहानी चित्र लेखन और व्याख्यान आदि क्रियाओं में निपुण थे। इस प्रकार की मित्र मंडली में ही नाना प्रकार की क्रीड़ाओं और परिहासों में वह सुख से समय बिताता था।[150] इससे प्रतीत होता है कि सामन्तों के द्वारा राजा का मनोरंजन करना उनका एक कर्तव्य था। एक अन्य स्थान पर बाण लिखता है कि शूद्रक दरबार से उठकर विश्वस्त राजकुमारों के साथ महल के भीतरी भाग में गया। व्यायामभूमि में जाकर अपनी ही अवस्था वाले राजकुमारों के साथ थोड़ा व्यायाम किया।[151] तत्पश्चात् भोजन के समय पंक्ति में बैठने योग्य राजाओं के साथ उसने मनोनुकूल रसों का स्वाद लेते हुए सन्तुष्ट होकर भोजन क्रिया समाप्त की।[152]

ऐसा संभव है कि इस प्रकार के राजकुमारों की श्रेणी हर्षचरित में वर्णित कुमारगुप्त एवं माधवगुप्त के समान रही हो जिसके विषय में बाण लिखता है कि कुमारगुप्त एवं माधवगुप्त अन्तःपुर में प्रवेश करके अपने चार अंगों से तथा सिर से पृथ्वी का स्पर्श करते हुए प्रणाम किया । सम्राट् प्रभाकरवर्द्धन ने उन दोनों को आदेश दिया आज से आप दोनों राजकुमारों के अनुगामी हुए । आपकी जो आज्ञा यह कहकर पृथ्वी की ओर सिर झुकाते हुए दोनों ने उठकर राज्यवर्द्धन और हर्ष को प्रणाम किया । इन दोनों ने अपने पिता को भी प्रणाम किया । उसी समय से लेकर वे दोनों राजकुमारों की आँखों से ओझल नहीं होते ।[153] ये दोनों राजकुमार मालवराज के पुत्र थे जिनके विषय में प्रभाकरवर्द्धन ने राज्यवर्द्धन एवं हर्ष को आदेश दिया था कि इन दोनों के साथ आप लोग भी सामान्य परिजनों जैसा व्यवहार नहीं रखेंगे ।[154]

प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि पराजित राजाओं को कन्योपायन-दान करना पड़ता था । किन्तु बाण इस प्रकार के दान का कोई उल्लेख नहीं करता । संभवतः बाण के समय पराजित राजा अपने पुत्रों को सम्राट् को सौंप देते थे जैसा कि मालवराज ने कुमारगुप्त और माधवगुप्त को प्रभाकरवर्द्धन के हाथ में सौंपा था । शर्मा का मन्तव्य है कि इसका उद्देश्य शायद यह था कि उन्हें राजकीय परम्पराओं और पद्धतियों का प्रशिक्षण दिया जा सके जिससे उनमें अपने प्रभु के प्रति भक्ति और निष्ठा उत्पन्न हो ।[155] इस प्रकार ऐसा कहा जा सकता है कि उक्त परिचारिकीकरण, प्रणामागमन तथा राजकुमारों का समर्पण आदि सम्बन्ध शत्रु महासामन्तों के ही रहे होंगे । इस विषय में उल्लेखनीय है कि कौटिल्य ने "शत्रु" शब्द से कहे जाने वाले सामन्तों के तीन प्रकार बताये हैं : 1. अमित्रभाव रखने वाला सामन्त शत्रुभावि, 2. मित्रभाव रखने वाला सामन्त मित्रभावि तथा 3. भृत्यभाव रखने वाला सामन्त भृत्यभावि ।[156] इस दृष्टि से बाण ने जिस प्रकार का व्यवहार शत्रु महासामन्तों के साथ करने का उल्लेख किया है उससे कौटिल्य

के शत्रुभावि तथा भृत्यभावि सामन्तों की झलक प्राप्त होती है । सेना के साथ जाने वाले सामन्तों के साथ राजा के व्यवहार का वर्णन जब हर्षचरित में करता है उससे राजा और सामन्तों के मध्य शिष्टाचार का स्पष्ट चित्र प्राप्त होता है । हर्षचरित में बाण लिखता है कि सैन्य अभियान के समय सेना का निरीक्षण करने के लिए सम्राट् हर्ष के बाहर आते ही राजा लोग प्रणाम करने लगे । विनय के कारण उनका शरीर झुक गया । प्रणाम करते हुए राजसमूह में किसी तिहाई खुले हुए नेत्रों की दृष्टि से, किसी को कटाक्ष या अपांग दृष्टि से, किसी को समग्र दृष्टि से, किसी को और अधिक ध्यान से देखते हुए, किसी को हल्की मुस्कराहट से, किसी को और अधिक सुख की प्रसन्नता से, किसी को चतुराई भरे शब्दों से, किसी को कुशल प्रश्न पूछकर, किसी को प्रणाम के उत्तर में स्वयं प्रणाम करके, किसी को उन्मत्त भ्रू सहित दृष्टिपात से और किसी को आज्ञा देकर अपने प्रणय का दान करके उनके मानधनी प्राणों को मानों सम्राट् मोल ले रहे थे, इस प्रकार वीरों के वीर सम्राट् ने राजसमूह को योग्यता के अनुसार विभक्त किया ।[157] बाण के इस वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष शत्रुभावि, मित्रभावि तथा भृत्यभावि आदि जैसे सामन्तों की अनेक श्रेणियों को मान, पद और योग्यता के अनुसार यथोचित शिष्टाचार कर रहे थे ।

हर्षचरित एवं कादम्बरी से ज्ञात होता है कि सामन्तों को विशेष अवसरों विवाह, पुत्र जन्म आदि पर उपस्थित होना आवश्यक होता था । हर्षचरित में बाण लिखता है कि हर्ष के जन्मोत्सव पर कहीं मतवाली कटक-कुट्टनियों को आर्य सामन्तों के गले में हाथ डाले देखकर राजा भी हँस पड़ते ।[158] चन्द्रापीड के जन्मोत्सव पर समस्त सामन्त, रनिवास की समस्त स्त्रियाँ, नगरजन, राजपुरुष आदि सभी भावविभोर होकर नाचने लगे ।[159] हर्षचरित से ज्ञात होता है कि उत्सव में सामन्तों की स्त्रियाँ भी भाग लेती थीं । बाण लिखता है कि हर्ष के जन्मोत्सव के दूसरे दिन सामन्तों की हजारों स्त्रियाँ राजकुल में आती हुई दिखायी पड़ी । उनके पीछे अनेक नौकर-चाकर थे जो विभिन्न प्रकार के उपहार लिये हुये

थे । वे आकर अपने मणिनूपुरों की आवाज से दिशाओं को मुखरित करती हुई नाचने लगी ।[160] राज्यश्री के विवाह के अवसर पर अनेक सामन्त स्त्रियों के कार्यों का विस्तृत विवरण हर्षचरित से प्राप्त होता है । बाण कहता है कि सामन्तों की सती रूपवती स्त्रियाँ सुहावने वेश पहने और माथे पर सिन्दूर लगाये सूर्योदय से ही पहुँच गयी थीं । कुछ मंगलाचार के गीत गा रही थीं, कुछ तरह-तरह के रंगों में कण्ठियों के डोरों को रंग रही थीं, कुछ कलशों पर चित्र बना रही थीं, कुछ विवाह के लिए ऊनी और सूती लच्छियाँ रंग रही थीं, कुछ उबटन तैयार कर रही थीं, कुछ मालायें पिरो रही थीं ।[161]

हर्षचरित से ज्ञात होता है कि सामन्तों की स्त्रियाँ प्रधान रानी के अभिषेक में भी हिस्सा लेती थीं । उसके अनुसार यशोवती ने अपने अनुमरण के पूर्व हर्ष से कहा था कि सेवा में परायण अनेक सामन्तों की पत्नियों ने सुवर्ण के घड़े उठाकर मेरे सिर पर अभिषेक किया है ।[162] इससे ऐसा माना जा सकता है कि सामन्तों के अलावा उनकी स्त्रियों को भी राजा के कार्यों को करने का उत्तरदायित्व जैसा था । सामन्त-गण भी अनेक प्रकार के कामों जैसे फर्श साफ करना, विवाह के वेदी के खम्भों को गाड़ना, लाल वस्त्रों एवं अशोक के पल्लवों से सजाना आदि काम कर रहे थे ।[163] इस प्रकार सामन्तों को सपरिवार सम्राट की परिचर्या करनी पड़ती थी । शुक्रनीति के अनुसार सम्राट् के नाराज होने पर सामन्तों की पदवी छीनकर उन्हें हीन सामन्त कर दिया जाता था, किन्तु उनकी आय या भृति उन्हें मिलती रहती थी । उनका दरबार आदि बन्द कर दिया जाता था और जनता के ऊपर शासन का अधिकार समाप्त कर दिया जाता था ।[164]

बाण के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सातवीं शताब्दी ईसवी तक सामन्तों की अनेक श्रेणियाँ हो गयी थीं । मानसार के अनुसार सामन्त, महासामंत, मांडलिक, राजा, महाराजा, महाराजाधिराज, चक्रवर्ती, सम्राट् आदि के लिए भिन्न भिन्न आकार के मुकुट और पट्ट (पत्रपट्ट, रत्नपट्ट, पुष्पपट्ट) आदि हुआ

करते थे जिन्हें पहचानकर प्रतिहार लोग दरबारियों को यथोचित आसन और सम्मान देते थे ।[165] ऐसा प्रतीत होता है कि बाण के समय तक आते-आते सामंत और महा-सामन्त शब्द उपाधि के रूप में भी प्रयोग होने लगा था ।[166] भास्कर वर्मन् के कोषाध्यक्ष दिवाकरप्रभ को महासामन्त की उपाधि प्रदान की गई थी ।[67] सम्राट् हर्ष के मधुबन ताम्रपत्र अभिलेख से ज्ञात होता है कि स्कन्दगुप्त को महाप्रमातार दूतक जैसी प्रशासनिक उपाधियों के साथ सम्मानात्मक महासामन्त की उपाधि भी प्रदान की गयी है ।[168] महत्वपूर्ण विषय यह है कि इस काल में अधिकारियों एवं अधीनस्थ सरदारों को "प्राप्त-पंच-महाशब्द" जैसी आडम्बरयुक्त उपाधि भी प्रदान करने प्रमाण प्राप्त होता है । भास्करवर्मन् के एक दानपत्र के लेखक को "प्राप्त-पंच-महाशब्द" की उपाधि से विभूषित किया गया है ।[169] राष्ट्रकूट सरदार नन्नराज अपने 631-32 ईसवी के एक दानपत्र अभिलेख में कहता है कि उसने अपने पुरुषार्थ के बल पर पंचमहाशब्द की उपाधि को प्राप्त किया ।[170]

उल्लेखनीय है कि मानसोल्लास से ज्ञात होता है कि पंचमहाशब्द से तात्पर्य पाँच वाद्ययन्त्रों के प्रयोग से है जिनमें श्रृंग, तम्मट, शंख, भेरी और जयघंट होता था ।[171] सामन्तों को कतिपय अन्य सुविधाएँ भी प्रदान की जाने लगी । मौर्य काल में मेगस्थनीज के वर्णन से ज्ञात होता है कि गैर सरकारी व्यक्ति को घोड़ा या हाथी रखने की अनुमति नहीं थी, क्योंकि ये जानवर राजा की विशेष सम्पत्ति माने जाते थे ।[172] हाथियों के स्वामित्व पर राजा के एकाधिकार का प्रमाण भी मिलता है किन्तु कामन्दकीय नीतिसार में कहा गया है कि राज्य को उच्चाधिकारियों एवं पुरोहितों के घोड़ों और हाथियों के विषय में जानकारी रखनी चाहिए।[173] नारद स्मृति के अनुसार हाथी, घोड़ों के मालिकों को नुकसान करने पर इसलिए जुर्माना देने से मुक्त किया गया है कि ये प्रजा के रक्षक हैं ।[174] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में जिस कार्य पर राज्य का एकाधिकार होता था बाण के समय तक पूर्ण परिवर्तित होकर सामन्तवाद के ढाँचे में जकड़ गया जिससे केन्द्रीय सत्ता का ह्रास हुआ और क्षेत्रीय शक्तियाँ बलवती हुईं ।

सामन्तवाद का प्रभाव आम जीवन शैली से लेकर केन्द्रीय सत्ता तक दृष्टिगोचर होने लगा । इस प्रथा में सबसे दयनीय स्थिति किसानों की होती चली गयी । बहुत से स्थानों पर दान ग्रहीता अपनी जमीन में खेती करने के लिए पुराने किसानों के स्थान पर नये पट्टेदारों को काम पर लगा देते थे ।[175] गुप्तकालीन अभिलेखीय साक्ष्य से ज्ञात होता है कि राजा को किसानों से बेगार लेने का अधिकार था ।[176] किन्तु बाद में वाकाटक शासकों के अनुदानों से पता लगता है कि धार्मिक ग्रहीताओं को दान किये गये गाँवों में राजा बेगार लेने का अधिकार नहीं रहता था ।[177] इससे स्पष्ट हो जाता है कि दानग्रहीता राजा को कोई कर या बेगार देने से मुक्त था जबकि वे अधीनस्थ गाँवों से कर भी ले सकते थे और बेगार भी ।[178] छठीं शताब्दी ईसवी के अन्तिम चरण में धरसेन प्रथम (लगभग 575 ईसवी) के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि दानग्रहीता को आवश्यकतानुसार बेगार लेने का अधिकार था ।[179]

मनुस्मृति में विधान किया गया है कि राजा कारीगर, शिल्पी, लोहार बोझ ढोने वालों से महीने में एक-एक दिन काम करा ले । मौर्यकाल में बेगार दास और कर्मकर किया करते थे और श्रमिक वर्ग में भण्डार गृहों की सफाई करने वाले, नाप, तौल, चौकीदारी आदि करने वाले लोग सम्मिलित होते थे ।[180] यह सत्य कि आय का एक साधन बेगार भी था । किन्तु इस सन्दर्भ में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि गाँवों में रहने वाले स्वतंत्र किसानों से भी बेगार लिया जाता था या नहीं ।[181] वात्स्यायन के मतानुसार ग्राम प्रधान को बेगार लेने का अधिकार था । कामसूत्र से ही कृषि सम्बन्धी बेगारलेने का उल्लेख मिलता है ।[182] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रहीता और क्षेत्रस्वामी के अधीन कृषकों की स्थिति दासवत हो गयी और दूसरी ओर नये करों के बोझ से स्वतंत्र किसानों की स्थिति भी दयनीय हो गयी ।[183] इसके अलावा राजकीय सेना और अधिकारी जब किसी गाँव में पड़ाव डालते थे अथवा वहाँ से गुजरते थे तब वे अपने खर्चों के लिए नकद या रसद आदि वसूल किया करते थे ।[184] श्रम के रूप में दी जाने वाली सेवा यूरोपीय

सामन्तवादी ढाँचे के समान थी जिसमें रैयत को दो प्रकार के कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था, एक कर देना और दूसरा जिस जमीन पर उसके प्रभु की खेती होती थी उस जमीन पर काम करना ।[187] इस प्रकार गुप्तोत्तर काल में किसानों की स्थिति बिगड़ती गयी जिससे आर्थिक ढाँचा चरमरा गया जो सामन्तवाद के उदय के परिणामस्वरूप देश को विखंडित करके कमजोर बना दिया ।

सन्दर्भ

1. अर्थशास्त्र : 1.5.9, 1.8.12

2. मनुस्मृति : 8.258
साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः सामन्तवासिनः ।
सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसंनिधौ ॥

3. याज्ञवल्क्य0 : 2.150
सीम्नो विवादे क्षेत्रस्य सामन्ताः स्थविरादयः ।

4. रघुवंश : 5.28

5. वही : 6.33
अस्य प्रयाणेषु समग्रशक्तेरग्रेसरैर्वाजिभिरुत्थितानि ।
कुर्वन्ति सामन्तशिखामणीनां प्रभाप्ररोहास्तमयं रजांसि ॥

6. राय, यू.एन. : गुप्त सम्राट और उनका काल, पृ. 114-15

7. यादव, बी0एन0एस0 : सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया, पृ0 136.

8. थपल्याल, के0के0 : इन्सक्रिप्शन्स ऑव द मौखरीज, लेटर गुप्ताज, पुष्यभूतिज एण्ड यशोवर्मन ऑव कन्नौज, पृ0

9. सरकार, डी0सी0 : सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, पृ0 394.

10. पाण्डेय, आर0बी0 : हिस्टारिकल एण्ड लिटरेरी इन्स्क्रप्शन्स नं0 29, पंक्ति 31.

11. गोपाल, लल्लन जी : जर्नल ऑव रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, भाग 1 व 2 अप्रैल 1963 में लिखे "सामन्त इट्स वैरीयिंग सिग्निफिकेंस इन एंशियंट इण्डिया" निबन्ध में।

12. वही

13. दि न्यू फंक एण्ड वेगनर इनसाइक्लोपीडिया, खण्ड 13, पृ0 4830-5.

14. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, खण्ड 9, 1964.

15. कूलबर्न रस्टन : फ्यूडलिज्म इन हिस्ट्री, पृ0 4.

16. वही : पृ0 8.

17. ब्लाक मार्क : फ्यूडल सोसाइटी, भाग 1, पृ0 443-444.

18. शर्मा रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 1.

19. वही : पृ0 2.

20. यादव, बी0एन0एस0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 137.

21. रायचौधरी, एच0सी0: पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑव एंसिएण्ट इण्डिया, संस्करण 1953, परिशिष्ट डी.

22. त्रिपाठी, आर0एस0: हिस्ट्री ऑव कन्नौज, पृ0 21.

23. यादव, बी0एन0एस0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 138.

24. यादव, बी०एन०एस० : पूर्वोद्धरित, पृ० 139.

25. राय, यू०एन० : गुप्त सम्राट् और उनका काल, पृ० 122.

26. रघुवंश : 4.43

ग्रहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः ।
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम् ॥

27. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ० 256.

28. यादव, बी०एन०एस० : पूर्वोद्धरित, पृ० 141.

29. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, पृ०

30. यादव, बी०एन०एस० : पूर्वोद्धरित, पृ० 141.

31. ब्लोच, एम० : फ्लूइल सोसाइटी, जिल्द 1, पृ० 68.

32. सरकार, डी०सी० : सेलेक्ट इन्स्रि०, पृ० 188, पं० 11.

33. शर्मा, रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ० 2.

34. सरकार, डी०सी० : पूर्वोद्धरित, पृ० 192.

35. अर्थशास्त्र : 2.17.1

36. शर्मा, रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ० 5.

37. वही : पृ० 5.

38. वही : पृ० 5.

39. हर्षचरित : 7.362

40. कादम्बरी ॥पूर्वभाग॥ : पृ0 193.

41. हर्षचरित : 7, पृ0 377.

42. शर्मा रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 44.

43. हर्षचरित : 4, पृ0 205.

44. शर्मा, रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 7.

45. फ्लीट : कार्पस इन्स0इन्डिकेरम, जिल्द 3, सं0 55.

46. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 177, 182.

47. वही : पृ0 137.

48. वही : पृ0 171.

49. वही : पृ0 174.

50. वही : पृ0 189.

51. वही : पृ0 174.
सकलस्थला: सामुद्भूका: सगतो परा:
स्वसीमापर्यन्ता: ससस्तुर्वपल्लिका: सलोहलवणाकरा:
पंक्ति 12-13.

52. शर्मा, रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 3.

53. चाइनीज लिटरेचर : 1956, सं0 3, पृ0 153.

54. फ्लीट : पूर्वोद्धरित जिल्द 3, सं0 42, पंक्ति 10.

55. बील, एस0 : द लाइफ आॅव ह्वेनसांग, पृ0 212.

56. ताकाकुसु जे0।अनु0। : ए रेकर्ड आॅव द बुद्धिस्ट रिलीजन, पृ0 65.

57. शर्मा रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 77.

58. वही : पृ0 7-8.

59. फ्लीट : पूर्वोद्धरित, जिल्द 3, सं0 27.

60. वही :

61. अर्थशास्त्र : 2.17.1

62. वही : 5.91.3

63. मनुस्मृति : 7.15-20.

64. बृहस्पतिस्मृति : 19.44

65. बील, एस0 : सी-यु-की 1, पृ0 88.

66. हर्षचरित : 4, पृ0 204.

67. यादव, बी0एन0एस0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 143.

68. वही : पृ0 142.

69. मानसोल्लास : जिल्द 2, पृ0 100-107.

70. शर्मा, रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 75.

71. वही : पृ0 75.

72. फ्लीट : पूर्वोद्धरित, जिल्द 4, सं0 2, पंक्ति 6, सं0 11, पंक्ति 13, सं0 21, पंक्ति 32.

73. मनुस्मृति : 10.81-82.

74. याज्ञवल्क्य : 3.35

75. नारद : 1.56-60.

76. शर्मा, रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 48.

77. सिनहा, जी0पी0 : पोस्ट-गुप्ता पालिटी, पृ0 210.

78. फ्लीट : पूर्वोद्धरित, पृ0 31.

79. एपिग्राफिया इण्डिका : 2, सं0 27, पृ0 343.

80. हर्षचरित : 3, पृ0 171.

81. अग्रवाल, वासुदेवशरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 221.

82. आचार्य, पी0के0 ‌‌‌‌(सं0) : मानसार पृ0 284.

83. हर्षचरित : 7, पृ0 362.

84. देवहूति डी0 : हर्ष ए पालिटिकल स्टडी, पृ0 168.

85. शुक्रनीति : 1.182-86.

86. शर्मा, रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 26.

87. कालबर्न, आर0 : कम्परेटिव स्टडीज इन सोसाइटी एण्ड हिस्ट्री, जिल्द 10, (1967-68) पृ0 364.

88. कालबर्न, आर0 : कम्परेटिव स्टडीज इन सोसाइटी एण्ड हिस्ट्री, जिल्द 10, (1967-68), पृ0 364.

89. वही

90. यादव, बी0एन0एस0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 173.

91. हाउसर : द सोशल हिस्ट्री आॅव आर्ट जिल्द 1, पृ0 206.

92. महाभारत, शान्तिपर्व : 60.24-26, 92.2

93. मनुस्मृति : 4.253

94. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 168.

95. शर्मा, रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 65.

96. यादव, बी0एन0एस0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 173-74.

97. हर्षचरित : 2, पृ0 123, 244, 297, 321.

98. वही : 7, पृ0 366.

99. वही : 5, पृ0 267 "संतप्ताप्तसामन्ते"

100. वही : 6, पृ0 314.

101. वही : 4, पृ0 204.

102. वही : 5, पृ0 257.

103. वही : 2, पृ0 103.

104. हर्षचरित : 3, पृ0 171.

105. अग्रवाल, वासुदेवशरण: हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 43.

106. वही : पृ0 222.

107. हर्षचरित : 6, पृ0 314.

108. वही : 6, पृ0 355.

109. अग्रवाल, वासुदेवशरण: पूर्वोद्धरित, पृ0 43.

110. हर्षचरित : 5, पृ0 257.

111. वही : 2, पृ0 102-03.

112. यादव, बी0एन0एस0: पूर्वोद्धरित, पृ0 137.

113. हर्षचरित : 3, पृ0 171.

114. अग्रवाल, वासुदेवशरण: पूर्वोद्धरित, पृ0 221.

115. कादम्बरी।पूर्वभाग।: पृ0 7.

116. वही : पृ0 7.

117. हर्षचरित : 8, पृ0 413.

118. वासुदेवशरण अग्रवाल: पूर्वोद्धरित, पृ0 189.

119. राय, यू0एन0 : गुप्त-सम्राट् और उनका काल, पृ0 115.

120. एपि0इण्डिका : भाग 6, पृ0 3.

121. हर्षचरित : 6, पृ0 314.

122. शर्मा रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 26.

123. कावेल एण्ड टामस : हर्षचरित, पृ0 168-69.

124. यादव, बी0एन0एस0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 158.

125. हर्षचरित : 6, पृ0 314.

126. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 12.

127. देवहूति, डी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 164.

128. अपराजितपृच्छा : 78.32-34, पृ0 196.

129. हर्षचरित : 7, पृ0 373.

130. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, जिल्द 1, पृ0 343.

131. हर्षचरित : 2, पृ0 130.

132. शर्मा, रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 30.

133. एपि0 इण्डिका : भाग 6, पृ0 3.

134. हर्षचरित : 7, पृ0 366.

135. वही : 7, पृ0 376.

136. वही : 7, पृ0 369.

137. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 242.

138. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 244.

139. वही : पृ0 255.

140. राय, यू0एन0 : पूर्वोद्धरित, पृ0

141. हर्षचरित : 2, पृ0 102-103.

142. अग्रवाल, वासुदेवशरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृष्ठ 44.

143. हर्षचरित : 6, पृ0 344.

144. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 252-253.

145. अग्रवाल, वासुदेवशरण : कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, 1970, पृ0 133-134.

146. हर्षचरित : 2, पृ0 122-123.

147. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 8.

148. अर्थशास्त्र : 7.124-26.18.

149. देवहूति, डी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 162.

150. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 12-13.

151. वही : पृ0 31.

152. वही : पृ0 35.

153. हर्षचरित : 4, पृ0 238-39.

154. हर्षचरित : 4, पृ0 236.

155. शर्मा रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 28.

156. अर्थशास्त्र : 7.124-26.18.

157. हर्षचरित : 7, पृ0 371-372.

158. वही : 4, पृ0 222.

159. कादम्बरी [पूर्व भाग] : पृ0 165-166.

160. हर्षचरित : 4, पृ0 220-21.

161. वही : 4, पृ0 243-44.

162. वही : 5, पृ0 291.

163. वही : 4, पृ0 243.

164. शुक्रनीति : 1.189.

165. मानसार : 49.12-26

166. देवहूति, डी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 164.

167. पाण्डेय, आर0बी0 : हिस्टारिकल एण्ड लिटरेरी इन्स्क्रिप्शन्स, सं0 56, पंक्ति 50.

168. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0

169. पाण्डेय, आर0बी0 : पूर्वोद्धरित, पंक्तियाँ 47-48.

170. अल्तेकर : दि राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ0 7.

171. मानसोल्लास : 49.12-26.

172. शास्त्री, नीलकण्ठ : नन्द-मौर्ययुगीन भारत, पृ0 211.

173. कामन्दकीय नीतिसार : 12.44

174. नारद0 : 11.32

175. फ्लीट जे0एफ0 : पूर्वोद्धरित, जिल्द 4, भूमिका का पृ0 191.

176. मैंटी, एस0के0 : इकनॉमिक लाइफ ऑव नार्दर्न इण्डिया इन गुप्त पीरियड, पृ0 152-53.

177. वही : पृ0 152-53.

178. शर्मा, रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 49.

179. एपिग्राफिया इण्डिका : 11, पृ0 80.

180. मनुस्मृति : 7.138

181. अर्थशास्त्र : 3.69.13

182. शर्मा, रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 51.

183. वही : पृ. 51

184. कामसूत्र : 5.5.5

185. शर्मा रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 53.

186. फ्लीट : पूर्वोद्धरित, जिल्द 3, पृ0 98, पा0टि0 2.

187. ब्लाक मार्क : फ्यूडेल सोसाइटी, पृ0 173.

-------::0::-------

तृतीय अध्याय

सामाजिक व्यवस्था

सामाजिक-व्यवस्था

भारतीय सामाजिक व्यवस्था की प्राचीनतम रूपरेखा वैदिक वाङ्मय में दृष्टिगोचर होती है । छठी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध एवं जैन धर्मों के उदय के साथ समाज को पहली बार परिवर्तनों एवं चुनौतियों का सामना करना पड़ा । महात्मा बुद्ध ने सामाजिक-आर्थिक ढांचे के रूप में जाति और उच्च जाति द्वारा अपने पूर्वजों से प्राप्त की हुई शुद्धता के बीच कोई अन्तर नहीं स्वीकार किया था । आचार-नीति को प्रकट करने की यह व्यक्तिगत इच्छा थी ।[1] बौद्ध धर्म के द्वारा ब्राह्मण प्रधान समाज की जटिल व्यवस्थाओं और कर्मकांडीय व्यवहारों का साधारण लोगों के सामने अनावरण किया गया । इसके साथ नगरीय संस्कृति तथा सामाजिक संगठन शिल्प एवं उद्योगों के विकास ने सामाजिक संगठन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। जिन लोगों के पास पशु और भूमि जैसी स्थायी सम्पत्ति का अभाव था उन्होंने अ अन्य प्रकार के व्यवसाय को अपना कर धन अर्जित किया जिससे वे समाज में आदर के पात्र बनते गये ।[2] ग्राम में शक्ति या नियन्त्रण या तो राजनीतिक मुखिया का था या धनी व्यक्ति का, ब्राह्मण को प्रथम स्थान केवल नाममात्र का प्राप्त था इससे अधिक उसका कुछ भी महत्व नहीं रहा ।[3] सामाजिक परिवर्तन का सूत्रपात वैदिक धर्म से इतर धर्मों के माध्यम से प्रारम्भ हुआ ।[4]

मौर्य युगीन समाज वर्ण के आधार पर स्थित अवश्य था किन्तु श्रम और पेशे पर भी उसका विभाजन आधारित था जैसा कि मेगस्थनीज ने पेशे पर आधारित सात प्रकार की जातियों का उल्लेख किया है ।[5] कतिपय विद्वान् मौर्य साम्राज्य के पतन को सामाजिक प्रतिद्वन्द्विता और प्रतिक्रिया का प्रतिफल मानते हैं, ब्राह्मण और क्षत्रिय प्रतिस्पर्धा बहुत पहले से चली आ रही थी जिससे मौर्य युग में ब्राह्मण वर्ग को मौर्य शासकों की श्रमण समर्थक नीति का शिकार होना पड़ा ।[6] कुछ विद्वानों के अनुसार ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र द्वारा मौर्य शासक की हत्या करके शासन सूत्र संभालना श्रमण समर्थक शासकों के विरुद्ध ब्राह्मणों की प्रतिरोधी भावना थी जिससे

समाज में प्रतिक्रान्ति हुई ।[7] शुंग शासन में ब्राह्मण धर्म का पुनरुद्धार हुआ । पतंजलि तथा मनु जैसे व्यवस्थाकारों ने नई-नई व्यवस्थाएँ समाज को दीं । समाज को कठोर नियमों और व्यवस्थाओं से जकड़ दिया गया तथा समाज की विभिन्न जातियों के लिए उन नियमों का अनुगमन करना अनिवार्य माना गया । यद्यपि मौर्योत्तर काल में यूनानी, बाख्त्री, शक, पह्लव और कुषाण जैसे कबीलों ने भारत पर अनेकशः आक्रमण करके आधिपत्य स्थापित किया किन्तु कालान्तर में इन विदेशी कबीलों का भारतीयकरण हो गया और इन्होंने भारतीय मत-सिद्धान्त और सामाजिक व्यवहार को अपना लिया ।[8] व्यवस्थाकारों ने इन्हें समाज में यथोचित स्थान प्रदान करने का प्रयास किया । मनु ने शकों को वृषल क्षत्रिय मानकर वर्ण व्यवस्था में समाहित करने का प्रयत्न किया ।[9] पतंजलि ने भी शकों को विदेशी होते हुए भी अस्पृश्य नहीं माना है ।[10] ई

ईसवी सन् की चौथी शताब्दी से लेकर छठीं शताब्दी के मध्य गुप्त सम्राटों के शासन काल में समाज में नवीन परिवर्तन हुए । सम्राटों के द्वारा विभिन्न मतावलम्बियों को प्रोत्साहन दिया जाना तथा सभी विचारों वाले लोगों और मतावलम्बियों द्वारा स्वतन्त्र रूप से अपने अपने कार्यों में संलग्न रहना तत्कालीन समाज की विशेषता थी ।[11]

बाणभट्ट के समय सातवीं शताब्दी ईसवी तक आते-आते पुनः सामाजिक जीवन के क्षेत्र में नवीन प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होने लगती हैं । प्राचीन वर्ण-व्यवस्था का वह आधार जिसमें क्षत्रिय को ही शासक माना गया था, सैद्धान्तिक और व्यवहारिक रूप से टूटता जा रहा था । उत्तर और दक्षिण भारत के दोनों खण्डों में अनेक ब्राह्मण तथा अन्य राजवंशों ने शासन किया । सम्राट् हर्ष के पूर्वज पेशे की दृष्टि से व्यापारी वर्ग से सम्बन्धित वैश्य बतलाये गये हैं ।[12] प्रोफेसर रामशरण शर्मा के अनुसार पूर्व-मध्ययुगीन समाज में जो परिवर्तन हुए वे आर्थिक घटनाओं के कारण हुए।[13]

किन्तु केवल आर्थिक घटनाएँ ही परिवर्तन के लिए उत्तरदायी नहीं हैं अपितु सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक कारण भी उत्तरदायी हैं ।[14] ब्राह्मण वर्ग पौरोहित्य कर्म के कारण विभिन्न क्षेत्रों का स्थायी निवासी हो गया । उसे लम्बी यात्रा निषेध थी । इस कारण उसमें भौगोलिक गतिशीलता का अभाव हो गया ।[15] इस युग में समुद्र और यात्रा पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया ।[16] वैश्यों और शूद्रों में कोई विशेष अन्तर नहीं रह गया । इस विषय में अल्तेकर[17], घुर्ये[18] तथा शर्मा[19] एक मत हैं कि वैश्य की स्थिति शूद्रवत् हो गयी थी । भारतीय परम्परा के निर्माण-काल से प्रतिरोधी और मतभेद परक तत्व समाज में बराबर से हैं जो व्यवहारिक पक्ष को प्रभावित करते रहे हैं । ये मतभेद और प्रतिरोध प्रतीक और क्रिया के माध्यम से व्यक्त किये जाते रहे हैं ।[20] इस प्रकार भारतीय सामाजिक व्यवस्था अनेकानेक थपेड़ों और चुनौतियों को झेलते हुए अग्रसर होती रही तथा काल और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनों को स्वीकार भी किया । इसी स्वीकारात्मक क्षमता के कारण मतभेदों और प्रतिक्रियाओं के बीच भारतीय समाज एवं संस्कृति दृढ़ता तथा सफलता को प्राप्त करके गतिशील रही जिसे समाज की मुख्य विशेषता कहा जा सकता है ।

बाणभट्ट के साहित्य में उल्लिखित स्रोतों में वर्ण-व्यवस्था के विषय में परस्पर विरोधी विचार व्यक्त किये गये हैं । हर्षचरित में एक ओर बाण लिखता है कि सम्राट पुष्यभूति के श्रीकण्ठ नामक जनपद में ब्राह्मण आदि की मर्यादा एक में एक घुली-मिली न थी, वहाँ सतयुग की व्यवस्था थी ।[21] दूसरी ओर श्रीकण्ठ जनपद के विषय में लिखता है कि यज्ञ की अग्नि से उठे हुए मेघ की भाँति धुएँ की जलधार से धुलकर मानों वर्णों की संकीर्णता मिट गयी थी ।[22] कादम्बरी में बाण लिखता है कि उज्जयिनी में सुवर्ण ब्राह्मणादि वर्णों की नहीं, क्योंकि सांकर्य दोष न रहने के कारण सब वर्ण शुद्ध थे ।[23] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वर्ण-व्यवस्था के आधार स्तम्भ टूट रहे थे क्योंकि साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि वर्ण-व्यवस्था की रक्षा करना राजा का कर्तव्य माना जाने लगा था ।

हर्षचरित में राजा पुष्यभूति के विषय में लिखा गया है कि उसने समस्त ब्राह्मणादि वर्णों के नियमार्थ धनुष धारण किया ।[24] इसी प्रकार कादम्बरी में बाण लिखता है कि राजा तारापीड ने अज्ञान के प्रसार से मलिन शरीर वाले और पाप से भरे कलिकाल द्वारा धर्म को मूल से चलायमान किये जाने पर उसे रोक कर श्रुति और स्मृति का विधान प्रवर्तित कर धर्म को फिर से स्थापित किया ।[25] सम्राट हर्ष के मधुबन एवं बांसखेड़ा ताम्र प्र पत्र अभिलेखों में प्रभाकर वर्द्धन को वर्णाश्रम व्यवस्था की पुनर्प्रतिष्ठा का श्रेय दिया गया है ।[26] हर्षचरित का लेखक हर्ष के विषय में लिखता है कि वह मनु के समान वर्णाश्रम मर्यादा के रक्षक थे ।[27] बाण के पूर्व भी राजाओं के द्वारा वर्णाश्रम-व्यवस्था की पुनर्प्रतिष्ठा की परम्परा प्राप्त होती है । मौखरि शासक ईशान वर्मा के हरहा पाषाण अभिलेख ।विक्रम 611 - 554 ई०। में आदित्य वर्मा दावा करता है कि उसने वर्णाश्रम व्यवस्था को सुदृढ़ किया ।[28] इसी प्रकार सर्व वर्मा के असीरगढ़ ताम्र मुद्रा लेख[29] ।लगभग छठीं शताब्दी ईसवी का उत्तरार्द्ध। में, अवन्तिवर्मा के सोहनाग मुद्रालेख[30] ।लगभग छठीं शताब्दी ईसवी सन् का उत्तरार्द्ध। में तथा अवन्तिवर्मा के कन्नौज मृण्मुद्रा लेख[31] ।लगभग छठीं शताब्दी ईसवी सन् का उत्तरार्द्ध। में महाराज हरिवर्मा को वर्णाश्रम व्यवस्था की पुनर्प्रतिष्ठा में प्रवृत्त बताया गया है । ऐसा अनुमान किया जाता है कि गुप्त वंश के अवसान के बाद सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में बहुत उथल-पुथल मची हुई थी जिसके फलस्वरूप विभिन्न वर्ण के लोग अपने-अपने प्रारम्भिक कर्तव्यों से च्युत हो रहे थे । इस प्रवृत्ति को राजाओं ने रोकने का प्रयास किया ।

सामाजिक जीवन में व्याप्त अव्यवस्था और संक्रमण के सन्दर्भ में अभिलेखीय अन्य साक्ष्य भी परोक्ष रूप से प्रकाश डालते हैं । मौखरि शासक ईश्वरवर्मा के जौनपुर अभिलेख ।लगभग छठीं शताब्दी ईसवी सन्। में कहा गया है कि उसने प्रजा की रक्षा अनेक उपद्रवों से करके उन्हें अपने गुणों से आनन्दित किया ।[32] ईशान वर्मा के हरहा अभिलेख ।विक्रम 611=554 ईसवी सन्। से ज्ञात होता है कि उसने कलियुग के थपेड़ों के बीच फंसे हुए भग्न नौका की भाँति संसार को अपनी गुण रूपी रस्सियों

से खींचकर बचाया था ।[33] इसी अभिलेख में अन्यत्र कहा गया है कि कलियुग के दुष्प्रभाव से आच्छादित सत्पथ की रक्षा उसने अपने सद्गुणों से की ।[34] उल्लेखनीय है कि कलियुग के प्रभाव के फलस्वरूप घटित वर्णाश्रम व्यवस्था सम्बन्धी संभ्रम की स्थिति का उल्लेख पुराणों में भी मिलता है ।[35] इस प्रकार अभिलेखीय एवं साहित्यिक उद्धरणों से यह ज्ञात होता है कि बाण के समय तक विभिन्न वर्णों के लोग शास्त्रों में विहित अधिकारों और कर्तव्यों के अनुरूप आचरण नहीं कर रहे थे ।

वैदिक युग में उदित हुई वर्णव्यवस्था तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक आकर पूर्णतः जन्मना और वंशानुगत हो गयी, यद्यपि वंशगत स्वरूप सूत्रों के युग से ही बनने लगा था जो कालान्तर में आकर नियोजित और सुदृढ़ हुआ ।[36] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया है जिसमें वर्णगत कर्मों का भी उल्लेख है ।[37] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्य-काल में भी वर्ण-व्यवस्था पर आधारित समाज पूर्ववत् बना हुआ था तथा उसके लिए नियम आबद्ध किये गये थे । प्रारम्भिक स्मृतियों में वर्ण-व्यवस्था सम्बन्धी नियमों का विस्तृत ब्यौरा प्राप्त होता है । मनु ने वर्ण-व्यवस्था की दैवीय उत्पत्ति को स्वीकार किया है ।[38] वस्तुतः वर्णाश्रम-धर्म का पुनर्विकास और संगठन शुंगों के युग से प्रारम्भ हुआ जो बाद तक बराबर चलता रहा ।[39]

बाण के हर्षचरित से ज्ञात होता है कि उस समय तक जन्मना वर्ण-व्यवस्था का आधार सुदृढ़ हो चुका था । हर्षचरित के अनुसार दुर्वासा को प्रतिशाप देने को उद्यत सावित्री से सरस्वती ने कहा कि संस्कारशून्य होने पर भी जाति के कारण ही ब्राह्मण हमारे मान्य हैं ।[40] चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों का उल्लेख किया है ।[41]

ब्राह्मण

बाणभट्ट के साहित्य में वर्णित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मणों की स्थिति समाज में प्रतिष्ठाजनक थी । बाणभट्ट ने हर्षचरित एवं कादम्बरी में अपने

वंश-वर्णन के सन्दर्भ में जिस प्रकार का ब्राह्मणों का चित्र खींचा है उससे पारम्परिक वर्ण-व्यवस्था के स्थायित्व की पुष्टि होती है। बाण के पूर्वज अध्ययन, अध्यापन यज्ञादि अनुष्ठान आदि में अपना समय व्यतीत करते थे। हर्षचरित में वत्स वंशीय ब्राह्मणों के विषय में लिखता है कि आदि पुरुषों ने अपने चरणों - कठादि वैदिक शाखाओं का अध्ययन करने वालों की उन्नति की जो समस्त कलाओं के आगम (अध्ययन) से गम्भीर था वे गृहमुनि अर्थात् गृहस्थ होते हुए भी मुनिवृत्ति रखने वाले उन्होंने समस्त अन्य (वैदिक)शाखाओं के सन्देहों को भी दूर किया था, सारे ग्रन्थों को ग्रन्थियाँ भी उन्होंने उद्घाटित की थी, वे कवि, वक्ता और मत्सररहित थे दूसरों के सुभाषित को सुनने के शौकीन थे, नृत्य, गीत और वाद्य से बाहर नहीं थे, ऐतिह्य में तृष्णारहित न थे।[42] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि बाण के समय ब्राह्मणों में अध्ययन की प्रवृत्ति बड़ी गम्भीर थी और वे विविध प्रकार के शास्त्रों के अध्ययन में रत रहते थे। सम्राट् हर्ष से सम्मान पाकर अपने गाँव वापस लौटने पर बाण ने जिस प्रकार अपने स्वजनों से समाचार पूछा है उससे तत्कालीन अध्ययन, अध्यापन एवं यज्ञ सम्बन्धी ब्राह्मणों के प्रधान कर्मों का विधिवत बोध होता है। वह लिखता है कि आप लोग इतने दिनों तक सुख से तो रहे? सम्यक् सम्पादन द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने वाले यज्ञ के कार्य बिना किसी विघ्न बाधा के तो होते रहे? यज्ञ की अग्नियों को नियमानुसार मन्त्र के साथ हविष भोजनार्थ तो मिल रहा है? बटु लोगों का समय से अध्ययन तो चल रहा है? वेदों का प्रति दिन होने वाला अभ्यास विच्छिन्न तो नहीं होता? यज्ञ सम्बन्धी विधा और कर्मों के प्रति वही पुराना भाव तो है न? परस्पर एक दूसरे को जीतने की इच्छा से निरन्तर दिन को सफल करके आदर-प्रदर्शनपूर्वक व्याकरण शास्त्र के वे ही व्याख्यान मण्डल तो जम रहे हैं न? दूसरे कार्यों को छोड़कर न्यायशास्त्र पर विचार करने वाली गोष्ठी तो पुरानी चल रही है न? मीमांसा शास्त्र में रस तो वही मिलता है न? नये नये सुभाषितों की रचना तो हो रही है न?[43] बाण द्वारा किये गये प्रश्नों से ब्राह्मण परिवारों में निरन्तर होने वाले पठन-पाठन और शास्त्रचिन्तन के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि

प्राचीन काल में जो ब्राह्मणों का घर गुरुकुल के रूप में विकसित हो चुका था उसकी पुष्टि बाण के समय भी मिलती है । इसी सन्दर्भ में बाण अपने भाइयों के शास्त्राभ्यास की ओर संकेत करता है कि वे व्याकरणशास्त्र, वृत्ति, वार्तिक, न्याय, इतिहास आदि का गम्भीर अध्ययन किया है ।[44] बाण की कादम्बरी से भी ब्राह्मणों के पारम्परिक वर्ण-धर्म का संकेत मिलता है ।

बाण अपने पूर्वज कुबेर के विषय में लिखता है कि वह वेदपाठी, याज्ञिक तथा समस्त शास्त्र एवं स्मृतियों का ज्ञाता था जिसके घर पर ब्रह्मचारी यजुर्वेद और सामवेद का पाठ किया करते थे ।[45] अर्थपति नामक पूर्वज के विषय में बाण लिखता है कि उनके यहाँ प्रतिदिन नये-नये शिष्य वेद के अध्ययन के लिए आया करते थे जो दान-दक्षिणा से युक्त बड़े बड़े यज्ञों को सम्पादित करते थे ।[46] बाण स्वयं अपने पिता चित्रभानु के विषय में कहता है कि वह निरन्तर यज्ञ कर्म के सम्पादन में रत रहा करते थे ।[47] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि विद्या अध्ययन की प्राचीन परम्परा बाण के समय तक ब्राह्मणों के निजी गुरुकुलों में जीवित थी । सम्राट् हर्ष की रत्नावली नाटिका में भी उल्लिखित है कि श्रेष्ठ ब्राह्मण विविध प्रकार के यज्ञों से देवताओं को प्रसन्न करें ।[48] चीनी यात्री ह्वेनसांग ने ब्राह्मणों को शुचि जीवन यापन करने वाला कहा है ।[49] ब्राह्मण वर्ग के विषय में वह आगे कहता है और उनका देश में बहुत सम्मान था ।[50] पवित्रता के विषय में बाण ब्राह्मणों की दो श्रेणियों का उल्लेख करता है जो खान-पान में सामाजिक भेदभाव का व्यवहार करते थे । इनमें प्रथम श्रेणी में ऐसे ब्राह्मण थे जिन्होंने पंक्ति-भोजन छोड़ दिया था ऐसे लोग संभवतः सामूहिक खान-पान में हिस्सा न लेकर मात्र अपने वर्ण के साथ भोजन ग्रहण करते थे ।[51] द्वितीय श्रेणी के ब्राह्मण तीनों वर्णों क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के यहाँ भोजन का परित्याग कर चुके थे, वे मात्र अपने गोत्र का अन्न संभवतः ग्रहण करते थे अथवा स्वयम्पाकी रहना पसन्द करते थे ।[52] सामाजिक इतिहास की दृष्टि से इतना निश्चित ज्ञात होता है कि इस प्रकार भोजन के छुआछूत के विषय में ब्राह्मण-परिवारों में विशेष प्रकार की रोकथाम और मर्यादाएँ सातवीं शताब्दी

ईसवी में प्रचलित हो चुकी थीं ।[53] बाण के समय तक ब्राह्मण अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन के अलावा अतिरिक्त कार्यों में भी लग चुके थे । कुछ ब्राह्मण शासन कार्यों में संलग्न थे । कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि पुरोहित के रूप में ब्राह्मणों की नियुक्ति होती थी ।[54]

हर्षचरित में भी पुरोहित की चर्चा करते हुए बाण कहता है कि हर्ष के जन्मोत्सव पर कृतयुगीन प्रजापतियों की भाँति प्रजावृद्धि के लिए वैदिक ब्राह्मण उपस्थित हुए । साक्षात् धर्म के समान पुरोहित हाथ में शान्तिकर्म के लिए जल और फल लिए खड़े हो गये ।[55] इसके अलावा बाण अमात्य पद पर भी ब्राह्मणों की नियुक्ति का उल्लेख करता है । कादम्बरी में राजा तारापीड का प्रधानामात्य शुकनास ब्राह्मण था ।[56] हर्षचरित में बाण लिखता है कि सम्राट् हर्ष को विभिन्न प्रकार के व्यक्ति भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखते हैं, वहीं उसने लिखा है कि ब्राह्मण कहते हैं कि ये हमारे भृत्य हैं ।[57] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि राजाओं के द्वारा ब्राह्मणों को विशेष आदर-सत्कार प्राप्त था । सम्राट् हर्ष के राजदरबार में अनेक ब्राह्मण थे जो विभिन्न प्रकार से राजकार्य में सहायता करते थे । धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करवाने के बदले पुरस्कार-स्वरूप हर्ष ब्राह्मणों को प्रभूत दान देता था ।[58] उल्लेखनीय है कि प्राचीन काल से ब्राह्मणों को प्रतिग्रह (दान) लेने का विशेषाधिकार प्राप्त था । धर्मसूत्रों के अनुसार प्रतिग्रह का एकमात्र अधिकार ब्राह्मण को ही था ।[59] कौटिल्य ने भी प्रतिग्रह का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही प्रदान किया है ।[60] दान के साथ-साथ ब्राह्मणों को करमुक्त होने का अतिरिक्त आर्थिक विशेषाधिकार प्राप्त था । कौटिल्य के अनुसार ऋत्विक् , आचार्य, पुरोहित और श्रोत्रिय राजकर से मुक्त थे ।[61] इस विषय में मनु ने व्यवस्था दी है कि अतिनिर्धन राजा को भी श्रोत्रिय (वेदपाठी) से कर नहीं ग्रहण करना चाहिए ताकि देश में रहता हुआ वह भूख से पीड़ित न हो ।[62] सातवाहन शासक सातकर्णि (द्वितीय) के विषय में कहा जाता है कि उसने अनेक यज्ञ किये और ब्राह्मणों को प्रचुर सम्पत्ति दान में प्रदान किया ।[63] नासिक अभिलेख से ज्ञात होता है कि गौतमी पुत्र सात-

कर्णि ने धर्मोचित कर लगाये और द्विजों के कुटुम्बों का विवर्द्धन किया था ।[64] बाण-भट्ट ने अपने साहित्य में विभिन्न अवसरों पर दान का उल्लेख किया है । हर्षचरित में सम्राट् हर्ष को दिग्विजय के समय ब्राह्मणों को दान देते हुए उल्लिखित किया गया है ।[65] कादम्बरी में चन्द्रापीड के जन्मोत्सव पर तारापीड द्वारा ब्राह्मणों को करोड़ों गाय और सुवर्ण दान देने का उल्लेख मिलता है ।[66]

उल्लेखनीय है कि बाण के समय तक राजाओं और धनाढ्य व्यक्तियों द्वारा सम्पादित यज्ञों तथा अनुष्ठानों में ब्राह्मणों की विशिष्ट भूमिका थी । ब्राह्मणों को दान और कभी-कभी भूमि या ग्राम दान दिये जाने का उल्लेख अभिलेखों में भी प्राप्त होता है । भूमि प्राप्त करने से न केवल ब्राह्मणों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई अपितु सामाजिक विशेषाधिकार के क्षेत्र में भी बढ़ोत्तरी हुई । संभवतः इसी प्रकार के विशेषाधिकार के कारण ब्राह्मणों द्वारा प्रशासित क्षेत्र में राज्य के कर्मचारियों का हस्तक्षेप निषेध था । शर्मा के अनुसार गुप्तोत्तर काल के भूमिदानों में सर्वाध्यक्ष के पद पर काम करने वाले सरकारी अमलों तथा वेतनभोगी नियमित सैनिकों और छत्रधरों को इस आशय के आदेश दिये गये हैं कि वे ब्राह्मणों के जीवन-क्रम में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें ।[67] हर्ष के मधुबन एवं बाँसखेड़ा अभिलेखों में ब्राह्मणों को ग्राम दान दिये जाने का उल्लेख मिलता है ।[68] ब्राह्मणों को अग्रहार ग्राम मिलने से उनके अपने कर्तव्यों में किसी प्रकार की शिथिलता का कोई संकेत नहीं मिलता जैसा कि रामशरण शर्मा का मन्तव्य है कि जैसे-जैसे भूमिधर ब्राह्मणों की संख्या बढ़ती गयी, उनमें से कुछ लोग धीरे-धीरे पुरोहिताई का काम छोड़कर अपना ध्यान मुख्यतः अपनी भूसम्पत्ति की व्यवस्था पर केन्द्रित करने लगे । ऐसे ब्राह्मणों के लिए सांसारिक काम काज धार्मिक कर्तव्यों से अधिक महत्वपूर्ण हो गये ।[69] जबकि इसके विपरीत ह्वेनसांग लिखता है कि ब्राह्मण अपने सिद्धान्तों का पालन करते, संयम के साथ रहते तथा कड़ाई के साथ शुद्धाचार तथा अनुष्ठान का ध्यान रखते थे ।[70]

हर्षचरित से ज्ञात होता है कि वत्स वंशीय ब्राह्मण अपने चरणों - कठादि

वैदिक शाखाओं के अध्ययन करने वालों की उन्नति की ।[71] दिवाकरमित्र के विषय में बाण लिखता है कि वह मैत्रायणी शाखा के अध्येता ब्राह्मणश्रेष्ठ और विद्वान् थे ।[72] विद्वान् ऐसा मानते हैं कि सातवीं शताब्दी ईसवी में ब्राह्मण अपने गोत्र, प्रवर तथा चरण (वैदिक शाखा विशेष) के नाम से जिससे उनका सम्बन्ध था, प्रसिद्ध थे ।[73] जिसकी पुष्टि अनेक भूमि दान-पत्रों से होती है । ब्राह्मणों के चरणों (वैदिक शाखाओं) से यही इंगित होता है कि वे वैदिक वाङ्मय की किसी विशेष शाखा के विशेषज्ञ होते थे । हर्ष के बाँसखेड़ा ताम्रपत्र में भारद्वाज गोत्र के जिन दो ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है उनमें से भट्ट बालचन्द्र का चरण बाह्वृच था जो ऋग्वेद से सम्बन्धित है और दूसरे ब्राह्मण भट्ट भद्रस्वामी का छान्दोग्य चरण जो सामवेद से सम्बन्धित था ।[74] इसी प्रकार मधुबन ताम्रपत्र अभिलेख में उल्लिखित भट्ट वातस्वामी और भट्ट शिवदेवस्वामी इन दो ब्राह्मणों में से प्रथम सावर्णि गोत्रीय छान्दोग्य चरण से और दूसरा विष्णुवृद्धि गोत्र और बाह्वृच चरण से सम्बन्धित थे ।[75] यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि हर्ष के दोनों ताम्रपत्र अभिलेखों में जिन दो-दो ब्राह्मणों को दान दिया गया है उनमें प्रत्येक अभिलेख का एक ब्राह्मण ऋग्वेदी और दूसरा सामवेदी है । इससे इस बात का संकेत मिलता है कि ब्राह्मणों में ऋग्वेद, सामवेद का अध्ययन की परम्परा विशेष रूप से थी । बाण ने भी ऋग्वेद, सामवेद का विशेष उल्लेख किया है । दुर्वासा ने मन्दपाल नामक मुनि से झगड़ा कर लेने पर सामगान करते हुए स्वर-भंग कर दिया ।[76] बाण के चारों चचेरे भाई गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल का सामवेद का अध्ययन करने से प्रकाशमान थे ।[77] इसके अतिरिक्त ब्रह्मा की गोष्ठी में कुछ ने ऋचाओं का पाठ किया, कुछ ने पूजन के यजुर्वेदीय मन्त्र पढ़े, कुछ ने प्रशंसामूलक सामों का गान किया ।[78] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वेद और सामवेद का विशेष महत्व बढ़ गया था । अभिलेखीय साक्ष्यों से ब्राह्मणों के विषय में एक अन्य सूचना मिलती है, वह उपाधि है । हर्ष के बांसखेड़ा और मधुबन ताम्रपत्र अभिलेख में जिन ब्राह्मणों का उल्लेख आता है उनके नाम के आगे भट्ट और स्वामी उपाधि का प्रयोग किया गया है । विद्वान् ऐसा मानते हैं कि भट्ट विद्वतासूचक उपाधि थी ।[79] चटर्जी के अनुसार मीमांसा दर्शन

शास्त्र में विशेषज्ञता के बाद भट्ट उपाधि प्रदान की जाती थी ।[80] विद्वान् स्वामी का शाब्दिक अर्थ "मालिक" से लगाते हैं जो भूस्वामित्व का द्योतक रहा होगा ।[81] इस प्रकार ब्राह्मणों को राजनीतिक, धार्मिक, बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में अनेकानेक सुविधाएँ प्राप्त हुईं जिन्हें उनके विशेषाधिकार के रूप में मान्यता प्राप्त हुई ।

क्षत्रिय

समाज में वर्ण-व्यवस्था के आधार पर द्वितीय स्थान क्षत्रियों को प्राप्त था जिनके विषय में कौटिल्य लिखता है कि क्षत्रिय का धर्म है पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, शस्त्रबल से जीविकोपार्जन करना और प्राणियों की रक्षा करना ।[82] मनु के अनुसार क्षत्रियों का कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना और विषयों में आसक्त न होना था ।[83] बाण के साहित्य में क्षत्रियों के विषय में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता । एक स्थान पर बाण आलंकारिक शैली में क्षत्रिय शब्द का उल्लेख करता है । वह लिखता है कि सन्ध्या के समय सूर्य की लालिमा ऐसे लग रही थी मानों पितृवध से कुपित परशुराम द्वारा निर्मित, दूर तक फैला हुआ रुधिर का ह्रद था जो सहस्रार्जुन के चौड़े और विकट कन्धों के चीरने वाले कुठार की धार से काटे हुए दुष्ट क्षत्रियों के गले से निकलती हुई रुधिर की सहस्रों पनालियों से भर गया था ।[84] हर्षचरित में बाण ने चन्द्र और सूर्य से उत्पन्न दो प्रमुख क्षत्रिय वंशों का उल्लेख किया है ।[85] गुप्तोत्तर काल विशेषकर राजपूत काल (800-1200 ई0) में सूर्य तथा चन्द्र वंश से विभिन्न राजपूत क्षत्रिय कुलों को सम्बन्धित किया गया है । इस दृष्टि से यह संक्षिप्त उल्लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है । गुप्तोत्तर काल के बदले हुए राजनीतिक परिप्रेक्ष्य अनेक जनजातीय एवं विदेशी तत्व भारतीय समाज व्यवस्था में राजसत्ता से जुड़े होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण हो उठे जिनको सूर्य तथा सोम वंश से सम्बन्धित बतला कर समाज में सम्मानजनक स्थान प्रदान किया गया ।

थानेश्वर के वर्णन में वहाँ के क्षत्रियों को "शस्त्रोपजीवी" कहा है ।[86] ह्वेनसांग के अनुसार क्षत्रिय शासक वर्ग के थे जो अनेक पीढ़ियों से शासन करते आ रहे थे ।[87] उसके अनुसार यह वर्ग परोपकारी और दयालु प्रवृत्ति का था ।[88] उल्लेखनीय है कि चीनी यात्री की क्षत्रियों की पहचान संभवतः शास्त्रीय आधार पर रही होगी क्योंकि स्वयं चीनी यात्री के यात्रा वृत्तान्त में ऐसे अनेक क्षत्रियेतर राजवंशों का उल्लेख मिलता है जो शासन कर रहे थे । ह्वेनसांग की दृष्टि से तो स्वयं पुष्यभूति वंश भी वैश्य था ।[89] इसके अलावा कामरूप[90] तथा वू-शे-येन-न (उज्जैन) के शासक ब्राह्मण तथा मतिपुर[92] तथा सिन्ध[93] के शासक शूद्रवंशीय थे । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ह्वेनसांग स्वयं अपने वर्णन में अन्तर्विरोधात्मक कथन प्रस्तुत करता है जिसके परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि ह्वेनसांग का उक्त कथन कि क्षत्रिय अनेक पीढ़ियों से शासक थे मात्र सैद्धान्तिक प्रतीत होता है न कि व्यावहारिक । दशकुमारचरित में राजा राजहंस को चन्द्रवंश का क्षत्रिय कहा गया है ।[94] बाण के साहित्य से राजन्य वर्ग के विद्या प्रेम तथा दान आदि सद्गुणों का विशेष प्रकाश पड़ता है । हर्ष के द्वारा दान का उल्लेख हर्षचरित से प्राप्त होता है ।[95] दक्षिण भारत में भी क्षत्रियों की उत्तर भारत के समान स्थिति थी । वे राज्य संचालन और प्रशासनिक कार्यों में संलग्न थे ।[96]

वैश्य

प्राचीन वर्ण-व्यवस्था के अनुसार वैश्य का व्यवस्था में तीसरा स्थान था । परम्परा के आधार पर ऐसी व्यवस्था थी कि देश का आर्थिक ढाँचा वैश्यों के हाथ में था । कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में इनके कर्मों के विषय में निर्देशित किया है जिनमें कृषि, पशुपालन के अलावा अध्ययन, यज्ञ करना तथा दान देने की भी चर्चा की गई है ।[97] मनु के अनुसार पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज लेना, कृषि करना वैश्यों का प्रधान कर्म था ।[98] याज्ञवल्क्य भी वैश्यों के लिए मनु के समान धर्म वाले कर्म को ही निर्दिष्ट करते हैं ।[99] किन्तु

ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर में इनके कर्मों में शिथिलता परिलक्षित होती है क्योंकि चीनी यात्री ह्वेनसांग वैश्यों को व्यापारी जाति का मानता है ।[100] उसके अनुसार वे वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते थे और व्यापार के लिए दूर देश तक यात्रा करते थे ।[101]

बाण के साहित्य से वैश्यों के पारम्परिक कर्मों पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता अपितु व्यापारिक गतिविधियों पर यत्र-तत्र प्रकाश डाला गया है । हर्षचरित में बाण लिखता है कि स्थाण्वीश्वर को वणिक् लोग आमदनी की जगह समझते थे ।[102] हर्षचरित में हर्ष के सेना के साथ वणिकों के चलने का संकेत मिलता है । बाण लिखता है कि रसद का सामान देने वाले बनियों के बैल पहले ही रवाना कर दिये गये थे ।[103] इससे ऐसा संकेत मिलता है कि सेना के साथ चलने वाले वणिक् समूह "मुगलकालीन बन-जारों" की तरह रहे होंगे जो समयानुसार सेनाओं को रसद की आपूर्ति करते थे । हर्ष की नाटिका रत्नावली में वैश्यों को विदेश-व्यापार में संलग्न बताया गया है। सिंहलदेश से लौटते हुए कौशाम्बी निवासी व्यापारी के द्वारा विपत्ति में पड़ी हुई राजकुमारी की प्राण रक्षा का धैर्य धारण कराना नामक घटना से विदेश व्यापार की पुष्टि होती है ।[104] इसी प्रकार दशकुमारचरित में भी वैश्यों के द्वारा व्या-पार को विशेष महत्व दिया गया है । दण्डी के अनुसार रत्नोदभव व्यापार में कुशल होकर समुद्र पार करके द्वीप-द्वीपान्तरों में यात्रा करने चला गया ।[105] इससे ऐसा लगता है कि बाण के समय सातवीं शताब्दी ईसवी तक आते-आते वैश्यों की जीवनचर्या में परिवर्तन हो चुका था । वैश्यों के द्वारा पूर्णतया व्यापार अपना लेने के कारण के विषय में विद्वानों का मत है कि बौद्धधर्म के कारण ऐसा हुआ क्योंकि अहिंसा के समर्थक वैश्य उतनी भी हिंसा करने को तैयार न थे जितना कि हल चलाने से होती है ।[106] किन्तु ऐसा नहीं था क्योंकि अग्निपुराण से ज्ञात होता है कि कृषि कर्म में हुए पापों का प्रायश्चित यज्ञ कर्मों से साध्य था ।[107]

व्यापार को अपनाने का एक महत्वपूर्ण कारण लाभ कमाने की जिज्ञासा को

माना जा सकता है क्योंकि पंचतंत्र में धन प्राप्ति के अनेक साधनों सम्राट् सेवा, कृषि, विद्या, वाणिज्य में वाणिज्य को उत्तम कहा गया है।[108] इसमें वाणिज्य के विषय में स्पष्ट कहा गया है कि इसके अतिरिक्त धन लाभ कोई भी साधन उत्तम नहीं है।[109] इस प्रकार बाण के समय तक व्यापार-वाणिज्य का एकाधिकार वैश्यों के हाथ में आ गया था।

शूद्र

शूद्रों को वर्ण-व्यवस्था क्रम में सबसे निचली श्रेणी में रखा गया था। कौटिल्य शूद्रों के कर्म के विषय में कहता है कि उन्हें द्विजाति की सेवा, खेती, पशु पालन, व्यापार, शिल्प, गायन, वादन एवं चारण आदि करना चाहिए।[110] कौटिल्य जहाँ शूद्रों को अनेक कर्मों का पालन करने को कहता है वहीं मनु शूद्रों को एक मात्र द्विजाति की सेवा का ही उपदेश करते हैं। उनके अनुसार प्रभु ने शूद्र का एक ही कर्म कहा है कि वह इन वर्णों की निष्कपट होकर सेवा करे।[111] पराशर के अनुसार शूद्रों का प्रधान कार्य द्विज वर्ण की सेवा करना था।[112] किन्तु विद्वानों का मत है कि वैश्य लोग जब कृषि से विमुख होकर प्रधानतः व्यापार-वाणिज्य में संलग्न हो गये तब शूद्र वर्ण ने कृषि कार्य को ग्रहण कर लिया।[113] संभव है कि बाण के समय तक यह व्यवस्था अधिक प्रभावित हो गयी रही हो इसीलिए ह्वेनसांग ने शूद्रों को कृषक की श्रेणी में रखा है।[114] उसके अनुसार यह भूमि जोतने और खोदने में मेहनत करते थे।[115] बाण के साहित्य से इस प्रकार शूद्रों पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता किन्तु यत्र-तत्र अस्पष्ट सा उल्लेख मिलता है। हर्षचरित में बाण लिखता है कि जब हर्ष की सेना के हाथी-घोड़े चल पड़े तब उनके पड़े हुए चारों को लूटने के लिए आस-पास के छोटी कौम के लोग आ पहुँचे।[116] बाण भृत्यों का भी उल्लेख करता है।[117] जिनके विषय में कहा जा सकता है कि संभवतः ये शूद्र वर्ण के रहे हों। ह्वेनसांग के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि बाण के समय तक शूद्रों की पारम्परिक जीवन शैली में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका था। उसके अनुसार मतिपुर

का शासक शूद्र वर्ण का था ।[118] जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि इस समय तक शूद्रों में राजनैतिक सत्ता भी प्राप्त करने की क्षमता आ चुकी थी । किन्तु इसके बावजूद प्राचीन परम्परा के अनुसार उसे पतित और हेय ही माना जाता था । द्विजों की तुलना में उसकी स्थिति अत्यन्त निकृष्ट थी ।[119] उसके धार्मिक उद्धार हेतु उपाय और मार्ग की खोज की जा रही थी किन्तु इसके लिए गम्भीरतापूर्वक प्रयास नहीं किया जा रहा था । सत् और असत् के माध्यम से धार्मिक और सामाजिक सुधार के प्रयत्न जारी थे ।[120]

वर्ण-संकर जातियाँ

पतंजलि के महाभाष्य में शूद्रों की दो श्रेणियों का उल्लेख मिलता है, प्रथम निरवसित तथा द्वितीय अनिरवसित । निरवसित शूद्र अछूत थे जिन्हें अन्त्यज भी कहा जाता था । निरवसित शूद्र जिन पात्रों में भोजन कर लेते थे वह सदैव के लिए अशुद्ध हो जाता था । अनिरवसित शूद्र स्पृश्य थे इनके द्वारा पात्र में भोजन करना वर्ज्य नहीं था ।[121] इसी प्रकार का वर्गीकरण बारहवीं शताब्दी ईसवी के जैन आचार्य हेमचन्द्र ने भी पात्र्या और अपात्र्या के रूप में किया है ।[122] निरवसित शूद्र जिन्हें अछूत कहा जाता था में चाण्डाल, मृतप जैसी जातियाँ आती थीं जिनका उल्लेख बाणभट्ट अपने साहित्य में करते हैं । कादम्बरी में बाण ने चाण्डाल कन्या का वर्णन किया है ।[123] इसके अलावा चाण्डाल बस्ती (पक्कण) का विस्तृत विवरण भी बाण के द्वारा किया गया है ।[124] समाज में चाण्डाल अत्यन्त निम्न माने जाते थे । मनु के अनुसार इनकी उत्पत्ति शूद्र पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से हुई ।[125] आपस्तम्ब धर्मसूत्र चाण्डालों का स्पर्श, उनके साथ बात-चीत तथा उनको देखना भी वर्जित करता है ।[126] बौद्ध जातक ग्रन्थों के अनुसार इन्हें नगर सीमा के बाहर रहना पड़ता था ।[127] ये अपना जीवन-यापन शारीरिक करतब दिखाकर करते थे ।[128] बाण चाण्डालों के जीवन-यापन के विषय में लिखते हैं कि इनकी आजीविका प्रायः शिकार पर निर्भर होती ह थी ।[129] मनु के अनुसार चाण्डाल को गाँव के बाहर

निवास करना चाहिए तथा कुत्ते और गधे ही इनके पशु होने चाहिए ।[130] बाण कादम्बरी में पक्कण वर्णन में लिखते हैं कि चाण्डालों में कुछ कुत्तों के शिकार के ऊपर लहकाने और दौड़ाने में लगे थे ।[131] चीनी यात्री फाह्यान चाण्डालों के विषय में लिखता है कि जब कभी चाण्डाल बाजार में प्रवेश करता था तब वह लकड़ियाँ बजाता चलता था जिससे लोग लकड़ियों की आवाज सुनकर हट जाते थे । उनकी आजीविका पक्षी पकड़ना तथा मछली मारना था ।[132] इसी प्रकार का वर्णन बाण के समकालीन चीनी यात्री ह्वेनसांग भी करता है । उसके अनुसार चाण्डाल पशु मारकर मांस विक्रय करता था, विष्ठा उठाता था तथा वधिक का कार्य करता था । उसका आवास नगर के बाहर होता था एवं उसके घर पर विशेष चिह्न लगा होता था ।[133] जो चाण्डालों के आवास का सूचक होता था । विदेशी यात्रियों के कथन की पुष्टि बाण के साहित्य से भी होती है । कादम्बरी में चाण्डाल को "स्पर्शवर्जित" कहा गया है साथ ही बांस की छड़ी बजाकर सूचना देने वाला बताया गया है ।[134] इसके अलावा बाण इन्हें बहेलिये तथा मछली पकड़ने वाले के रूप में भी वर्णित करते हैं ।[135] इस तरह चाण्डालों की सामाजिक स्थिति अत्यन्त हेय तथा निम्न थी ।

कायस्थ

गुप्तोत्तर काल में कतिपय पेशेवर समूहों का उदय उपजातियों के रूप में हुआ । इनमें से कायस्थ एक हैं । बाण अपने साहित्य में कायस्थ शब्द का उल्लेख तो नहीं करता किन्तु हर्षचरित में करणि (लेखक) की चर्चा की गई है ।[136] स्मृतिकारों ने करणि की उत्पत्ति वैश्य पुरुष और शूद्र स्त्री से माना है ।[137] मनु ने करण का अर्थ वैधानिक परिपत्र तथा कर्णिक को लेखक माना है ।[138] इस प्रकार करणि (कर्णिक) को लेखक माना गया है । अमरकोशकार ने करण को वर्णसंकर जाति माना है ।[139] डी०सी० सरकार ने 'करण' को कायस्थ का पर्यायवाची शब्द माना है ।[140] कुछ विद्वान् ऐसा मानते हैं कि "करण" लोग कतिपय क्षेत्रों में ही

लेखन कार्य अपनाये थे किन्तु कायस्थ सर्वत्र लेखन का कार्य करते थे। कालान्तर में कायस्थ एक जाति बन गई जिसमें करण भी सम्मिलित हो गये।[141] गुप्तकाल में "अधिकरण" सरकारी कार्यालय या दफ्तर को कहते थे उसी से सम्बद्ध लेखकों को "करणि" कहा जाता था। बिहार में अभी तक कायस्थों की एक उपजाति का नाम "करन" है।[142] इस प्रकार इनका प्रधान व्यवसाय लेखन कार्य था। लेखक पर आजीविका चलाने के कारण इन्हें "अक्षरोपजीवी" भी कहा गया है।[143]

जनजातियाँ

कादम्बरी में जिन जनजातियों का उल्लेख मिलता है उनमें पुलिन्द[144] निषाद[145] तथा बहेलिया[146] तथा शबरों की गणना की जा सकती है। बाण इनका वर्णन शबर सेनापति के साथ करते हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये जंगली जातियाँ थीं। किन्तु विभिन्न व्यवस्थाकारों ने इनकी उत्पत्ति के विषय में अपना अपना अभिमत प्रकट किया है। पुलिन्द को वैश्य पुरुष और शूद्र स्त्री से उत्पन्न सन्तान माना गया है।[147] मनु के अनुसार इस प्रकार की सन्तान वैश्य ही होती है।[148] निषाद की उत्पत्ति बौधायन ने ब्राह्मणपुरुष और शूद्र स्त्री से माना है।[149] गौतम के अनुसार निषादों की उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री से हुई।[150] मनु भी निषाद का उल्लेख करते हैं और उसकी आजीविका का साधन मछली पकड़ना निर्दिष्ट करते हैं।[151] बौद्ध जातकों में ऐसे नाविकों या नेसाद (निषाद) का उल्लेख मिलता है।[152] बहेलियों का उल्लेख पाक्षिक या व्याध के रूप में मिलता है।[153] जिसके विषय में मान्यता है कि ये पक्षियों को पकड़कर बेचने का काम करते थे अथवा मांस के लिए पकड़ते थे। हर्षचरित में बाण अपने दो भाइयों चन्द्रसेन और मातृषेण पारशव कहा है।[154] पारशव एक वर्णसंकर जाति थी जिसके विषय में मनु का ह कहना है कि ब्राह्मण पिता और शूद्र स्त्री से पारशव का उद्भव हुआ।[155] चीनी यात्री ह्वेनसांग भी कतिपय मिश्रित जातियों का उल्लेख करता

है जिनके आवास स्थलों पर पहचान के लिए निशान लगे थे । वे नगर के बाहर रहने के लिए बाध्य किये जाते थे तथा बाजार आदि सार्वजनिक स्थानों पर बायें से चलते थे ।[156]

बाण के साहित्य में किरात और शबर जनजातियों का उल्लेख मिलता है । किरात का उल्लेख कादम्बरी में किया गया है ।[157] जिसके विषय में कोई विस्तृत ब्यौरा बाण प्रस्तुत नहीं करते हैं । किरातों का उल्लेख दण्डी के दशकुमारचरित में किया गया है जिसके विषय में वह कहता है कि किरात लोग अपने विजयोपलक्ष्य के निमित्त एक बालक की बलि देने वाले थे ।[158] अमरकोशकार ने किरातों को म्लेच्छों एक भेद माना है ।[159] कालिदास के अनुसार यह जाति हिमालय के तटवर्ती प्रदेश में निवास करती थी ।[160] पुराणों के अनुसार इनका निवासस्थान पूर्वी भारत में था ।[161] किरात सम्भवत: एक आदिम जनजाति थी जिसका निवासक्षेत्र हिमालय के शिवालिक क्षेत्र में था । इनकी आजीविका मुख्यत: आखेट पर निर्भर थी ।

बाण ने अपने साहित्य में शबर जनजाति का उल्लेख विस्तार से किया है । कादम्बरी में शबर सेनापति के मृगया का वर्णन तथा हर्षचरित में शबर सेनापति निर्घात का वर्णन जनजातीय जीवनशैली का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता है । अमरकोशकार ने शबर, किरात और पुलिन्द को समानार्थी जनजाति माना है ।[164] इससे इस बात की पुष्टि हो जाती है कि बाण ने कादम्बरी में शबर सेनापति के साथ जो पुलिन्दों का उल्लेख किया है[165], वह उचित ही प्रतीत होता है । बाण की दोनों रचनाओं में शबरों का उल्लेख विन्ध्य पर्वत के वर्णन के प्रसंग में ही किया गया है ।[166] जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शबर जनजाति का आवास क्षेत्र दक्षिण भारत की विन्ध्यपर्वत श्रेणियाँ थीं । इनकी आजीविका के विषय में बाण आखेट को निर्देशित करते हैं । कादम्बरी में शबर सेनापति को अपने अनुचरों के साथ आखेट में संलग्न दिखाया गया है ।[167] इसी प्रकार हर्षचरित में भी निर्घात को आखेट में मारे गये पशुओं के साथ प्रदर्शित किया गया है ।[168]

हर्षचरित में निर्घात जिस प्रकार वनों पर आधिपत्य को जताते हुए कहता है कि, देव, सेनापति के अनजाने में हरिणी भी जब नहीं घूमती तो नारियों की बात ही क्या है ?[169] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वनों पर इन जातियों का अधिकार होता था जो संभवतः समय-समय पर राजा को वन-उपज आदि दिया करते थे क्योंकि शरभकेतु को अटवी सामन्त कहा गया है ।[170] बाण शबरों की जीवन पद्धति के विषय में जिस प्रकार वर्णन करता है उससे ज्ञात होता है कि ये जातियाँ नरभक्षी होती थी । लूट-पाट, चोरी करती थी । देवार्चन पशुबलि के द्वारा करती थीं । ये स्वभाव से क्रूर तथा निष्ठुर होते थे । शराब और माँस ही इनका खाद्य था । ये एक वन से दूसरे वन में विचरण करते रहते थे, इनका कोई स्थायी आवास स्थल नहीं होता था ।[171] इस प्रकार जनजातियों का समाज से बिल्कुल कटा होना और अपने आप तक ही सीमित रहना उनकी प्रकृति बन गयी थी ।

जातीय सम्बन्ध

साहित्यिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि बाण के समय तक जातीय समीकरण बदलती परिस्थितियों के कारण कठोरता ग्रहण करते जा रहे थे । ह्वेनसांग को जातीय बन्धन का आभास संभवतः था । उसने लिखा है कि चारों श्रेणियों में लोगों की जाति सम्बन्धी स्तर ऊँच-नीच की भावना से निश्चित होता था । विवाह सम्बन्धों में ऊँच-नीच की भावना का आकलन किया जाता था । अस्पृश्य जातियाँ गाँव के बाहर रहती थी और उनके घरों पर व्यवसाय सूचक निशान लगे रहते थे ।[172] उपलब्ध साक्ष्यों से ऐसा नहीं प्रतीत होता कि जातीय सम्बन्ध कटुता पूर्ण थे और धर्मशास्त्रीय परम्पराओं का अक्षरशः पालन होता रहा हो । हर्षचरित से ज्ञात होता है कि बाण स्वयं वेदपाठी ब्राह्मणों के उच्च कुल का था किन्तु उसने अपने जिन 44 मित्रों की सूची दिया है ।[173] उससे स्पष्ट हो जाता है कि बाण के मित्रों में विभिन्न जातियों, पेशों और धर्मों के लोग थे जो साथ-साथ ही रहा

करते थे । इसके अलावा विन्ध्याटवी में हर्ष की भेंट जब शबर युवक निर्घात से हुई तब निर्घात ने भूमि पर सिर टेककर हर्ष को प्रणाम किया तथा तीतर और खरगोश भेंट में अर्पित किया । हर्ष ने उसकी भेंट का सम्मान किया और स्वयं आदर के साथ उसे अंग सम्बोधित किया जिसका आशय थॉमस और कावेल ने महाशय किया है; तथा अपनी बहिन राज्यश्री के विषय में पूछताछ की ।[174] इतना ही नहीं, राज्यश्री की प्राप्ति तक निर्घात हर्ष के साथ रहा और बहिन को पाकर हर्ष विन्ध्याटवी से लौटने लगे तो वस्त्र, अलंकार आदि से निर्घात को संतुष्ट करके विदा किया था ।[175] कादम्बरी से ज्ञात होता है कि राजा शूद्रक ने चाण्डाल कन्या से वार्तालाप को दोषरहित बताने का प्रयास किया है ।[176] इस प्रकार बाण के साहित्यिक साक्ष्यों से ऐसा आभास होता है कि वर्णों में आपसी आचार विचार का प्रतिबन्ध होते हुए भी वर्णों के मध्य पारस्परिक सामाजिक सम्बन्ध थे।

आश्रम

आश्रमों का उद्भव शिक्षा केन्द्रों के रूप में प्राचीन काल से होने का संकेत मिलता है । गुरुकुल का विकास दो प्रकार से हुआ, प्रथम गृहस्थ, गुरु आश्रम, द्वितीय वनस्थ प्रव्रजित गुरु-आश्रम । वनस्थ प्रव्रजित गुरु-आश्रमों की परम्परा प्राचीन काल से लेकर बाणभट्ट के साहित्य तक अविच्छिन्न रूप से प्राप्त होती है । कृष्ण और बलराम ने सान्दीपनि मुनि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त किया था ।[177] इसी प्रकार महाकाव्यकाल में भी इस प्रकार के आश्रमों की एक लम्बी परम्परा प्राप्त होती है । रामायण से ज्ञात होता है कि भरद्वाज और वाल्मीकि के आश्रम उच्च कोटि के शिक्षाकेन्द्र थे ।[178] महाभारत में उल्लिखित है कि मार्कण्डेय और कण्व ऋषि के आश्रम शिक्षा के प्रधान स्थल थे ।[179] बौद्ध ग्रन्थों से भी वनस्थ प्रव्रजित गुरु आश्रमों का विवरण मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि उस युग में भी आश्रम शिक्षा एवं धार्मिक गतिविधियों के केन्द्रों के रूप में विकसित हुए ।[180]

चम्पा निवासी दिशा प्रमुख आचार्य के आश्रम में पाँच सौ छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे।[181]
गुप्त काल में भी आश्रमों के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है । कालिदास के अभि-
ज्ञान शाकुन्तलम् में कण्व आश्रम का विस्तार से वर्णन किया गया है ।[182] गुप्त
अभिलेखों से ज्ञात होता है कि आचार्य ब्राह्मणों को ग्राम दान में दिये जाते थे ।
आचार्य देवशर्मा को ब्रह्मपूरक ग्राम दान में दिया गया था ।[183] ऐसे ग्रामदानों
से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस प्रकार के आश्रमों के परिपालन के लिए
गाँवों की आमदनी काम आती रही होगी । बाणभट्ट के साहित्य में भी इस
प्रकार के आश्रमों का विस्तृत ब्यौरा प्राप्त होता है । बाण हर्षचरित में लिखता
है कि वह स्वयं शिक्षा के लिए अनेक वर्षों तक गुरु के आश्रम में रहा[184] किन्तु इसके
विषय में कोई विस्तृत जानकारी नहीं उपलब्ध है । हर्षचरित में दिवाकर मित्र के
आश्रम[185] और कादम्बरी में जाबालि आश्रम[186] के विषय में बाण विस्तृत विवरण
प्रस्तुत करता है जिससे बाणकालीन आश्रमों की मर्यादा, शिष्टाचार, विद्याध्ययन
के स्वरूप और रहन-सहन तथा धार्मिक सद्भाव आदि के विषय में पर्याप्त जानकारी
होती है ।

हर्षचरित के अनुसार दिवाकर मित्र के आश्रम में शिष्यगण अलग-अलग स्थानों
पर बैठकर चिन्तन मग्न थे ।[187] आश्रम में विभिन्न सम्प्रदायों के विद्वान् तत्त्व
चिन्तन में निमग्न थे । जीव-जन्तु निर्भय होकर टहल रहे थे । मुनि-धान्य
{सावाँ} की कुटटी चींटियों को भी खिलाया जा रहा था । लोग अपने-अपने
आगमों का पूरी लग्न के साथ श्रवण, मनन, आवृत्ति, संशय, निश्चय, व्युत्पत्ति
विवाद और अभ्यास के द्वारा व्याख्यान कर रहे थे ।[188] आश्रम की मर्यादा का
उल्लंघन राजा भी नहीं करता था । उसकी पुष्टि इस बात से होती है कि सम्राट
हर्ष को जब मालूम हुआ कि आश्रम अधिक दूर नहीं है तो उन्होंने गिरिनदी के
किनारे अपनी सेना को रोक दिया स्वयं नदी में आचमन किया और कुछ राजाओं
को साथ लेकर पैदल ही चल पड़े ।[189] इससे इस बात का संकेत मिलता है कि
आश्रमों की मर्यादा अक्षुण्ण रहती थी जिसका उल्लंघन राजा स्वयं भी नहीं करता था।

कादम्बरी में जाबालि आश्रम का वर्णन भी भारतीय संस्कृति के आदर्श आश्रमों की छवि प्रस्तुत करता है । आश्रम में नित्य हवन होता था । आश्रम की कुटियों के आंगन सूखने के लिए डाले गये सांवा नामक अन्न से परिपूर्ण थे । विभिन्न प्रकार के वृक्ष आश्रम की शोभा बढ़ा रहे थे । वेद पाठ हो रहा था । ब्राह्मणों के बालक एक स्वर से पाठ का अभ्यास कर रहे थे । कहीं विष्णु, शंकर और ब्रह्मा की पूजा हो रही थी । कहीं यज्ञविद्या की व्याख्या हो रही थी । कहीं शास्त्रों के अर्थ गाम्भीर्य पर विचार हो रहा था । कहीं मन्त्र सिद्ध किये जा रहे थे । कहीं वनदेवताओं को बलि दी जा रही थी । कहीं काले हरिण के चमड़े सिखाये जा रहे थे । कहीं ऋषियों के बच्चे पशुओं के साथ खेल रहे थे ।[190] इस प्रकार आश्रम में पूजा-अर्चना से लेकर आवास तक की सारी क्रियायें जगह-जगह संपन्न हो रही थी ।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि बाण के दोनों रचनाओं में वर्णित आश्रमों में मूलभूत अन्तर है । हर्षचरित में वर्णित आश्रम बौद्ध शिक्षा का अनुपम केन्द्र होने के साथ-साथ अन्य सम्प्रदायों का भी केन्द्र रहा है । इसके विपरीत कादम्बरी का जाबालि आश्रम मूलतः हिन्दू संस्कृति के शिक्षा केन्द्र के रूप में विकसित दिखाया गया है । इन दोनों आश्रमों के वर्णन से एक और तथ्य जो उद्घाटित होता है वह यह है कि बाण ने दोनों की भौगोलिक स्थिति विन्ध्याटवी में ही निर्दिष्ट किया है । इससे संकेत मिलता है कि इस प्रकार के आश्रम प्रायः नगरों से दूर एकान्त स्थानों में होते थे । इस प्रकार के आश्रमों का भारतीय धर्म, संस्कृति और ज्ञान के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान रहा है । इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि दिवाकर मित्र और जाबालि आश्रम की तरह उस समय देश में अन्यत्र भी बौद्ध और ब्राह्मण आश्रम रहे हों जो सभी धर्मों का निचोड़ लेकर परस्पर सद्भाव एवं समन्वय स्थापित करने में प्रयत्नशील रहे हों ।

संस्कार

भारतीय संस्कृति में संस्कार को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । व्यक्ति के असंस्कृत रूप को परिष्कृत करके सुसंस्कृत और अनुशासित करने के निमित्त संस्कारों की नियोजना की गई थी । इसी को लक्ष्य करके बाण ने हर्षचरित और कादम्बरी में कुछ संस्कारों का उल्लेख किया है । कादम्बरी में चन्द्रापीड के जन्म के पश्चात् चूड़ाकरण आदि संस्कारों को क्रम से सम्पन्न होने का उल्लेख किया है ।[191] हर्ष-चरित में बाण स्वयं के विषय में लिखता है कि उसका उपनयन आदि संस्कार समय से हुआ तथा पिता की मृत्यु के पूर्व समावर्तन संस्कार भी हो चुका था ।[192] इस प्रकार बाण के साहित्य से जिन संस्कारों के सम्पन्न होने की झलक मिलती है उनमें निष्क्रमण, नामकरण, चूड़ाकरण, उपनयन और समावर्तन तथा विवाह मुख्य हैं । कादम्बरी में बाण कहता है कि चन्द्रापीड और वैशम्पायन के जन्म के दसवें दिन शुभ मुहूर्त में ब्राह्मणों को दान देकर बालकों का नामकरण किया गया ।[193] नामकरण संस्कार के विषय में मनु का कथन है कि दसवें या बारहवें दिन शुभ तिथि नक्षत्र और मुहूर्त में नामकरण संस्कार करना चाहिए ।[194] मनुस्मृति के भाष्यकार विश्वरूप[195] और कुल्लूक[196] के अनुसार इसे ग्यारहवें दिन करना चाहिए । नाम के विषय में विद्वानों का मत है कि शिशु का नाम सुन्दर और कर्णप्रिय व्यावहारिक नाम सन्तान को प्रदान किये जाने चाहिए ।[197]

निष्क्रमण संस्कार का तात्पर्य घर से बाहर निकलने से होता है । जन्म से एक निश्चित समय के पश्चात् सन्तान को घर से बाहरी वातावरण में निकाला जाता था । इसके पूर्व माँ और शिशु को एक निश्चित स्थान पर रखा जाता था । यह संस्कार प्राय: जन्म के बारहवें दिन से चौथे मास तक सम्पन्न करने का विधान था ।[198] संस्कार में निश्चित तिथि पर शिशु को स्नान कराकर, नवीन वस्त्र पह-नाया जाता था । तत्पश्चात् पूजन आदि होता था और प्रथमत: बालक को सूर्य का दर्शन कराया जाता था ।[199]

चूड़ाकरण संस्कार में बालक के सिर का मुण्डन होता था ।[200] चूड़ा का अर्थ शिखा होता है, इसमें शिखा को छोड़कर शिशु के सिर के बाल और नाखून काट दिये जाते थे । मनु का विचार है कि सभी द्विजाति बालकों का चूड़ाकरण संस्कार पहले या तीसरे वर्ष में कराया जाना चाहिए ।[201] पुराणों के अनुसार चूड़ाकरण संस्कार के समय नान्दीमुख और पितरों की पूजा अर्चना करनी चाहिए ।[202] आज भी प्राय: देखा जाता है कि मुण्डन संस्कार समारोहपूर्वक प्रसन्नता के वातावरण में हिन्दू समाज में किया जाता है । इस संस्कार को सम्पन्न करने में मूल उद्देश्य संभवत: शरीर की स्वच्छता और पवित्रता होती है जबकि शास्त्रकार इस विषय में कहते हैं कि मुण्डन संस्कार से बालक को दीर्घायु प्राप्त होती है ।[203] कादम्बरी में बाण ने चन्द्रापीड को शिक्षा देने की व्यवस्था का उल्लेख किया है ।[204] प्रारंभ में विद्यारम्भ संस्कार होता था । विद्यारम्भ संस्कार के विषय में शास्त्रकारों का मत है कि जन्म के पाँचवें वर्ष विद्यारम्भ संस्कार होना चाहिए ।[205] सर्वप्रथम बालकों को वर्णाक्षर का ज्ञान और पढ़ना सीखना ही विद्यारम्भ-संस्कार कहा जाता था । चीनी यात्री ह्वेनसांग ने बालकों की विद्या का आरम्भ "सिद्धम्" से माना है जो सफलता का परिचायक था ।[206] ईत्सिंग के अनुसार प्रारम्भिक शिक्षा में वर्णमाला, स्वर और व्यंजन निहित होते थे ।[207]

उपनयन संस्कार

बाण हर्षचरित में स्वयं अपने विषय में लिखता है कि उसका उपनयन संस्कार समय से निष्पन्न हुआ था ।[208] उपनयन संस्कार हिन्दू समाज का मुख्य संस्कार माना जाता है । उपनयन का तात्पर्य स्वाध्याय अथवा वेदाध्ययन से है । जब बालक आचार्य के समीप वेद का अध्ययन करने के लिए जाता है । उपनयन के लिए "यज्ञोपवीत" शब्द का प्रचलन समाज में हुआ जिसका तात्पर्य यज्ञ का उपवीत होता है । यह संस्कार द्विजातियों के लिए विहित था । उपनयन संस्कार के पश्चात् बालक "द्विज" कहा जाता था । संस्कारविहीन व्यक्ति शूद्रवत् माना जाता था ।

गौतम के अनुसार ब्राह्मण का जन्म के आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का ग्यारहवें और वैश्य बालक का ग्यारहवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार होना चाहिए ।[209] मनु[210] का विचार भी गौतम के नियम से मेल खाता है । इस संस्कार को सम्पन्न करते समय बालक को यज्ञोपवीत धारण कराया जाता था । ब्राह्मण के लिए नौ तन्तुओं से बना तीन डोरों का यज्ञोपवीत होता है ।[211] मनु विभिन्न वर्णों के लिए विभिन्न प्रकार के यज्ञोपवीत का उल्लेख करते हैं ।[212] उल्लेखनीय है कि बाण इस सन्दर्भ में स्त्रियों के यज्ञोपवीत का वर्णन हर्षचरित और कादम्बरी में करते हैं । सरस्वती के नखशिख वर्णन में उन्हें ब्रह्मसूत्र धारण किये हुए बताया गया है ।[213] इसी प्रकार कादम्बरी में महाश्वेता को कण्ठदेश में ब्रह्मसूत्र धारण किया हुआ दिखाया गया है ।[214] उल्लेखनीय है कि भाष्यकार ने ब्रह्मसूत्र का अर्थ यज्ञोपवीत किया है ।[215] प्रायः विद्वान् ऐसा मानते हैं कि स्त्रियों के लिए उपनयन संस्कार दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक व्यवहारतः बन्द हो चुका था ।[216] मनु के अनुसार पति ही कन्या का आचार्य, विवाह ही उसका उपनयन संस्कार होता है ।[217] इससे ऐसा माना जा सकता है कि बाण के द्वारा स्त्रियों के लिए यज्ञोपवीत का वर्णन शास्त्रीय प्रतीत होता है न कि व्यावहारिक ।

भारतीय समाज में विवाह एक महत्वपूर्ण संस्कार माना गया है । व्यक्ति का गृहस्थ आश्रम में प्रवेश विवाह से ही आरम्भ होता है । विवाह के पूर्व समावर्तन संस्कार का उल्लेख बाण के हर्षचरित में मिलता है ।[218] विद्याध्ययन के पश्चात् जब बालक आचार्य के समीप से घर को लौटता था तो समावर्तन संस्कार सम्पन्न किया जाता था । समावर्तन का तात्पर्य आचार्य के समीप से शिक्षा ग्रहण करने के बाद घर की ओर लौटना माना जाता है । इस प्रक्रिया को कुछ धार्मिक कृत्यों के साथ सम्पन्न की जाती थी और शिष्य आचार्य का आशीर्वाद प्राप्त करके अपने घर वापस आ जाता था[219] इसे ही समावर्तन संस्कार कहा जाता था ।

विवाह

भारतीय परम्परा में विवाह एक अनिवार्य संस्कार माना गया है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने समस्त कर्तव्यों का वहन करता है। मनु केअनुसार धर्म का पालन, पुत्र-प्राप्ति और रति-सुख विवाह के प्रमुख उद्देश्य माने गये हैं।[220] बाणभट्ट ने हर्षचरित और कादम्बरी में विवाहों के कम से कम दो प्रकारों का उल्लेख किया है। हर्षचरित के अनुसार हर्ष की बहिन राज्यश्री का विवाह मौखरि राज ग्रहवर्मा के साथ वर्णित है।[221] इस विवाह को ब्राह्म विवाह माना जाता है। ब्राह्म विवाह के अन्तर्गत पिता सच्चरित्र और योग्य वर को अपने यहाँ आमन्त्रित करके कन्या को वस्त्राभूषण से सज्जित करके दान करता था।[222] इसके अलावा कादम्बरी में चन्द्रापीड-कादम्बरी और पुण्डरीक महाश्वेता के गान्धर्व विवाह का संकेत है।[223] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि गान्धर्व विवाह को सामाजिक प्रतिष्ठा उस रूप में नहीं प्राप्त थी जैसा कि ब्रह्म आदि विवाहों को मिली थी। मनु के अनुसार वर और कन्या के इच्छानुसार कामुकतावश ब संयुक्त होने को गान्धर्व विवाह कहा गया है।[224] गान्धर्व विवाह बाण के पूर्ववर्ती साहित्यकारों द्वारा भी वर्णित है। कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त और शकुन्तला का विवाह गान्धर्व प्रकार का था।[227] भवभूतिकृत "मालतीमाधव" में मालती और माधव के गान्धर्व विवाह का उल्लेख मिलता है जिसमें कहा गया है कि परिणय के लिए वर और वधू का परस्पर प्रेम ही उत्कृष्ट मंगल है।[228] बाण के आश्रयदाता सम्राट् हर्ष के नाटक नागानन्द में जीमूतवाहन तथा मलयवती के गांधर्व विवाह को प्रस्तुत किया गया है। किन्तु बाद में माता-पिता की अनुमति मिलने से विवाह का स्वरूप परिवर्तित हो गया।[229]

ह्वेनसांग लिखता है कि समाज में अन्तर्जातीय विवाह प्रचलित नहीं थे। एक जाति के लोग अपनी ही जाति में विवाह करते थे।[230] बाण की रचनाओं में इस प्रकार के विवाहों का उल्लेख प्राप्त होता है। स्मृतियों के अनुसार अन्त-

जातीय विवाह दो प्रकार के होते हैं : अनुलोम विवाह और प्रतिलोम विवाह[231]।
अनुलोम विवाह में पुरुष उच्च वर्ण का और स्त्री निम्न वर्ण की होती थी।
साहित्य में इस प्रकार के विवाह का उल्लेख अनेकशः हुआ है। कालिदास के अनुसार पुष्यमित्र शुंग के पुत्र अग्निमित्र का विवाह क्षत्रिय नरेश यज्ञसेन की पुत्री मालविका से हुआ था।[232] इसी प्रकार ब्राह्मण वंश में उत्पन्न वाकाटक-नरेश रुद्रसेन द्वितीय का विवाह चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त से हुआ था।[233]
हर्षचरित से ज्ञात होता है कि बाण के सौतेले भाई चन्द्रसेन और मातृषेण शूद्रा माता से उत्पन्न थे।[234] चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार पुष्यभूति वंश को यदि सत्य माना जाय जिसमें हर्ष को वैश्य कहा गया है[235] तो राज्यश्री और मौखरि शासक ग्रहवर्मा का विवाह भी अनुलोम विवाह ही माना जा सकता है।[236] इससे ऐसा लगता है कि अनुलोम विवाह समाज में प्रचलित था किन्तु शास्त्रकारों ने इसे धर्मसम्मत नहीं माना है क्योंकि मनु[237] और याज्ञवल्क्य[238] के अनुसार अनुलोम से उत्पन्न सन्तान को पिता की सम्पत्ति में बहुत कम हिस्सा मिलता था।

बाणभट्ट ने हर्षचरित में विवाह की आयु के सम्बन्ध में संकेत किया है।
बाण लिखता है कि "बढ़ती हुई नदी जैसे वर्षाकाल में मेघों के उठान लेने पर अ तट पर बड़ी-बड़ी भँवरियाँ डाल देती है उसी प्रकार बढ़ती हुई कन्या स्तनों के उठने के समय पिता को चिन्ता में डाल देती है।[239] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि बाण के समय तक कन्या की आयु विवाह के लिए कम हो गयी थी जिसकी पुष्टि धर्मसूत्रों[240] और स्मृतियों[241] के उल्लेखों से भी होती है। कामसूत्र के अनुसार वर और कन्या की आयु में तीन चार वर्ष का अन्तर होना चाहिए।[242] गुप्त काल तक संभवतः यही प्रथा लागू रही हो किन्तु ऐसा लगता है कि बाण के समय तक आयु-सीमा में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ। गान्धर्व-विवाह में इस प्रकार की कोई आयु-सीमा निर्धारित नहीं थी। गुप्त-काल में इस विषय में संकेत मिलता है।
कालिदास के अनुसार जब वर-वधू दोनों प्रणय और काम को समझने में समर्थ होते थे,

तभी गान्धर्व विवाह सम्पन्न होता था । स्वेच्छा से एक दूसरे को अंगीकार करना एक दूसरे के स्पर्श का अनुभव करना आदि गान्धर्व विवाह के आधार माने जाते थे ।[243] इसी प्रकार ब्राह्मण के लिए विद्या समाप्ति की अवधि ही शादी कीआयु सीमा होती थी । क्षत्रिय भी सभी शस्त्रास्त्रों की शिक्षा में पारंगत होने के बाद ही विवाह के योग्य माना जाता था ।[244] इस विषय में यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार का वयस्क-विवाह संभवतः उच्चकुलों में अधिक प्रशस्त माना जाता था । कादम्बरी में चन्द्रापीड-कादम्बरी और पुण्डरीक-महाश्वेता के गान्धर्व विवाह बाण-कालीन वयस्क विवाह का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ।[245]

विवाह-पद्धति

बाणभट्ट ने हर्षचरित में विवाह सम्पन्न होने की क्रिया का जिस प्रकार विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है वैसा समकालीन साहित्यों में अनुपलब्ध है । हर्षचरित में वाग्दान से लेकर वर-वधू के वासगृह तक प्रविष्ट होने तक पूर्ण विवरण बाण ने लिपिबद्ध किया है ।[246] मौखरि-नरेश अवन्तिवर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा ने राज्यश्री के साथ विवाह करने का प्रस्ताव दूत के माध्यम से महाराज प्रभाकरवर्द्धन के पास भेजा था । महाराज प्रभाकरवर्द्धन इस विषय में महारानी यशोमती से पहले ही सलाह मशविरा कर चुके थे, साथ ही अपने दोनों पुत्रों राज्यवर्द्धन और हर्ष को इस शुभ समाचार से अवगत करा चुके थे ।[247] राजा ने समस्त राजकुल की उपस्थिति में ग्रहवर्मा के द्वारा कन्या की प्रार्थना के लिए भेजे गये प्रधानदूत के हाथ पर कन्यादान का जल गिराया ।[248] हिन्दू धर्मशास्त्रों में इस क्रिया को वाग्दान की संज्ञा प्रदान की जाती है ।[249] विवाह की तिथि नजदीक आने पर राजगृह में अनेक प्रकार के कार्य सम्पन्न होने लगे । छोटे-बड़े सभी लोगों को पान के बीड़े, कपड़े की सुगन्धि (इत्र) और फूल बाँटे गये ।[250] राजप्रासाद को सजाया गया उसकी चूने से पुताई की गई । अनेक राजाओं के द्वारा उपहार लाये जा रहे थे । निमन्त्रित

रिश्तेदार आ चुके थे जिन्हें ठहराने का काम हो रहा था । ढोलिया चमार ढोल पीट रहा था और वह शराब के नशे में धुत्त था । जिस कमरे में चारण लोग एकत्रित थे उसमें इन्द्राणी की मूर्ति के रूप में दई देवता का आवाहन किया गया था ।[251] प्रो0 अग्रवाल महोदय ने नारदसंहिता एवं प्रयोगरत्नाकर को उद्धृत करते हुए कहा है कि विवाह में इन्द्राणी का पूजन अनिवार्य रूप से किया जाता था[252] विवाह के लिए वेदी तैयार करने का काम राजमिस्त्रियों ने नाप-तौल के साथ प्रारम्भ कर दिया था किन्तु इसके पूर्व उन्हें सफेद पुष्प, चन्दन और वस्त्र से सम्मानित किया गया था ।[253] दहेज में देने के लिए हाथी घोड़ों से आँगन भरा था जिनका निरीक्षण किया जा रहा था ।[254] ज्योतिषी विवाह के लिए सुन्दर लग्न खोजने में संलग्न थे । राजकुल की क्रीड़ावापियों में सुगन्धित जल भरा जा रहा था । स्वर्णकार आभूषण बनाने में व्यस्त थे ।[255] नई दीवार में पलस्तर का काम हो रहा था ।[256] उल्लेखनीय है कि बालू मिले मसाले का पलस्तर करने का बाण द्वारा वर्णन करना महत्वपूर्ण प्रतीत होता है । प्रो0 अग्रवाल महोदय का कथन है कि यद्यपि दीवारों पर पलस्तर के निशान पुरातात्त्विक दृष्टि से मोहनजोदड़ों से मिलने लगता है किन्तु साहित्यिक दृष्टि से यह उदाहरण सबसे पुराना है ।

नालन्दा में सातवीं शताब्दी ईसवी के पलस्तर के अवशेष अभी तक सुरक्षित हैं ।[257] राजमहल को मांगलिक चित्रों से सजाने का काम चित्रकर लोग कर रहे थे। कुम्हार लोग मिट्टी के खिलौने बना रहे थे । सम्राट् के अधीनस्थ राजा लोग स्वयं काम में व्यस्त थे । सामन्तों की स्त्रियाँ गृहकार्य में हाथ बँटा रही थी । विवाह की वेदी पर खम्भे गाड़े जा रहे थे । खम्भों को ऐपन से छापा गया था । राजकुल में स्त्रियों के द्वारा मांगलिक गीत वर-वधू के नाम को सम्बोधित करके गाये जा रहे थे ।[258] कुछ स्त्रियाँ कण्ठियों के डोरे रंगने के काम में व्यस्त थी । चित्रकारी में चतुर कुछ स्त्रियाँ कलशों पर और कच्ची सुरइयों ।सुराहियों। पर चित्रकारी कर रही थी ।[259] कुछ स्त्रियाँ बांस की करण्डियों ।टोकरियों। के लिए रुई के रंगे

गुल्लों से धागे तैयार कर रही थी ।[260] उल्लेखनीय है कि बाण ने बांस की करण्डियों के लिए "अभिन्नपुट" शब्द का प्रयोग किया है जिसका तात्पर्य भाष्यकार शंकर के अनुसार बांस का चौकोर पिटारा होता है ।[261]

विवाह के अवसर पर पिटारों में उपहार भरकर देने की प्रथा उत्तर भारत के अनेक गाँवों में आज तक प्रचलित है ।[262] बाण विवाह के अवसर पर काम आने वाले विभिन्न प्रकार के कपड़ों के रंगने का विस्तृत वर्णन करते हैं जिसमें चतुर स्त्रियों के अतिरिक्त रजक आदि संलग्न थे ।[263] शरीर में लगाने के लिए अ उबटन तैयार किये जा रहे थे ।[264] वर-वधू के शरीर में विवाह से पूर्व उबटन लगाने की प्रथा आज भी लोकप्रचलित है जिसे "हल्दी चढ़ाना" कहते हैं ।[265] कुछ कक्कोल, जायफल और लौंग की मालाएँ बीच-बीच में स्फुटिक जैसे कपूर को पिरोकर बना रहीं थीं ।[266] इस प्रकार राजमहल में विवाह के पूर्व की तैयारियों का विस्तृत विवरण बाण ने हर्षचरित में प्रस्तुत किया है ।

विवाह के दिन बारात आने के पूर्व मौखरि नरेश ग्रहवर्मा का ताम्बूलदायक महाराज प्रभाकरवर्द्धन से मिलने आया । राजा ने उससे कुशल क्षेम पूँछ कर सूचना दी कि "रात्रि के प्रथम पहर में वैवाहिक कार्य सम्पन्न होना चाहिए", जिससे दोष न हो ।[267] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि बाण ने इस घटना को लोकप्रथा के आधार पर लिपिबद्ध किया जिसमें आज भी विवाह के पूर्व बारात आने की सूचना देने के लिए वर-पक्ष की ओर से एक व्यक्ति "सिन्दूर-सुपाड़ी" लेकर जाता है । बाण सायंकाल बारात के जुलूस का भव्य वर्णन प्रस्तुत करते हैं जिसमें आगे आगे पैदल लोग लाल रंग का चमकदार चँवर लिये चल रहे थे । उनके पीछे घोड़ों का दल था । सबसे पीछे हाथियों का सजा झुण्ड चल रहा था । हाथियों के बीच नक्षत्रमाला से अलंकृत हथिनी पर वर ग्रहवर्मा विराजमान थे । उसके आगे चारण लोग तालयुक्त गान करते चल रहे थे । बारात के साथ सुगन्धित दीपक जल रहे थे । ग्रहवर्मा के सिर पर

मल्लिका पुष्पों की माला और फूलों का सेहरा सजा था । सीने पर पुष्पों के गजरे का वैकक्षक सुशोभित हो रहा था ।[268] बारात का स्वागत करने के लिए महाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन के दोनों राजकुमारों के साथ पैदल ही द्वार तक आये । ग्रहवर्मा हथिनी से उतरकर प्रभाकरवर्द्धन के गले मिले तत्पश्चात् राज्यवर्द्धन और हर्ष को गले लगाया । इसके पश्चात् अपने समान आसन आदि उपचारों से महाराज ने उनका स्वागत किया ।[269] बारातियों के साथ वर का वधू के घर पर जिस स्वागत-सत्कार का उल्लेख बाण ने किया है, उसे धर्मशास्त्रों में "मधुपर्क" कहा गया है ।[270] मधुपर्क में मधु-शर्करा-घृत आदि से निर्मित मिष्ठान्न विशेष से स्वागत होता है । बाण ने इस प्रकार के स्वागत का उल्लेख नहीं किया है किन्तु आसन देने का वर्णन किया है जिसे "संस्कार-मयूख" में "विष्टरादान" की संज्ञा प्रदान की गयी है ।[271] इसके बाद लग्न का समय होने पर ग्रहवर्मा को कौतुकगृह में ले जाया गया जहाँ उसने वधू राज्यश्री को देखा ।[272] इस प्रकार परस्पर वर-वधू का एक दूसरे को देखना "परस्पर-समीक्षण" कहा जाता है ।[273] कौतुकगृह में हंसी-मजाक करने वाली नवेलियों ने जिन लोकाचारों को करने के लिए वर ग्रहवर्मा से कहा, उसे बिना जिद ही उसने सब कर दिया ।[274]

बाण ने पहले कौतुकगृह (कोहबर) और बाद में विवाह-वेदी के कृत्य का जो उल्लेख किया है, वह पंजाब का आचार है, जो कुरुक्षेत्र में भी प्रचलित रहा होगा। दिल्ली-मेरठ के क्षेत्र में यह बदल जाता है, जहाँ विवाह कार्य पहले होते हैं और कौतुकगृह में स्त्रियों का लोकाचार बाद में ।[275] ग्रहवर्मा विवाह के अनुकूल वेशभूषा में सुसज्जित वधू का हाथ पकड़कर वेदी के पास पहुँचा ।[276] ~~ग्रहवर्मा विवाह के~~ जिसे "वधू-वर निष्क्रमण" कहा जाता है ।[277] इसके बाद बाण ने विवाह-वेदी का सजीव चित्रण खींचा है । वेदी सफेद चूने से पोती गई थी । विवाह मण्डप के इर्द-गिर्द निमन्त्रित मेहमान बैठे हुए थे । वेदी के चारों ओर कलश रखे गये थे । उल्लेखनीय है कि कलशों के एक विशेषण के रूप में बाण ने "पाञ्चास्य" शब्द का प्रयोग किया है

जिसका अर्थ कावेल ने "पाँच मुखवाले" और काणे ने[279] "सिंहमुखी" किया है, किन्तु अग्रवाल महोदय ने इसका अर्थ "चौड़े मुख वाला" किया है[280] जो समीचीन प्रतीत होता है। वेदी के चारों ओर रखे कलशों में पानी की नमी से नए यवांकुर उग गये थे। उन पर हल्की छरिया पोती गई थी।[281] वेदी के आसपास मंगलार्थ फल को हाथ में लिए मिट्टी की मूर्तियाँ रखी थी। विवाहाग्नि को आचार्य ईंधन डालकर प्रज्वलित कर रहे थे। अग्नि के समीप लम्बे लम्बे कुश रखे थे। अश्मारोहण के लिए सिल,, कृष्ण मृगचर्म, घृत, सुवा और समिधाएँ रखी थी।[282] लाजाहोम के लिए सूप में शमी के पत्तों के साथ खीलें रखी हुई थी। बाण के वर्णन से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि विवाह में उपरोक्त सामग्रियों का प्रयोग आज भी उसी प्रकार होता है जैसा कि प्राचीन काल में होता था।

वैवाहिक कर्म को सम्पन्न करने के लिए ग्रहवर्मा ने वधू राज्यश्री के साथ सुसज्जित वेदी पर पदार्पण किया। वेदी पर जाकर प्रज्वलित अग्नि में आहुतियाँ दी, तत्पश्चात् अग्नि की प्रदक्षिणा (भावरें) की। वर ग्रहवर्मा और वधू राज्यश्री ने अग्नि में लाजांजलियाँ छोड़ी।[283] इस प्रकार विवाह के शास्त्रीय कृत्य समाप्त होने पर जामाता ग्रहवर्मा वधू के साथ सास-ससुर को प्रणाम करके वासगृह में प्रविष्ट हुआ।[284]

हर्षचरित में बाण ने वासगृह का विशद चित्रण किया है। वासगृह के प्रवेश द्वार पर दोनों पार्श्वों में प्रीति और रति के चित्र उकेरे गये थे। मंगल दीपों से वासगृह प्रकाशमान था। वासगृह के एक ओर (दीवार) पर रक्ताशोक के नीचे शर सन्धान किये कामदेव का चित्रण किया गया था। वासगृह में बिछा पलंग श्वेत चादर से आवेष्ठित था तथा सिरहाने तकिया रखा हुआ था।[285] उल्लेखनीय है कि वासगृह के पार्श्वों पर प्रीति-रति का चित्रण करना एक परम्परा बन गयी थी। बन्धुवर्मा के मन्दसोर लेख में प्रीति और रति के साथ कामदेव का उल्लेख है। इसी प्रकार मत्स्य पुराण में भी प्रीति और रति के चित्रण करने का उल्लेख आता है।[286] वासगृह में पलंग के पास जिन अन्य वस्तुओं का संग्रह किया गया था, उनके विषय में

में बाण कहता है कि पलंग के एक तरफ सोने की भारी रखी हुई थी और दूसरी ओर हाथी-दाँत का डिब्बा लिये हुए स्वर्णनिर्मित पुतली खड़ी थी। सिरहाने चाँदी का निद्रा-कलश था जिसमें जल भरा हुआ था।[287] हाथी दाँत के डिब्बे के विषय में विद्वान् यह मानते हैं कि इसमें कत्था और सुपाड़ी रखी जाती थी, इसका आकार ऊँचा उठा हुआ लम्बोत्तरा गोल होता था।[288] निद्रा कलश का वर्णन बाण कादम्बरी में भी करते हैं जब चन्द्रापीड गन्धर्व-लोक के परिभ्रमण पर था।[289] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि शयन के समय निद्रा कलश रखना उस समय की प्रथा रही होगी। बाण ने वासगृह में गोल दर्पण लगे होने का उल्लेख किया है जिसमें वधू-मुख के प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे।[290] इस विषय में विद्वानों का मत है कि संभवतः सातवीं शताब्दी के महलों में भी सीसमहल बनाने की परम्परा प्रारम्भ हो गयी थी।[291] इस प्रकार बाण ने हर्षचरित में विवाह पद्धति का जो विशद वर्णन प्रस्तुत किया है उससे तत्कालीन रीति-रिवाजों की जानकारी प्राप्त होती है। मध्ययुग की वैवाहिक पद्धतियों का विस्तृत विवरण "संस्कार-मयूख" से प्राप्त होता है जिसमें वर-वधू की गुण-परीक्षा से लेकर देवकोत्थापन तथा मण्डपोद्वासन तक पैंतालीस कर्म गिनाये गये हैं।[292] कविवाह के अवसर पर प्रीतिभोज देने की प्रथा का उल्लेख बाद में हेमचंद्र ने किया है।[293] बाण इस प्रकार के प्रीति-भोज का कोई उल्लेख नहीं करते।

बाण ने हर्षचरित में विवाह के अवसर पर दहेज देने की परम्परा का उल्लेख किया है। विवाह की तैयारी के समय बाण लिखता है कि दहेज में देने योग्य हाथी, घोड़े आँगन में भरे हुए थे, उन्हें जाँचा जा रहा था।[294] इसके आगे उल्लेख मिलता है कि विवाहोपरान्त ग्रहवर्मा दस दिन तक ससुराल में रहे, तदुपरान्त दहेज में मिली हुई सामग्री को लेकर वधू राज्यश्री के साथ विदा हुआ।[295] उल्लेखनीय है कि बाण द्वारा दहेज का वर्णन प्राचीन परम्परा के अनुरूप ही था। महाभारत में इस प्रकार के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा आदि के विवाह में अनेक प्रकार की वस्तुयें दहेज के रूप में ससुराल वालों को प्रदान की गई थी।[296]

गुप्त काल में कालिदास ने दहेज का उल्लेख किया है । अज को अपनी पत्नी इन्दुमती के यहाँ से बहुत सा धन प्राप्त हुआ था ।[297] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि वधू के साथ कुछ वस्तुयें भी स्वेच्छा से ससुराल वालों को प्रदान की जाती थी जो संभवत: राज-घरानों की परम्परा थी । जनसामान्य में यह परम्परा नाममात्र के बराबर रही होगी । आधुनिक समाज में स्वेच्छया दहेज का रूप विकृत हो गया और इसने रूढ़िगत परम्परा का रूप धारण कर लिया जिसके अभाव में कन्या का विवाह कठिनतम हो गया है ।

अन्त्येष्टि

प्राचीन भारतीय परम्परा में जिन अनेक संस्कारों का सृजन किया गया है उनमें अन्तिम संस्कार अन्त्येष्टि माना गया है जिसके बाद मानव जीवन मात्र यश: शेष ही रह जाता है । बाण ने अपने साहित्य में अन्त्येष्टि संस्कार के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला है । सम्राट् प्रभाकरवर्द्धन की और्ध्वदैहिक क्रिया का विस्तृत विवरण हर्षवर्द्धन से ज्ञात होता है । बाण लिखता है कि प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात् उनकी शव-शिविका (अरथी) काला चँवर लगाकर बनायी गयी थी, जिसे हर्ष स्वयं अपना कन्धा देकर पुरोहितों को आगे कर, सामन्तों तथा पुरवासियों के साथ सरस्वती के किनारे तक ले गये । सरस्वती के तट पर काले अगुरु की लकड़ी से चिता निर्मित की गयी थी, साथ में प्रसाधनयुक्त स्त्रियाँ भी प्रसन्नमुद्रा में गयीं। सामान्यत: स्त्रियाँ श्मशान घाट तक नहीं जाती हैं । हर्षचरित का यह सन्दर्भ इसका अपवाद प्रतीत होता है । नदी के तट पर स्वयं हर्ष ने राजा का अग्नि संस्कार किया ।[298] चीनी यात्री ने अपने विवरण में अन्त्येष्टि की तीन विधियों का उल्लेख किया है :- 1. अग्नि-संस्कार, 2. जल समाधि तथा 3. परित्याग. प्रथम विधि में शव को चिता पर रखकर जला दिया जाता था । द्वितीय विधि में जलप्रवाह के माध्यम से शव को पानी में प्रवाहित कर दिया जाता था तथा तीसरी

विधि में शव को घने जंगल में छोड़ दिया जाता था जहाँ मांसभक्षी जीव-जन्तु उसका भक्षण कर लेते थे ।[299] उल्लेखनीय है कि मत्स्यपुराण में भी अन्त्येष्टि-क्रिया की तीन विधियों का उल्लेख मिलता है - शव को जलाना, शव को गाड़ना तथा शव को फेंकना[300] मत्स्यपुराण में वर्णित शव फेंकने की क्रिया का तात्पर्य शायद जल-प्रवाह ही रहा होगा । सामान्य रूप से अग्नि-संस्कार, शवाधान और शव का जलप्रवाह ही मुख्य प्रचलित प्रथायें रही होगी जो आज भी समाज के विभिन्न समुदायों में प्रचलित हैं ।

अग्नि-संस्कार के पश्चात् सम्राट् प्रभाकरवर्द्धन की अस्थियाँ (फूल) चुनकर विभिन्न तीर्थस्थानों में विसर्जन के लिए हाथियों पर भेजी गयी थी ।[301] उल्लेखनीय है कि भरहुत-साँची की प्राचीन कला में बुद्ध की धातुगर्भमंजूषाएँ इसी प्रकार हाथियों पर ले जायी जाती हुई चित्रित की गई हैं । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रथा बहुत प्राचीन थी और बाण के समय भी वह प्रचलित थी ।[302] बाण ने लिखा है कि प्रेत के लिए पवित्र भात (चावल) के उजले पिण्ड दिये जाते थे ।[303] उल्लेखनीय है कि अस्थि-चयन के पूर्व जौ के आटा का और अस्थि-चयन के पश्चात् उजले चावल का पिण्ड देने की परम्परा मिलती है ।[304] बाण हर्ष के द्वारा अपने पिता को जलांजलि देने का उल्लेख करता है[305] तिलांजलि (काले तिल के साथ जल) कहते हैं । बाण आगे लिखता है कि प्रथम प्रेत पिण्ड खाने वाले ब्राह्मण ने भोजन किया ।[306] इस विषय में विद्वान् ऐसा मानते हैं कि दस दिन तक महा-ब्राह्मण, जो मृतकपिंड खाते हैं, प्रेपिंडभुक् कहलाते हैं, जैसा बाण ने लिखा है । उस समय तक मृतक को प्रेत कहा जाता है । ग्यारहवें दिन एकादशाह या सपिण्डीकरण की क्रिया होती है । उसके साथ मृतक व्यक्ति पितरों में मिल जाता है । एकदशाह के दिन अशौच समाप्त हो जाता है । एकदशाह पिंड तक जो ब्राह्मण भोजन होता है उसे बाण ने प्रथम प्रेत पिंड भोजन कहा है ।[307] अशौच के विषय में विष्णु पुराण का मत है कि ब्राह्मण को दस दिन, क्षत्रिय को बारह दिन, वैश्य को पन्द्रह

दिन तथा शूद्र को तीस दिन तक अशौच रहता है ।[308] अशौच समाप्त हो जाने के बाद आँखों में जलन पैदा करने वाली राजा की निजी उपयोग की सामग्री-पलंग, पीढ़ा, चँवर, छत्र, बर्तन, सवारी, हथियार आदि ब्राह्मणों को समर्पित कर दी गयी ।[309] ऐसा प्रतीत होता है कि यह परम्परा तेरहवें दिन ब्राह्मण भोजन से सम्बन्धित थी जिसमें उच्च कोटि के पांक्तेय ब्राह्मण हिस्सा लेते हैं जो यज्ञ, देवकार्य आदि कराते हैं । इसी कारण बाण ने दोनों ब्राह्मणों को अलग अलग कहा है यद्यपि दोनों के लिए "द्विज" शब्द का ही प्रयोग किया गया है । इन ब्राह्मणों को भोजन के अतिरिक्त दुबारा शय्यादान भी दिया जाता है ।[310] ब्राह्मण भोजन, शय्यादान आदि कर्मों को विधिवत सम्पन्न करने के बाद सम्राट प्रभाकर-वर्द्धन की स्मृति में उनकी चिता पर चैत्य चिन्ह का निर्माण कराया गया ।[311] चैत्य चिन्ह के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं । हर्षचरित के भाष्यकार शंकर ने चिता चैत्य का तात्पर्य श्मशान देवगृह किया है ।[312] अग्रवाल[313] का मत है कि चूँकि बाण के समय इन चैत्यों के आकृति के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती अतः अनुमान लगाया जा सकता है ये चैत्य-चिन्ह वही थे, जिन्हें अमरकोश में "एडूक" कहा गया है जिसके अन्दर मृत व्यक्ति की शरीर-धातु का कुछ अंश रख दिया जाता था ।[314] जिनकी आकृति त्रिमेधिस्तूप की भाँति होती है जिसमें क्रमशः परिणाम में कम होते हुए एक दूसरे पर बने तीन चबूतरों के ऊपर किसी देवा चिन्ह, शिवलिंग या प्रतिमा की स्थापना की जाती है । अहिच्छत्रा के उत्खनन से इस प्रकार का एडूक मिला है[315] इसके बाद सम्राट् प्रभाकरवर्द्धन का प्रिय हाथी वन में छोड़ दिया गया [316] तथा कवियों ने राजा के शोक में विलापपूर्ण काव्य रचे ।[317] इस विषय में विद्वान ऐसा मानते हैं कि यह स्यापा की प्रथा थी जिसमें गीत गाकर शोक मनाया जाता है और इस निमित्त स्यापा करने मृतक के घर जाया जाता है । यह प्रथा पंजाब में आज भी प्रचलित है[318] किन्तु बाण के वर्णन से ऐसा नहीं लगता कि वे किसी प्रथा का चित्रण कर रहे हैं, बल्कि प्रतीत होता है कि राजा की स्मृति में कवियों के द्वारा काव्य रचना की गई न कि शोक

मनाने के लिए गीतों की । बाण आगे लिखता है कि राजा का नाम काव्य के रूप में रह गया[319] जिससे काव्य रचना की पुष्टि हो जाती है । इस प्रकार अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त करके सम्पूर्ण कृत्यों के सम्पादन का सजीव चित्रण बाण के साहित्य से उपलब्ध होता है ।

स्त्रियों का स्थान

प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान महत्वपूर्ण माना गया है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में स्त्रियों का स्थान उनके विविध रूपों में सराहनीय रहा है, किन्तु उनकी दशा देश, काल, परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनशीलता को ग्रहण करती गयी जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन आदर्शात्मक व्यवस्था का स्थान नियमों की कठोरता से ले लिया । पूर्वमध्यकाल तक आते-आते स्त्रियों की दशा में अवनति के स्पष्ट चिन्ह परिलक्षित होने लगे जो तत्कालीन साहित्य में देखने को मिलते हैं । बाण का साहित्य भी इन परिवर्तनों से अछूता न रह सका । बाण के साहित्य से बाल विवाह, बहुविवाह, सती-प्रथा तथा विधवाओं के पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध जैसी प्रथाओं पर प्रकाश पड़ता है जिससे स्त्रियों की सामाजिक दशा के विषय में जानकारी प्राप्त होती है ।

स्त्री शिक्षा पर बाण कहता है कि राज्यश्री को नृत्य, संगीत आदि कलाओं की विधिवत् शिक्षा प्रदान की गयी ।[320] इसी प्रकार कादम्बरी में कादम्बरी के कुमारी अन्तःपुर में कुमारियों को वीणावादन का अभ्यास करते हुए वर्णित किया गया है[321] महाश्वेता भी संगीत और वीणा वादन में कुशल थी ।[322] हर्षचरित से ज्ञात होता है कि हर्ष के जन्मोत्सव पर राजमहिषियाँ भी बाहुपाशों को फैलाकर नृत्य में कूद पड़ी थीं ।[323] राज्यश्री के विवाहोत्सव में सामन्त राजाओं की रूपवती स्त्रियों द्वारा सुनने में मधुर गीत गाये जाने तथा चित्र के आलेखन में कुशल स्त्रियों का वर्णन बाण ने किया है ।[324] सम्राट् हर्ष की नाटिका रत्नावली में

नायिका सागरिका को चित्रफलक और तूलिका के साथ कदलीगृह में महराज उदयन का चित्र बनाते हुए प्रदर्शित किया गया है ।[325] इसी प्रकार प्रियदर्शिका नाटिका में राजा द्वारा प्रियदर्शिका को गीत, नृत्य और वाद्यों में शिक्षित करने का दायित्व रानी के ऊपर डाला गया है ।[326] इस साक्ष्य से यह इंगित होता है कि स्त्री शिक्षा राजकुमारियों तथा सम्भ्रान्त वर्ग की स्त्रियों तक ही सीमित रह गई थी ।

अपवादस्वरूप कतिपय उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिससे ज्ञात होता है कि इस काल में भी विदुषी महिलाएं हुआ करती थी । काव्यमीमांसाकार राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी उत्कृष्ट कवियित्री और टीकाकार थी ।[327] इसी प्रकार शंकर और मंडनमिश्र के बीच हुए शास्त्रार्थ का निर्णय मंडनमिश्र की पत्नी ने किया था जो वेदान्त, मीमांसा, तर्कशास्त्र और दर्शन की परम विदुषी महिला थी ।[328] हर्षचरित से ज्ञात होता है कि स्त्रियों को व्यावहारिक शिक्षा के साथ साथ धर्म और दर्शन की शिक्षा भी दी जाती थी । हर्ष ने विन्ध्याटवी में निवास करने वाले दिवाकरमित्र से निवेदन किया था कि कि वे उसकी बहिन राज्यश्री को धार्मिक कथाओं, उपदेशों, शील एवं उपशम देने वाली शिक्षाओं तथा तथागत के दर्शन से प्रतिबोधित करें ।[329] हर्षचरित के इस प्रसंग को स्त्रियों के लिए शास्त्रीय शिक्षा का प्रबल प्रमाण नहीं माना जा सकता, क्योंकि राज्यश्री के लिए जिस प्रकार की शिक्षा का उल्लेख बाण ने किया है, उससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि यह शिक्षा राज्य श्री के शोकावेग को कम करने मात्र के लिए थी, न कि शास्त्रीय ज्ञान के निमित्त ।

बाण ने उच्च एवं शासक वर्ग में प्रचलित बहुविवाह का संकेत किया है इससे स्त्रियों की सामाजिक दशा पर प्रकाश पड़ता है । हर्षचरित से ज्ञात होता है कि बाण के पिता चित्रभानु की दो शादियां हुई थी जिनमें एक शूद्रा थी जिससे बाण के पारशव जुड़वा भाइयों का जन्म हुआ था ।[330] इसी प्रकार कादम्बरी में चन्द्रापीड को उसकी माता ने अनेक बहुओं वाला पति होने का आशीर्वाद दिया था ।[331] संस्कृत साहित्य से ज्ञात होता है कि राजाओं के अनेक पत्नियां हुआ करती थीं ।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में राजा दुष्यन्त को अनेक पत्नियों वाला कहा गया है ।[332] ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय शासक वर्ग में अनेक पत्नियाँ रखने की परम्परा थी ।[333] इसी प्रकार माघ के शिशुपालवध में एक पुरुष की अनेक पत्नियों का उल्लेख प्राप्त होता है ।[334] सम्राट् हर्ष की नाटिका से ज्ञात होता है कि महाराज उदयन की रत्नावली ।सागरिका। से दूसरा विवाह कराने का पूरा प्रयास उनका प्रधानमन्त्री यौगन्धरायण करता है जिसमें उसे सफलता प्राप्त होती है ।[335] इससे इस बात का संकेत मिलता है कि समय सातवीं शताब्दी ईसवी में उच्च वर्ग में बहुपत्नीत्व की परम्परा प्रचलित थी ।

बाण के साहित्य में पति के मरने के बाद अन्वारोहण का उल्लेख मिलता है । ऐसा प्रतीत होता है कि पति की मृत्यु के बाद स्त्रियाँ विधवा का जीवन व्यतीत करती थीं । कभी-कभी उच्च कुल की स्त्रियाँ पति की चिता के साथ सती भी हो जाती थीं । महाराज प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु नजदीक देखकर महारानी यशोमति वियोग से दुःखित होकर पति की मृत्यु के पूर्व ही चितारोहण कर गयी थी ।[336] इस विषय में बाण ने लिखा है कि वह चित्रफलक को जिसमें पति का चित्र था, मरण के लिए चित्त के रूप में धारण किये थी,[337] जिससे ज्ञात होता है कि इस प्रकार की परम्परा में जिसमें मृत्यु के पूर्व सती होने का विधान किया गया था, चित्र को साथ लेकर चितारोहण होता था । पति की मृत्यु के बाद राज्यश्री कान्यकुब्ज से विन्ध्याटवी में जाकर अपने कष्टों के निवारण के लिए चिता में जलने को तैयार हो गयी थी किन्तु आचार्य दिवाकर मित्र के साथ हर्ष के वहाँ पहुँचने पर राज्यश्री ने चितारोहण के विचार को त्याग दिया ।[338] कादम्बरी से ज्ञात होता है कि महाश्वेता को जब पुण्डरीक की मृत्यु के विषय में ज्ञात हुआ तो उसने अपनी प्रिय सखी तरलिका से सती होने की इच्छा व्यक्त की ।[339] बाण के अतिरिक्त उनके आश्रयदाता सम्राट् हर्ष की नाटिकाओं से भी सती-प्रथा के विषय में जानकारी होती है । नागानन्द नामक नाटिका में जीमूतवाहन की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी मलयवती ने सती होने की इच्छा प्रकट की थी ।[340] प्रियदर्शिका

से ज्ञात होता है कि विन्ध्यकेतु के मारे जाने पर उसकी स्त्रियाँ सती हो गयी थीं।[341]

गुप्तकालीन एरण अभिलेख से विदित होता है कि गोपराज की पत्नी अपने पति के साथ, जो हूणों के विरुद्ध लड़ता हुआ मारा गया था, सन् 510 ई० में सती हो गई ।[342] नेपाली अभिलेख से ज्ञात होता है कि महाराज धर्मदेव की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी राजवती ने अन्वारोहण किया था ।[343] सती प्रथा के इन सन्दर्भों से यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकलता कि बाण के समय सती-प्रथा धार्मिक आस्था के रूप में विद्यमान थी जैसा कि भारत में मध्ययुग से अट्ठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में बन्द किये जाने से पूर्व तक इस प्रथा का प्रचलन देखने को मिलता है । ऐसा ज्ञात होता है कि बाण के समय प्रचलित सती का प्रसंग "प्रथा" के नहीं अपितु व्यथा के परिणाम थे, जिसकी पुष्टि बाण के अपने ग्रन्थों से ही हो जाती है । हर्षचरित में जब देव हर्ष ने अपनी माँ यशोमति से प्रार्थना की थी कि माँ तुम भी मुझ मन्द पुण्य वाले को त्याग रही हो । इस विचार को त्याग दो[344] तो यशोमति ने विविध प्रकार से हर्ष को समझाने के बाद अपना दृढ़ निश्चय बताते हुए कहा था कि मैं अविधवा ही रहकर मरना चाहती हूँ । विधवा रति की भाँति मैं जले हुए अपने पति के शोक में निरर्थक प्रलाप नहीं कर सकती । तुम्हारे पिता की पैर की धूल के समान आकाश में अपने गमन को पहले ही सूचित करती हुई शूरानुरागिणी देवांगनाओं के आदर का पात्र बनूँगी, करने से अधिक साहस का कार्य इस समय मेरा जीवित रहना है । कैलाश के सदृश प्राणनाथ जब प्रवास कर रहे हैं तो पुराने तृण के टुकड़े की तरह तुच्छ जीवन के लिए लोभ की बात कहाँ घटती है ?[345] यशोमति के इस कथन में कहीं भी इस प्रकार का संकेत नहीं किया गया है कि वह धार्मिक बन्धन के कारण सती हो रही है अपितु वह मात्र अपने दुःखों से निवृत्ति पाने के लिए इस तरह के दुस्साहसिक कार्य को करने के लिए उद्यत है । इसी प्रकार के संकेत राज्यश्री के विषय में भी बाण ने उल्लिखित किया है । विंध्याटवी में एक बौद्ध-भिक्षु से अचानक मुलाकात होने पर राज्यश्री की सखियों ने उसके चितारोहण के जिन कारणों का उल्लेख किया है[346] उससे ऐसा लगता है कि राज्यश्री स्वामी के विनाश, पिता की मृत्यु,

बन्धुओं से बिछुड़ने, पुत्र न होने और शत्रुओं से किये गये पराभव से जनित दुःख के कारण ही चितारोहण के लिए उद्यत हुई थी, धार्मिक-प्रथा के कारण नहीं। इसके अलावा राज्यश्री ने अपने भाई को सम्बोधित करते हुए जो विलाप किया था जिसमें उसमें स्पष्ट कहा था कि "अत्यन्त निर्दयी चाण्डाल शोक तेरी मनोकामना पूरी हो", दुख देने वाले वियोग के राक्षस, तू अब सन्तुष्ट हो।[347] क्योंकि भाई हर्ष के न पहुँचने से वह अब अग्नि में प्रवेश कर रही है। बाण आगे स्पष्ट करते हुए लिखता है कि आचार्य दिवाकर मित्र के साथ हर्ष के पहुँचने पर उसने चितारोहण के विचार को त्यागते हुए कहा था कि स्त्रियों का पति और पुत्र ही अवलम्ब होता है। इन दोनों से हीन के लिए जीवित रहना केवल धृष्टता है[348] किन्तु आर्य के आ जाने से मृत्यु का प्रयास निष्फल हो गया।[349] प्रकट है कि राज्यश्री का सती होना उसके लिए कष्टों से मुक्ति पाने का एक साधन मात्र था न कि सती-प्रथा के कारण वह ऐसा करना चाहती थी।

बाण ने कादम्बरी में स्पष्ट रूप से सती-प्रथा का कड़ा विरोध करते हुए कहा है कि स्त्री सती होकर आत्म हत्या करती है। इस पाप के कारण उसे नरक भोगना पड़ता है।[350] स्पष्ट है कि यदि प्रथा ने धार्मिक-परम्परा का रूप धारण कर लिया होता तो महारानी यशोमति पति की मृत्यु के पश्चात् उनके शव के साथ चितारोहण करती और राज्यश्री कान्यकुब्ज के कारागार से भागने के बाद ही सती हो गयी होती। उल्लेखनीय है कि सती-प्रथा उत्तर भारत के क्षेत्रों में सती प्रथा के होने का संकेत मिलता है। सुदूर दक्षिण में सती-प्रथा अपवाद स्वरूप ही थी।[351] जो स्त्रियाँ सती नहीं होती थी वे न तो पुनर्विवाह करती थी, और न जीवन के अन्य सुखों का भोग करती थीं। वे श्वेत वस्त्र धारण करती थी और एक तरह की विधवा वेणी बाँधती थी जिससे उनके निम्न स्तर के जीवन यापन की झलक मिलती है।

बाण हर्षचरित में लिखता है कि आचार वंश कुलीन स्त्रियाँ घर से बाहर

जाने पर मुखावरण के लिए वदन पर अवगुण्ठनजालिका धारण किया करती थी।[352] इसी में एक स्थान पर बाण लिखता है कि राज्यश्री के द्वारा विवाहोत्सव में पति के सम्मुख अवगुण्ठन किया गया था[353] जिससे बाण के समय परदा प्रथा का संकेत मिलता है। संस्कृत साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि अवगुण्ठन करने का इतिहास कम से कम दूसरी शताब्दी ईसवी तक पुराना है। भास (द्वितीय शताब्दी ईसवी) के नाटकों में परदा का वर्णन किया गया है। स्वप्नवासवदत्तम् में उदयन ने परदा के विषय में कहा है कि यदि महारानी ने लोगों के सम्मुख परदा किया तो लोग इसको अनुचित करेंगे।[354] गुप्तकालीन साहित्य में कालिदास के ग्रन्थों में अनेकशः अवगुण्ठन का वर्णन किया गया है।[355] इसी प्रकार मृच्छकटिक से विदित होता है कि वधू बनते ही वसन्तसेना ने अपना मुख अवगुण्ठित कर लिया।[356]

उल्लेखनीय है कि बाण ने कादम्बरी में कादम्बरी, महाश्वेता तथा उसकी सखियों को कहीं भी परदे में दर्शित नहीं किया है। इस सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि संभवतः वधुओं के लिए यह प्रथा विशेष रूप से थी क्योंकि नागानन्द नाटक में कहा गया है कि कन्या के लिए परदे की कोई आवश्यकता नहीं। विवाह के पश्चात् ही इसकी अपेक्षा की जाती है।[357] माघ ने भी लिखा है कि नारी के मुख पर से एकाएक जब अवगुण्ठन हटता था, तब एक क्षण के लिए उसके सौन्दर्य की छवि दिखाई पड़ती थी।[358] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि द्वितीय शताब्दी ईसवी के बाद उच्चकुलों में परदा-प्रथा की परम्परा धीरे-धीरे प्रचलित हो रही थी। कभी विशेष अवसर पर अथवा वरिष्ठ जनों के सामने अवगुंठन करना सम्मानजनक समझा जाता था जो संभवतः बारहवीं शताब्दी ईसवी तक आते आते हिन्दू व्यवस्थाकारों द्वारा प्रतिबन्धित कर दिया गया, जिसके पीछे मुख्य कारण विदेशी आक्रमण था क्योंकि आक्रामकों की लोलुप दृष्टि सुन्दर स्त्रियों पर अधिक पड़ती थी। उल्लेखनीय है कि परदा-प्रथा का प्रचलन प्रधानतः उत्तर भारत में ही था, दक्षिण भारत इससे अछूता रहा।[359]

स्त्रियों की स्थिति के विषय में जानने के लिए बाण के समय के राजदरबारों पर दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता है। हर्ष के राजदरबार में अनेक स्त्रियों को वारविलासिनी, चामरग्राहिणी[360] आदि के रूप में उल्लिखित किया गया है। कादम्बरी में राजा शूद्रक का दरबार भी इस प्रकार की वारविलासिनियों एवं चामरग्राहिणियों से सुशोभित था।[361] शूद्रक को स्नान कराने तथा विभिन्न सेवा में स्त्रियों का वर्णन बाण ने किया है।[362] उससे आभास होता है कि स्त्रियों को मात्र सुख के लिए उपयोग किया जाता था, उन्हें वह सम्मान समाज में नहीं प्राप्त था, जो प्राचीन काल में था। निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है कि कतिपय उच्चकुलीन स्त्रियों की दशा यदि अपवादस्वरूप मान ली जाय, तो साधारण स्त्रियों की दशा सर्वथा दयनीय थी। इसके विपरीत उच्च कुल की स्त्रियों को राजनैतिक एवं सामाजिक दोनों सम्मान प्राप्त थे। कन्नौज के राज्य में राज्यश्री का यदि राजनैतिक कार्यों में हस्तक्षेप रहा हो तो असंभव नहीं है।

वेश-भूषा

हर्षचरित, कादम्बरी तथा चीनी यात्री के विवरण से बाण के समय की वेश-भूषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। ह्वेनसांग के अनुसार भारतीयों के नीचे और ऊपरी वस्त्र काटे तथा सिले नहीं जाते थे। यहाँ के लोग सफेद वस्त्र पहनना अधिक पसन्द करते थे।

हर्षचरित के चतुर्थ उच्छ्वास में राज्यश्री के विवाहोत्सव पर मुख्य रूप से छः प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख है।[362] उल्लेखनीय है कि चीनी यात्री ह्वेनसांग ने सूती, रेशमी, ऊनी, सन और कराल के वस्त्रों का उल्लेख किया है।[364] बाण द्वारा वर्णित वस्त्रों में क्षौम, बादर, दुकूल, लालातन्तुज, अंशुक, नेत्र और निर्मोक कहे गये हैं। बादर नामक वस्त्र को विद्वान् सूती वस्त्र मानते हैं।[365] हर्षचरित

के भाष्यकार शंकर ने भी इसे सूती ही माना है ।[366] अमरकोशकार क्षौम और दुकूल को एक दूसरे का पर्याय मानते हैं ।[367] इसी प्रकार अंशुक और नेत्र को भी समान वाचक माना गया है ।[368] बाण द्वारा इन वस्त्रों के प्रयुक्त किये जाने के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि ये वस्त्र भिन्न-भिन्न प्रकार के थे । राजद्वार के वर्णन में बाण ने अंशुक और क्षौम को भिन्न भिन्न माना है । उनके अनुसार अंशुक मन्दाकिनी के प्रवाह की तरह सफेद होता था और क्षौम वस्त्र पाण्डु वर्ण का होता था ।[369] क्षौमवस्त्र को भाष्यकार शंकर क्षुमा या अलसी से उत्पन्न मानते हैं ।[370] कुछ विद्वान् इसे अलसी के रेशे से निर्मित संभवतः "छालटीन" मानते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि रेशों से निर्मित वस्त्रों में क्षौम अधिक कीमती और मुलायम होता था ।[371] विद्वान् ऐसा मानते हैं कि चीनी भाषा में "छु-म" एक प्रकार की घास के रेशों से तैयार वस्त्रों के लिए प्राचीन नाम था जो बाण के समकालीन तंग काल में एवं इससे पूर्व भी प्रयुक्त होता था । मोटे तौर पर यह ज्ञात होता है कि क्षौम और दुकूल रेशों से निर्मित वस्त्र थे ।[372]

हर्षचरित के आधार पर कहा जा सकता है कि क्षौमवस्त्र असम में निर्मित होते रहे होंगे क्योंकि भास्करवर्मा ने जो उपहार हर्ष को भेजे थे उनमें क्षौमवस्त्र भी था जो बेत की करंडियों में लपेटकर रखे गये थे ।[373] कादम्बरी में चन्द्रापीड की आगवानी करते हुए उसके पिता को क्षौमवस्त्र से परिवेष्टित दिखाया गया है ।[374] भैरवाचार्य के वर्णन में क्षौम वस्त्र का उल्लेख मिलता है ।[375] बाण के हर्षचरित और कादम्बरी में अनेकशः दुकूल वस्त्र का प्रयोग किया गया है ।[376] इसी प्रकार कादम्बरी में अनेक प्रसंगों में दुकूल वस्त्र के प्रयोग का वर्णन प्राप्त होता है । शूद्रक वर्णन में दुकूल के चन्दोवा का, शूद्रक के द्वारा दुकूल वस्त्र धारण करने का, चन्द्रापीड के साथ विजय अभियान में जाते हुए वैशम्पायन द्वारा दुकूल वस्त्र पहनने आदि का उल्लेख प्राप्त होता है ।[377]

बाण ने विवाहोत्सव पर लालातन्तुज नामक वस्त्र का उल्लेख किया है, जिसका तात्पर्य शंकर ने कौशेय किया है ।[378] अग्रवाल महोदय का मन्तव्य है कि संभवतः यह पत्रोर्ण या पटोर रेशम था जिसे क्षीर स्वामी ने कीड़ों की लार से उत्पन्न माना है ।[379]

बाण के वर्णन से ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय समाज में सबसे अधिक प्रचलन अंशुक का था । अंशुक सम्भवतः दो प्रकार का होता था, एक देशी तथा दूसरा विदेशी । जिसे चीनांशुक कहा जाता था । चीनांशुक का वर्णन कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी किया गया है ।[380] अग्रवाल महोदय इसे कीटज वस्त्र मानते हैं उनके अनुसार पट्ट, अंशुक और चीनांशुक तीनों रेशम के कीड़ों से उत्पन्न वस्त्र हैं ।[381]

हर्षचरित में नेत्र नामक वस्त्र का उल्लेख पाँच बार किया गया है ।[382] हर्ष के लिए जब नेत्र सूत्र की पट्टी बाँधने का उल्लेख है तो वहाँ शंकर ने नेत्र सूत्र का अर्थ पट्ट सूत्र किया है ।[383] जब राज्यश्री के विवाह के अवसर पर नेत्र वस्त्र का उल्लेख किया गया है तो शंकर ने इसका अर्थ "पिंगा" किया है ।[384] हर्षचरित के सप्तम उच्छ्वास में नेत्र को "पटविशेष" कहा गया है ।[385] ऐसा लगता है कि नेत्र और पिंगा दोनों रेशमी वस्त्र थे किन्तु एक दूसरे से कुछ भिन्न थे । बाण स्वयं हर्ष के साथ चलने वाले राजाओं की वेशभूषा में दोनों को अलग-अलग माना है ।[386] बाण के अनुसार नेत्र धवल रंग का वस्त्र था ।[387] जबकि पिंगा रंगीन वस्त्र था ।[388] कतिपय विद्वान ऐसा मानते हैं कि नेत्र की पहचान बंगाल में बनने वाले नेत्र संज्ञक एक मजबूत रेशमी वस्त्र से की जा सकती है जो चौदहवीं शताब्दी ईसवी तक भी बनता रहा ।[389] राज्यश्री के विवाह में मण्डप को एक विशेष प्रकार के वस्त्र से आच्छादित किया गया था जिसे बाण ने "स्तबरक" कहा है ।[390] शंकर ने इसे विशेष प्रकार का वस्त्र माना है ।[391] कुछ विद्वान् ऐसा मानते हैं कि इसका निर्माण ईरान

में होता था ।[392] इस प्रकार बाण के समय समाज में अनेक किस्म के वस्त्रों का प्रचलन था, लोग अपनी पसन्द और हैसियत के अनुसार वस्त्रों को प्रयोग में लाते थे ।

पुरुष नीचे तक एक वस्त्र पहनते थे और कमर के चारों ओर (पेटी की तरह) एक वस्त्र लपेटकर काँखों तक ले जाते थे जिससे दाहिना कन्धा खुला रहता था । इसी प्रकार स्त्रियों के परिधान के विषय में वह कहता है कि स्त्रियाँ एक लम्बा परिधान पहनती थीं जो कन्धों से लेकर टखनों तक लटकता था । सिर पर माथे की ओर बालों की गाँठ लगाकर जूड़ा बना लेती थीं, बाकी खुले व लटके होते थे।[393] पुरुषों में कुछ लोग मूँछ कटवा देते थे, कुछ अन्य विभिन्न प्रकारों का प्रयोग करते थे। सिर पर लोग उष्णी (पगड़ी) और पुष्प-माला और शरीर पर रत्नों के हार धारण करते थे ।[394]

उल्लेखनीय है कि चीनी यात्री द्वारा प्रस्तुत वेश-भूषा का विवरण बाण के द्वारा उल्लिखित वेश-भूषा से साम्य रखता है । हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास में युवक दधीचि और उसके सैनिक की वेश-भूषा का बाण ने यथार्थ चित्रण किया है । दधीचि के सर पर मालती की माला नितम्ब तक लटक रही थी, उसके बालों में मौलसिरी की कलियों की मनोहर माला सज्जित थी । सिर पर शिखण्ड-खण्डिका नामक शिरोभूषण में पद्मरागमणि जड़ी हुई थी । कान में त्रिकण्टक आभरण लटक रहा था । शरीर पर श्वेत यज्ञोपवीत सुशोभित था । नीले रंग का अधोवस्त्र कमर में कसकर बाँधा गया था ।[395] बाण ने यहाँ अधोवस्त्र पहनने के ढंग पर विशेष बल दिया है । सामने की ओर नाभि से कुछ नीचे उसका एक कोना होता था जिससे शरीर को मोड़ने से दाहिनी जंघा का कुछ भाग दिखाई दे जाता था । अधोवस्त्र का कुछ भाग पीछे की ओर पल्ला खोंसने पर भी कुछ ऊपर निकला रहता था ।[396] कतिपय विद्वानों का ऐसा मत है कि बाण द्वारा वर्णित अधोवस्त्र के पहनने का तरीका गुप्त कालीन प्रतीत होता है क्योंकि गुप्त कालीन मूर्तियों में इस प्रकार

अधोवस्त्र पहनने का प्रमाण मिलता है ।[397] दधीचि के साथ सुभट सैनिक कंचुक पहिने थे और सिर पर चादर की उत्तरीय (पगड़ी) बांधे थे, कमर में दोहरे कपड़े की पट्टी बंधी थी ।[398]

दधीचि के साथ का वृद्ध पुरुष सफेद कंचुक पहने था और सिर पर दुकूल पट्टिका बांधे हुए था ।[399] बाण के पुस्तक वाचक सुदृष्टि को पुण्ड्र देश में बने पीले रेशम के दो वस्त्र पहने हुए दिखाया गया है ।[400] बाण के इन सन्दर्भों से ऐसा प्रतीत होता है कि पुरुष दो प्रकार के वस्त्र धारण करते थे जिन्हें उत्तरीय-वस्त्र और अधोवस्त्र कहा जाता था । हर्ष के वस्त्रों का वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है कि वे नेत्रसूत्र (रेशम) का अधोवस्त्र धारण किये थे जो अमृत के फेन के समान उज्ज्वल कान्ति वाला, वासुकि के केंचुल के समान महीन और रशना (करधनी) की मणियों से विकीर्ण होने वाली किरणों से खचित था । उनका उत्तरीय झीने तारों के जैसे सूक्ष्मबिन्दुओं से कढ़ा था ।[401] इसके अलावा चित्रित दुकूल वस्त्रों के पहनने का भी उल्लेख बाण ने किया है । सैन्य अभियान के समय हर्ष ने राजहंसमिथुन के चिन्हों से युक्त दुकूल वस्त्रों का जोड़ा धारण कर रखा था ।[402]

उल्लेखनीय है कि कालिदास ने भी दुकूल वस्त्रों पर हंसों की आकृति छापने का वर्णन किया है ।[403] महाराज प्रभाकरवर्द्धन को सूर्योपासना के समय श्वेत दुकूल वस्त्र पहनने तथा सिर को श्वेत वस्त्र से ढकने का उल्लेख किया गया है ।[404] इसी प्रकार कादम्बरी में भी राजा शूद्रक को उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हुए दिखलाया गया है जो सांप के केंचुल के समान अत्यन्त झीना और श्वेत था । राजा शूद्रक श्वेत रंग की रेशमी पगड़ी अपने सिर पर बांधे था ।[405] चन्द्रापीड के सिंहासनारोहण के समय दो नये वस्त्रों के धारण करने का उल्लेख आया है जिसकी किनारी दस अंगुल चौड़ी थी ।[406]

हर्षचरित में हर्ष के सैन्य अभियान के समय राजाओं को विभिन्न प्रकार के

पाजामे और कोट पहने वर्णित किया गया है। इनकी वेशभूषा में तीन प्रकार के पाजामों-स्वस्थान, पिंगा और सतुला-तथा चार प्रकार के कोटों-कंचुक, चीन चोलक, वार वाण तथा कूर्पासक - का उल्लेख मिलता है।[407] पाजामों के विषय में विद्वान् मानते हैं कि इनका प्रारम्भ शकों के समय में प्रथम शताब्दी ईसवी से प्रारम्भ हुआ। प्रथम शताब्दी की मथुरा कला में इनके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। शक-कुषाण युग के बाद सलवार-पाजामों का वेश गुप्त राजाओं ने सैनिक वर्दी के रूप में अपना लिया। समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त के कुछ सिक्कों पर स्वयं सम्राट् इसी वेष में अंकित है।[408] कंचुक संभवतः पैरों तक लम्बा बाँहदार कोट था, जिसका गला सामने से बन्द रहता था। वारवाण कंचुक की अपेक्षा कुछ कम लम्बा, घुटनों तक नीचा होता था। संभवतः यह सासानी ईरान की वेशभूषा से लिया गया था।[409] बाण ने राजाओं के चीन चोलक नामक वेश पहनने का उल्लेख किया है। इसके विषय में विद्वान् मानते हैं कि यह संभवतः चीन से लिया गया था। यह कंचुक या अन्य प्रकार के वस्त्रों के ऊपर पहना जाता रहा होगा। कूर्पासक के विषय में कहा गया है कि यह विभिन्न रंगों से रंगे जाने के कारण चितकबरे रंग का था। यह संभवतः मिर्जई के समान होता रहा होगा। इसकी दो विशेषताएँ थी पहला, कटि से ऊपर होता था और दूसरा आस्तीन रहित। कूर्पासक गुप्त काल में प्रसिद्ध पहनावा था।[410]

बाण के द्वारा वर्णित वेश-भूषा के अनुशीलन से ऐसा ज्ञात होता है कि गुप्त कालीन वेश-भूषा कमोवेश रूप में इस काल में भी प्रचलित था। बाण ने अनेक स्थानों पर श्वेत परिधान का उल्लेख किया है। कालिदास के ग्रन्थों में भी श्वेत वस्त्र को कल्याणकारी माना जाता था।[411] इसके अलावा गुप्त-कालीन साहित्य में जिन अन्य रंगों के वस्त्र लोकप्रिय थे उनमें लाल, नीला, श्याम, कुसुम्भ (केसरिया) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।[412] चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि उस समय कपास, रेशम, सन तथा ऊन से वस्त्र बनाये जाते थे। कपास की खेती की

जाती थी । रेशम जंगली रेशम के कीड़ों से प्राप्त किया जाता था । क्षौम वस्त्र सन से निर्मित होता था ।[413] कालिदास ने भी सर्दी और गर्मी के लिए ऊनी ।पत्रोर्ण। और रेशमी ।कौशेय। वस्त्रों का उल्लेख किया है ।[414] चीनी यात्री लिखता है कि सर्दी के समय लोग छोटे तथा कसे वस्त्र पहनते थे । श्रमणों की वेश-भूषा के विषय में वह कहता है कि ये तीन प्रकार के वस्त्र पहनते थे - सेंगकियाची ।सन्धाता।, सांगकियोकी ।संकाक्षिका। तथा निफोसिन ।निवासन। । इनकी मुख्य विशेषता सम्प्रदाय के अनुसार बनावट थी । कुछ के किनारे चौड़े होते थे, कुछ के छोटे । संकाक्षिका के विषय में ह्वेनसांग कहता है कि ये बायें कन्धे को ढक कर दोनों बगलों को बन्द कर लेता था । यह बायीं ओर खुला और दाहिनी ओर बन्द होता था । निफोसिन चुन्नटदार होता था और डोरी से कमर में बांधा जाता था । ब्राह्मण, क्षत्रिय स्वच्छ कपड़ा पहनना पसन्द करते थे ।

उच्चकुल के लोग कंकण, हार और आभूषण धारण करते थे ।[415] बाण ने वस्त्रों के अलावा पुरुषों के आभूषणों का विस्तृत उल्लेख किया है । हर्ष के विषय में उन्होंने लिखा है कि देव हर्ष की ग्रीवा को परिवेष्ठित किये हुए मुक्ताओं का हारदण्ड कन्धों तक लटका था ।[416] चूड़ामणि सिर पर सुशोभित हो रहा था। कानों में कर्णावतंस ।मणियुक्त कुण्डल। लटक रहा था ।[417] सिर के बालों में मालती पुष्पों की माला शोभायमान थी । सिर पर शिखण्डाभरण मोती और मरकत मणि से सुसज्जित था ।[418] इसके अलावा सैन्य अभियान के अवसर पर सम्राट हर्ष कानों में मरकत मणि के कर्णाभरण, हाथ की कलाई में कंकण और सिर पर श्वेत-पुष्पों की मुण्डमाला धारण किये थे ।[419] हर्षचरित में मुख्यतः पुरुषों के आभरणों में हाथ के कड़े हार और कानों के आभूषणों तथा करधनी का उल्लेख मिलता है । दधीचि के कर्णाभरण को त्रिकण्टक कहा गया है ।[420] सम्राट् के महाप्रतिहार दौवारिक पारियात्र के कान में कुण्डल का उल्लेख किया गया है ।[421]

कुमारभण्डि का कर्ण-कुण्डल इन्द्रनीलमणि और त्रिकण्टक में पिरोई मुक्ताओं

से युक्त था ।[422] त्रिकण्टक दो मोतियों के बीच में जड़ाऊ पन्ने सहित सोने का बाली के आकार का आभूषण होता है ।[423] ऐसा प्रतीत होता है कि त्रिकण्टक पुरुष तथा स्त्रियां दोनों समान रूप से पहनती थी क्योंकि बाण ने रानियों के कानों में डोलती हुई त्रिरत्नों वाली त्रिकण्टक बालियों का उल्लेख किया है ।[424] कादम्बरी में शूद्रक को कंठ में मोतियों की माला, बाहुलताओं में केयूर (बाजूबन्द) तथा कान में कमल के आकार का आभूषण पहने उल्लेख किया गया है ।[425] चन्द्रापीड के मृगया वर्णन में कुत्तों के पालन करने वाले लोगों को कान में सोने का "तालीपुट" नामक आभूषण धारण किये हुए दिखलाया गया है ।[426] चीनी यात्री ने राजाओं और संभ्रान्त लोगों द्वारा पहने जाने वाले आभूषणों की चर्चा की है जो बहुमूल्य रत्नों से जड़े होते थे ।[427] बाण के पश्चात् भी इस प्रकार के आभूषणों का प्रचलन था । सोमदेव कृत "यशस्तिलक" में स्त्री-पुरुषों के आभूषणों का विशद् विवरण प्राप्त होता है । सिर में पहनने वाले आभूषणों में किरीट, मौलि, पट्ट मुकुट और कोटीर आदि का उल्लेख किया गया है ।[428] कान के अलंकरणों में अवतंस, कर्णपूर, कर्णोत्पल, कुण्डल और कर्णिका विशेष प्रसिद्ध थे ।[429] कण्ठ के आभूषणों में हार, हारयष्टि, एकावली, मौक्तिकदाम और कौण्ठिका की चर्चा की जा सकती है ।[430] हाथ में अंगद और केयूर अधिक प्रसिद्ध आभूषण थे ।[431] कंकण और वलय कलाई में पहने जाने वाले आभूषण थे ।[432] उंगलियों में ऊर्मिका और अंगुलीयक पहना जाता था ।[433] ह्वेनसांग ने लिखा है कि सम्पन्न व्यापारी हाथ में सोने का कड़ा पहनते थे । जूता (पादत्राण) का प्रचलन बहुत कम था, अधिकांश लोग नंगे पाँव ही रहते थे । दाँतों को लाल या काले रंग से रँगने का उल्लेख मिलता है । बालों को बाँध कर जूड़ा बनाया जाता था । पुरुष कान छिदवाते थे और नाक में आभूषण धारण करते थे ।[434]

बाणभट्ट ने स्त्रियों की वेश-भूषा, आभूषण और प्रसाधन के विषय में विस्तृत ब्यौरा पेश किया है । हर्षचरित में मालती के वस्त्र, आभूषण और प्रसाधन के विषय

में लिखा है कि उसका सारा शरीर सफेद केंचुल के समान महीन रेशमी वस्त्र अंशुक से निर्मित कंचुक से ढँका था। वह कुसुम्भी रंग का लहँगा पहने थी जो बुंदकियों से चित्रित था।[435] स्थाण्वीश्वर की स्त्रियाँ कंचुक धारण करती थी।[436] बाण ने हर्षचरित में अन्यत्र स्त्रियों के दोनों ओर कंधों पर उत्तरीय लटकने का उल्लेख किया है।[437] सरस्वती को दुकूल-वल्कल के उत्तरीय आँचल से हृदय को ढँकते हुए दिखाया गया है।[438] कादम्बरी में चाण्डाल कन्या का शरीर गाँठों तक नीले कंचुक से ढँका था और सिर पर रेशमी ओढ़नी पड़ी हुई थी।[439] महाश्वेता को वल्कल का उत्तरीय और रेशमी अधोवस्त्र धारण किया हुआ दर्शाया गया है।[440] ह्वेनसांग स्त्रियों के पहनावे के विषय में लिखता है कि वे एक लम्बा वस्त्र धारण करती थी जो उनके दोनों कन्धों को ढँके रहता था।[441] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि बाण के समय स्त्रियाँ कंचुक, लहँगा, उत्तरीय प्रधान रूप से पहनती थीं।

बाण स्त्रियों के वस्त्रों की अपेक्षा उनके आभूषणों का अधिक विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हैं। हर्षचरित में मालती के आभूषणों का वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है कि वह कमर में घुँघरों वाली करधनी पहने थी। गले में आँवले के समान बड़ी बड़ी मुक्ताओं का हार धारण किये थी। उसके वक्ष पर रत्नों की प्रलम्ब माला लटक रही थी। हाथ की कलाई में पन्नों से जड़ा ग्राहमुखी सोने का कड़ा पड़ा हुआ था। बायें कान में नीला दन्तपत्र सुशोभित हो रहा था। कानों में तीन मुक्ताओं की बालियाँ लटक रही थी। दाहिने कान में ~~xxxxxx~~ केतकी का नुकीला पत्ता लटक रहा था और मालती सिर पर चूड़ामणि मकरिका धारण किये हुए थी।[442] स्थाण्वीश्वर की स्त्रियों के विषय में बाण कहता है कि वहाँ की स्त्रियाँ कान में कर्णावतंस, कुण्डल, इन्द्रनील मणि के नूपुर, हार आदि धारण करती थी।[443] इसके अलावा हर्षचरित में विभिन्न सन्दर्भों में आभूषणों का उल्लेख किया गया है। सरस्वती के कान के अवतंस का वर्णन किया गया है।[444] कान के आभूषण के रूप में पुष्पों को भी प्रयुक्त किये जाने का उल्लेख मिलता है।[445]

इसके साथ स्त्रियाँ के हार, कर्णोत्पल[446], पल्लव संयुक्त कुण्डल (पत्रकुण्डल), त्रिकण्टक बालियाँ, मुक्ता की बालियाँ, मरकत के कर्णभूषण और हंसक नूपुर तथा सोने की करधनी का उल्लेख मिलता है।[447]

कादम्बरी में चाण्डाल-कन्या वर्णन में जिन आभूषणों को निर्देशित किया है उनमें नूपुर सत्ताईस मोतियों से गुँथी एक लड़ी करधनी, गले में बड़े-बड़े मोतियों की माला, जड़ाऊ कर्णफूल आदि हैं।[448] इसी प्रकार राजकुल वर्णन में मेखला, हार, कर्णावतंस, कर्णपल्लव, का उल्लेख मिलता है।[449] महाश्वेता को बाण ने दक्षिणहस्त में सूक्ष्म शंख के टुकड़ों से बनी हुई अंगूठियाँ पहने तथा कलाई में शंखाभरण धारण किये बताया है।[450] सम्राट् हर्ष की नाटिकाओं में भी इसी प्रकार के आभूषणों का उल्लेख मिलता है। स्त्रियाँ पैरों में घुंघरू (पायजेब) पहनती थीं।[451] प्रियदर्शिका में उल्लिखित है कि स्त्रियों के पैर नूपुरों से सजे होते थे। वक्षस्थल पर आकर्षक हार, कमर में सशब्द शिंजान करधनी, कान में कुण्डल, भुजाओं पर बाजूबन्द, कलाई में कंकण तथा केश स्वस्तिकों से सुसज्जित रहते थे।[452] नागानन्द में एक स्थान पर नायक ने नायिका को सलाह दिया है कि हार, मेखला, नूपुर आदि आभूषण पहनना व्यर्थ है, क्योंकि वह प्रकृत्या रूपवती है।[453] नागानन्द के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि हार प्रायः स्वर्ण, मोती, मुक्ता अथवा रत्न के बने होते थे।[454] सोमदेव ने भी कमर में कांची, मेखला, रशना, क्षुद्रघण्टिका आदि ~~कमरके~~ प्रधान आभूषणों का उल्लेख किया है।[455] उनके अनुसार उस समय पैरों में मंजीर, नूपुर, तुलाकोटि और हंसक नामक अलंकार धारण किये जाते थे।[456]

बाण ने अपने साहित्य में अनेक प्रकार की प्रसाधन सामग्रियों का उल्लेख किया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय प्रसाधन का विशेष महत्व था। हर्षचरित में मालती द्वारा मस्तक में तमाल की भाँति श्यामल कस्तूरी के गन्ध से सुवासित अलिक बिन्दु लगाने का उल्लेख है, उसके सिर की माँग से ललाट पर

चलता तिलक नामक मणि लटक रही थी, बालों का जूड़ा ढीला बाँधा गया था जिससे पीठ पर लहर रहा था, उसके पैर में आलता रंग लगा था और तलवों में कुंकुम लगा था ।[457] मालती के साथ ताम्बूलकरंकवाहिनी चल रही थी ।[458] जिससे ऐसा प्रतीत है कि स्त्रियाँ भी पान खाती थीं । बाण ने हर्षचरित में अनेक स्थानों पर पान से रंगे हुए अधरों का उल्लेख किया है ।[459] आलता रंग का उल्लेख हर्ष के जन्मोत्सव पर नृत्य करती स्त्रियों के प्रसंग में किया गया है ।[460] ऐसा प्रतीत होता है कि पैरों में आलता लगाना और माथे पर सिन्दूररज सौभाग्यवती स्त्रियों का मांगलिक प्रसाधन था । एक स्थल पर ललाट पर चन्दन के टीके लगाने का उल्लेख मिलता है ।[461] राज्यश्री के विवाहोत्सव पर आयी हुई उच्चकुलीन स्त्रियाँ माथे पर सिन्दूर - रज लगाये हुए थीं ।[462] कादम्बरी में चाण्डाल कन्या को मस्तक पर गोरोचना का पीला टीका लगाये हुए पैरों में आलता लगाए हुए दिखाया गया है ।[463] इसी प्रकार अन्यत्र आलते को लगाए हुए राजकुल की स्त्रियों को दर्शाया गया है ।[464]

प्रसाधनों में सुगन्धित द्रव्य मुखवास के लिए स्त्री-पुरुष दोनों समान रूप से प्रयोग करते थे । हर्षचरित से ज्ञात होता है कि सहकार, कक्कोल, लवंग और पारिजात से बना सुगन्धित द्रव्य मुख को सुगन्धित करने के लिए काम में लाया जाता था । दधीचि के मुख से इन्हीं द्रव्यों की सुगन्ध आ रही थी ।[465] बाण लिखता है कि इस प्रकार के मुखवास से उठे हुए सुगन्ध के कारण स्थाण्वीश्वर की स्त्रियों के मुख मण्डल भौरों से घिरे हुए थे ।[466] सम्राट् हर्ष के मुख से मदिरा, अमृत और पारिजात के सुगन्ध आने का वर्णन बाण ने किया है ।[467] इसी प्रकार स्थाण्वीश्वर की स्त्रियों के मुख से भी मदिरा की गन्ध आ रही थी ।[468] राज्यश्री के मुख से परिमल की वास आ रही थी और विवाहोत्सव पर सुगन्धित द्रव्यों से भरी थैलियों का उल्लेख हर्षचरित में किया गया है ।[469] स्नान करने वाले पानी में भी सुगन्धित पदार्थ मिलाया जाता था ।[470] कादम्बरी में शूद्रक के स्नान के प्रसंग में भी सुवासित जल का वर्णन किया गया है जिसमें कुंकुम मिला हुआ था ।[471] मुख

को सुगन्धित करने के लिए शूद्रक ने धूमवर्तिका का पान किया ।[472] धूमवर्तिका के विषय में विद्वान् ऐसा मानते हैं कि चरक में कई औषधि द्रव्यों को मिलाकर धूमवर्ति बनाया जाता था जो जौ के समान बीच में मोटा और किनारों पर पतला होता था । नागर सर्वस्व में कपूर, अगरू, चन्दन, मुस्ता, पूति, प्रियंग और मांसी मिलाकर बनाई गई धूमवर्त्तिका उल्लेख किया गया है ।[473] हर्षचरित में शरीर को सुवासित करने के लिए कपूर, कस्तूरी और चन्दन से चर्चित किये जाने का उल्लेख है । दधीचि के दोनों बाहु कस्तूरी के पंक से निर्मित पत्ररेखाओं से चमक रहे थे । उसके वक्षस्थल पर कपूर की धूल डाली गयी थी ।[474] शूद्रक ने स्नान के पूर्व सिर में सुगन्धित आँवले का लेप किया ।[475] उसने पूजन के बाद सभी अंगों में कस्तूरी, केसर और कपूर से सुवासित चन्दन का लेप किया ।[476] शूद्रक के आस्थान मण्डप का फर्श कस्तूरी मिश्रित चन्दन के जल से सुगन्धित था ।[477]

हर्षचरित में वारविलासियों के प्रसंग में बाण ने कपूर की धूल की चर्चा की है जो उनके ऊपर सुगन्ध के लिए डाली गयी थी ।[478] पुष्पों के परिमल के अंगराग के कारण बाण ने राज्यश्री को कुसुमों की सुगन्ध जैसी कहा है ।[479] महारानी यशोमति के सती होने के प्रसंग में अंगराग का उल्लेख किया गया है ।[480] राजकुल के वर्णन में बाण ने लिखा है कि वह राजभवन सुगन्धितैलादि स्नान करने योग्य द्रव्य, धूप, चन्दनादि अनुलेपन द्रव्य एवं कुंकुमादि अंगलेप द्रव्य से उज्ज्वल दिखलाई पड़ता था । राजभवन में लवली, लवंग, इलाइची, कंकोल एवं ताम्बूल इकट्ठे थे ।[482] उल्लेखनीय है कि ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि भारतीय चन्दन और केसर जैसे सुगन्धित द्रव्यों का चूर्ण अपने शरीर पर मला करते थे ।[483]

भोज्य तथा पेय पदार्थ

बाण के साहित्य से भोजन के विषय में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है । इस सम्बन्ध में चीनी यात्री ह्वेनसांग का विवरण द्रष्टव्य है । उसने लिखा

है कि दूध, घी, मक्खन, सरसों का तेल, गेहूं आदि भारतीयों की सामान्य खाद्य वस्तुयें थीं। न अलावा सामिष भोजन का उल्लेख करता है जिसमें विभिन्न जीवों मछली, हिरण, भेड़ आदि के मांस खाये जाते थे।[484] चीनी यात्री ह्वेनसांग कुछ पशुओं के मांस को वर्जित बताता है जिनमें सांड़, हाथी, गर्दभ, कुत्ता, लोमड़ी, भेड़िया, बन्दर आदि थे। वह कहता है कि इन जानवरों के मांस को खाने वाले व्यक्तियों को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था और इन्हें निकृष्ट माना जाता था।[485] उसने लिखा है कि भारतीय व्यक्तिगत पवित्रता पर विशेष ध्यान देते थे। एक दूसरे की थाली को परस्पर छूते नहीं थे, भोजन स्नान करने के बाद किया जाता था।[486]

कादम्बरी में शूद्रक के नित्य कर्म में बाण ने लिखा है कि शूद्रक ने स्नान के पश्चात् भगवान् शिव की अर्चना की, तदनन्तर अंगलेप लगाने के पश्चात् भोजन के समय पंक्ति में बैठने योग्य राजाओं के साथ मनोनुकूल रसों का स्वाद लेते हुए संतुष्ट होकर भोजन क्रिया समाप्त की।[487] इससे चीनी यात्री की इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि लोग स्नान के पश्चात् भोजन करते थे। इसके अलावा वैशम्पायन शुक के लिए भी कंचुकी ने राजा शूद्रक को सूचना दी ह कि उसने आपके आदेशानुसार स्नान भोजन सम्पन्न कर लिया है।[488] राजा के द्वारा वैशम्पायन शुक से पूछे जाने पर उसने भोजन में जामुन, अनार और अंगूर आदि फलों के रसास्वादन की बात कही है, साथ ही उसने कहा, देवियों ने अपने हाथों से ला-लाकर जो कुछ भी दिया वे सब अमृत के समान मीठे थे।[489]

उच्छिष्ट (जूठा) भोजन न खाने की भारत में प्राचीन परम्परा रही है।[490] इस विषय में चीनी यात्री कहता है कि प्रत्येक समय भोजन से पूर्व भारतीय हाथ, पैर और मुंह धोते हैं। जूठी और बची चीजें नहीं परोसी जातीं। काष्ठ और मिट्टी के पात्र एक बार उपयोग करने के बाद फेंक दिये जाते थे, सोने, चाँदी,

ताँबे और लोहे के पात्रों को विधिवत् साफ किया जाता था ।[491] भोजन के बाद सींक से दाँतों को साफ किया जाता था, हाथ, मुँह धोने तक वे एक दूसरे को छूते नहीं थे ।[492] भारतीय भोजन प्रायः हाथ से करते थे, बीमारी की अवस्था में ताँबे के चम्मचों का प्रयोग किया जाता था ।[493]

ह्वेनसांग कहता है कि पेय पदार्थों में सुरापान किया जाता था । द्राक्षासव और ईख का रस ब्राह्मण और बौद्ध पीते थे, दाख और ईख की सुरा क्षत्रिय, तीव्रतम सुरा वैश्य और अन्य प्रकार की सुरा निम्न वर्ग के लोग पीते थे । सामान्य रूप से प्याज, लहसुन का प्रयोग वर्जित था ।[494] बाण के पूर्व के साहित्य से ऐसा ज्ञात होता है कि भोजन में मसाले का प्रयोग होता था । इलाइची, लौंग मिर्च आदि विविध प्रकार के मसालों का प्रयोग किया जाता था ।[495] सेंधा नमक का भी समाज में प्रचलन था ।[496] हर्षचरित में सम्राट् हर्ष को मदिरा से सुवासित मुख वाला बताया गया है ।[497] इसी प्रकार स्थाण्वीश्वर की स्त्रियों के मुख से मदिरा की बास आने का उल्लेख मिलता है ।[498] बाण के परवर्ती साहित्य में अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों का उल्लेख मिलता है । मानसोल्लास में चावल ।भात।, दाल, शष्कुली ।पूड़ी।, लप्सिका ।गेहूँ के आटे की लप्सी।, यवागु, मोदक, खांडव, उपदंश ।तरकारी।, घी में तले पदार्थ, पयसा पिष्टक ।सूखी तरकारी। पर्पट आदि व्यंजनों का उल्लेख मिलता है ।[499]

बाण ने सम्राट् हर्ष की सेना में पकने वाले बकरे, हरिण आदि के माँस का उल्लेख किया है ।[500] इसके अलावा बाण ने तपस्वियों, आश्रमवासियों के लिए फल, कन्दमूलफल एवं सावाँ का उल्लेख किया है ।[501] इस प्रकार बाण के समय सामिष और निरामिष दोनों प्रकार का भोजन समाज में प्रचलित था, साथ ही उच्च तथा निम्न दोनों वर्गों में संभवतः पेय के रूप में मदिरा का प्रयोग होता था ।

समाज में मेल-मिलाप के लिए कुछ परम्पराएँ होती है जिनमें अभिवादन,

आलिंगन आदि मुख्य माने जाते हैं। बाण के समय के परस्पर अभिवादन की परम्परा का विशद विवरण चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तान्त से प्राप्त होता है। वह लिखता है कि समाज में अभिवादन के निम्नांकित प्रकार थे: कुशल क्षेम के साथ अभिवादन; सश्रद्धा मस्तक झुकाकर प्रणाम; शरीर झुकाकर हाथों को मस्तक पर जोड़कर नमस्कार; वक्ष पर अंजलिबद्ध करके मस्तक झुकाना, एक घुटना मोड़कर नमस्कार करना; दोनों घुटनों को मोड़कर नमस्कार करना; भूमि पर हाथ-पाँव टेककर प्रणाम; घुटनों पर झुककर कोहनी और मस्तक भूमि पर टेककर प्रणाम; साष्टांग दण्डवत् द्वारा नमस्कार।[502] वह आगे लिखता है कि राजा को प्रणाम करते समय अभिवादन कर्त्ता उसके पैरों को छूकर नमस्कार करता था। उच्चवर्ग के लोग अभिवादन कर्ता के सिर और पीठ पर हाथ फेरकर मधुर वाणी में बात करते थे। बौद्ध जन अभिवादन कर्त्ता के उत्तर में केवल "स्वस्ति" कहते थे। देवपूजा में केवल प्रणाम ही नहीं किया जाता था अपितु एक या तीन बार प्रदक्षिणा की जाती थी।[503]

हर्षचरित में श्रेष्ठ जनों के प्रति प्रणाम आदि विनय प्रदर्शन को आभूषणों का भी अलंकार कहा गया है।[504] भैरवाचार्य के शिष्य का सम्राट् प्रभाकरवर्द्धन ने आदर वचनों से स्वागत किया।[505] भैरवाचार्य जब राजा से मिले तो "स्वस्ति" शब्द से राजा का अभिवादन किया और राजा ने भैरवाचार्य को झुककर प्रणाम किया।[506] आचार्य ने राजा को सम्मान के साथ व्याघ्रचर्म पर बैठने का निर्देश किया किन्तु राजा गुरु के आसन के समान होने के कारण अपने परिजन द्वारा लाये आसन पर ही बैठे।[507] यह प्रसंग बड़ों के प्रति शिष्टाचार का द्योतक है। इसी प्रकार सम्राट् हर्ष ने विन्ध्याटवी में दिवाकर मित्र को बौद्ध आचार्य होने के कारण "भदन्त" जैसे सम्माननीय शब्द से सम्बोधित किया और उनके आसन को न स्वीकार कर सामने जमीन पर ही बैठ गये।[508] कादम्बरी में चन्द्रापीड जब अपने पिता से मिलने गया, उस समय ताम्बूलकरंकवाहिनी के द्वारा बिछाये गये उत्तरीय पर न बैठकर पृथ्वी पर ही बैठ गया।[509] चन्द्रापीड ने सिर झुकाकर पिता को प्रणाम किया और तारापीड ने चन्द्रापीड का आलिंगन किया।[510] महारानी विलास-

पत्नी ने चन्द्रापीड को बार-बार छाती से लगाकर ललाट, छाती और कन्धों पर हाथ फेरा ।[511] शुकनास के दर्शन करने के लिए जाने पर चन्द्रापीड और वैशम्पायन का शुकनास ने गाढ़ आलिंगन किया तथा चन्द्रापीड एवं वैशम्पायन सेवक द्वारा लाये गये रत्नासन को छोड़ जमीन पर ही बैठे । चन्द्रापीड के जमीन पर बैठने पर सभी नरेन्द्र अपना अपना आसन छोड़कर जमीन पर बैठ गये ।[512]

चाण्डालकन्या के आने का सन्देश देने जब प्रतीहारी शूद्रक के पास गयी तो उसने घुटने टेककर तथा करकमलों से पृथ्वी को छूकर सविनय निवेदन किया ।[513] चाण्डाल कन्या ने शूद्रक को झुककर प्रणाम किया और मणियों से निर्मित फर्श पर बैठ गयी ।[514] हर्षचरित में प्रणाम के प्रकारों पर प्रकाश डालते हुए बाण ने लिखा है कि मालती जब दधीचि के पास पहुँची तो उसने उसे झुककर प्रणाम किया और दधीचि ने हाथ जोड़कर उसके संदेश का उत्तर दिया ।[515] महाराज गृहवर्मा का ताम्बूलदायक पारिजातक जब प्रभाकरवर्द्धन के यहाँ संदेश लेकर उपस्थित हुआ तो उसने दोनों भुजाओं को फैलाकर देर तक पृथ्वी पर सिर झुकाकर प्रणाम किया ।[516] इसी प्रकार भास्करवर्मा का दूत जब सम्राट् हर्ष की सेवा में उपस्थित हुआ तो उसने पाँचों अंगों से भूमि का आलिंगन करते हुए प्रणाम किया ।[517] इसी तरह माधवगुप्त, कुमारगुप्त ने महाराज प्रभाकरवर्द्धन को चारों अंगों और सिर से पृथ्वी को छूकर प्रणाम किया, साथ ही राज्यवर्द्धन तथा हर्षवर्द्धन को पृथ्वी की ओर सिर झुकाकर प्रणाम किया ।[518] स्कन्दगुप्त ने सम्राट् हर्ष को अपने दोनों हाथों का अवलम्बन लेकर मस्तक से भूमि का स्पर्शकर प्रणाम किया ।[519] हर्षचरित में बाण ने सामन्त राजाओं के द्वारा चार प्रकार के प्रणाम करने का संकेत भी किया है : सिर से नमस्कार, पदधूलि लेना, अंजलिबद्ध नमस्कार तथा चरणकमलों में प्रणाम आदि प्रधान प्रकार थे ।[520] जिनका विस्तृत विवरण "सामन्त-व्यवस्था" नामक अध्याय में किया जा चुका है । इस प्रकार ह्वेनसांग द्वारा वर्णित नमस्कार की सभी विधियों की बाण के साहित्य से पुष्टि हो जाती है । समाज में पद और श्रेष्ठता के अनुसार परस्पर अभिवादन के अनेक प्रकार थे जो समयानुसार प्रयुक्त होते थे । अभिवादन आदि में भी पद, आयु, तथा परिस्थिति का ध्यान रखना आवश्यक था ।

अभिवादन के समय विभिन्न वर्ग के लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के सम्बोधनों का प्रयोग करते थे। हर्षचरित और कादम्बरी में इसकी एक लम्बी सूची प्राप्त होती है जिनमें मुख्य रूप से पुरुषों के लिए भद्र, आयुष्मन्, देवानांप्रिय, तात, आर्यपुत्र, देव, सखे, स्वामी एवं अंग तथा महिलाओं के लिए आयुष्मति, कल्याणिनि, आर्ये, स्वामिनि, मनस्विनी स्वामिनि, आदि सम्बोधन हर्षचरित में उल्लिखित हैं।[521] इसी प्रकार कादम्बरी में भी देव, कुमार, वत्स, भगवान्, सखे, महाभाग, भद्र, देवी बाले, भतृदारिके, राजपुत्रि, सुभगे, अम्ब, भद्रमुखा, प्रिये आदि सम्बोधनों का उल्लेख मिलता है।[522] इससे तत्कालीन विभिन्न सोपान परम्पराओं में विभक्त समाज में स्त्री-पुरुष, निम्न एवं श्रेष्ठ जन की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है।

मनोरंजन

जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल से लेकर आज तक मनोरंजन का समाज में प्रचलन है यद्यपि इसके स्वरूप में परिवर्तन होता गया। कौटिल्य मनोरंजन करने वालों का उल्लेख करता है जिनमें नट, नर्तक, गायक, वादक, कथा-वाचक, कुशीलव (नर्तकियों को नचाकर जीविकोपार्जन करने वाला), प्लवक (बांस, रस्सी आदि पर चढ़कर खेल दिखाने वाला), सौभिक (बाजीगर) और चारण आदि थे जो खेल - तमाशा दिखाकर लोगों का मनोरंजन और अपना जीविकोपार्जन करते थे।[523] इसी प्रकार पतंजलि ने प्रहरण-क्रीड़ा, मल्ल-विद्या, पुष्पावचय, उद्यान-क्रीड़ा, आपान-गोष्ठी, द्यूत-क्रीड़ा आदि समाज में प्रचलित मनोरंजन के साधनों का उल्लेख किया है।[524] ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त-युग तक आते-आते शिकार को मनोरंजन के साधनों में मुख्य माना जाने लगा था। कालिदास के साहित्य में आखेट का विस्तृत विवरण मिलता है। रघुवंश में वर्णित है कि दशरथ के मन को आखेट ने कामिनी की तरह आकर्षित कर लिया था।[525] अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त को आखेट करने वाला कहा गया है।[526] कालिदास ने लिखा है कि प्रेमी-प्रेमिका झूला झूलकर मनोरंजन करते थे।[527] बाण के साहित्य के अनुशीलन से

ज्ञात होता है कि उस समय भी आखेट, गोष्ठी, संगीत, नृत्य, इन्द्रजाल, शतरंज तथा पशुपक्षी पालन आदि मनोरंजन के मुख्य साधन थे किन्तु ऐसा लगता है कि बाण के समय आखेट पर विशेष जोर नहीं दिया जाता था अपितु गोष्ठियों और संगीत को मनोरंजन में विशेष स्थान प्राप्त था । हर्षचरित में एक स्थान पर सम्राट हर्ष को मृगया रत बताया गया है ।[528] इसी प्रकार कादम्बरी में चन्द्रापीड का आखेट के लिए जाने का उल्लेख है । बाण ने शुकनासोपदेश में शुकनास से चन्द्रापीड के लिए कहलवाया है कि धूर्तगण राजाओं को इस प्रकार समझाते हैं कि शिकार खेलना व्यायाम है ।[529] इससे ऐसा आभास होता है कि आखेट को व्यसन नहीं बना लेना चाहिए । इसके अलावा बाण कादम्बरी में शूद्रक के मनोरंजन का विशद वर्णन करते हैं, जिसमें कहा गया है कि वह कभी संगीत की गोष्ठियों में कभी शिकार खेलने में कभी विद्वानों की गोष्ठियों में काव्य प्रबन्ध की रचना करके कभी चित्र बनाने या वीणा बजाने में, कभी पहेलियों के निर्माण से मनोरंजन करता था ।[530] हर्षचरित में भी बाण ने गोष्ठियों का उल्लेख किया है । भगवान् ब्रह्मा के लोक में दोषरहित गोष्ठियों में अनेक लोग भाग ले रहे थे ।[531]

स्थाण्वीश्वर के विषय में कहा गया है कि उसे चतुर लोग विदग्धगोष्ठी का स्थान समझते हैं ।[532] बाण स्वयं के जीवन चरित के विषय में कहता है कि वह बड़ी बड़ी गोष्ठियों में बैठने लगा जो गुणीजनों के बहुमूल्य आलाप के कारण गम्भीर थीं ।[533] हर्ष के भाई कृष्ण के द्वारा दरबार में बुलाए जाने पर बाण स्वयं सोचता है कि न मुझमें वैसी विलक्षण चतुराई है कि विद्वानों की गोष्ठियों में भाग लूँ ।[534] इस प्रकार बाण द्वारा अनेक स्थानों पर गोष्ठियों के उल्लेख से इनके महत्वपूर्ण का संकेत मिलता है । भाष्यकार शंकर ने गोष्ठी की परिभाषा करते हुए लिखा है कि विद्या, धन, शील, बुद्धि और वय में समान लोग जहाँ एकत्रित हों, उसे गोष्ठी कहते हैं ।[535] वात्स्यायन को उद्धृत करते हुए शंकर ने लिखा है कि गोष्ठी दो प्रकार की होती थी, प्रथम जिसमें अच्छे लोग क्रीड़ा, विद्या आदि से मनोरंजन करते

थे, अच्छी गोष्ठी होती थी, तथा द्वितीय जिसमें जुआ, हिंसा जन्य कार्य से मनोरंजन किया जाता था, बुरी गोष्ठी कही जाती थी ।[536] संभवतः इसीलिए बाण ने हर्षचरित के प्रारम्भ में ही निरवद्य ।दोषरहित। गोष्ठी का उल्लेख किया है । जिनसेन कृत महापुराण में कई प्रकार की गोष्ठियों का उल्लेख मिलता है । जिनमें पद-गोष्ठी, काव्य-गोष्ठी, जल्प-गोष्ठी, गीत-गोष्ठी, नृत्यगोष्ठी, वाद्य-गोष्ठी, वीणा-गोष्ठी आदि उल्लेखनीय हैं । उनके अनुसार बाण ने स्थान स्थान पर जि विद्या-गोष्ठियों का उल्लेख किया है इनमें से संभवतः पद-गोष्ठी, काव्यगोष्ठी और जल्प-गोष्ठी, विद्या-गोष्ठी के ही भेद रहे होंगे ।[537]

शूद्रक वर्णन में आख्यान, आख्यायिका, इतिहास, पुराण आदि सुनने-सुनाने की जो परम्परा थी उसे जल्प-गोष्ठी कहा जा सकता है । इसी प्रकार पद-गोष्ठी का समीकरण बाण द्वारा वर्णित अक्षर-च्युतक, मात्राच्युतक, बिन्दुमती, गूढ चतुर्थपाद आदि रचनाओं से किया जा सकता है ।[538] हर्षचरित में सम्राट् हर्ष के मनोविनोदों में वीर-गोष्ठी का उल्लेख भी किया गया है ।[539] बाण के वर्णन से ऐसा आभास होता है कि वीर-गोष्ठियों में वीरों की कहानियों का श्रवण होता है । कभी कभी गोष्ठियों में परस्पर मतभेद उभर आते थे ये मतभेद दुर्भावना से नहीं, अपितु विद्या के विवाद से भी सम्भव थे । इसी प्रकार के एक मतभेद का वर्णन बाण ने हर्षचरित में किया है जो दुर्वासा और मन्दपाल के बीच हो गया था ।[540] इस प्रकार मनोरंजन के क्षेत्र में बाण के समय गोष्ठियों का निःसन्देह महत्वपूर्ण स्थान होने का संकेत मिलता है ।

गोष्ठी के पश्चात् बाण और उनके समकालीन साहित्य में जिस मनोरंजन का वर्णन किया गया है वह संगीत है जिसमें वादन, गायन और नृत्य को प्रमुखता प्रदान की गयी है । बाण ने हर्षचरित और कादम्बरी में स्थान-स्थान पर वादन का उल्लेख किया है । कादम्बरी में राजा शूद्रक को स्वयं मृदंग और वीणा बजाने में रत दिखाया गया है ।[541] महाश्वेता को वीणा वादन में कुशल बताते हुए चन्द्रापीड ने उसके गीत की प्रशंसा की है ।[542] तारापीड के राजकुल वर्णन में बाण ने

लिखा है कि जिस प्रकार वीणादिक वाद्ययन्त्रों से सुनने वाले अनेक प्रकार शब्द माधुर्यों का रसास्वादन करते हैं, उसी प्रकार काव्यों के ज्ञाता राजभवन में काव्य रस का पान करते हैं।[543] महाराज तारापीड के दरबार में किसी-किसी के द्वारा वीणा बजाने का उल्लेख मिलता है।[544] इसके अलावा राजपुत्रों की शिक्षा में भी वाद्य-यन्त्रों को शामिल किया जाता था। चन्द्रापीड को वीणा, वंशी, मृदंग, कांसा, मंजीरे, तूती आदि वाद्य-यन्त्रों की शिक्षा देने का उल्लेख है।[545] चन्द्रापीड के जन्मोत्सव पर कोमलशब्दकारी मृदंग, शंख, बड़े ढोल और छोटे नगाड़े बजाये जाने का वर्णन है।[546] कादम्बरी में चन्द्रापीड की दिग्विजय यात्रा के अवसर पर प्रस्थान दुन्दुभि (यात्रापटह) बजाये जाने का विवरण मिलता है।[547]

हर्ष के सैन्य अभियान के अवसर पर पटह (नगाड़ा) बजाया गया।[548] प्रभाकरवर्द्धन की बीमारी के समय जब हर्ष स्कन्धावार में पहुँचा तो तूर्य बजाया नहीं जा रहा था।[549] हर्ष के जन्मोत्सव पर अनेक वाद्य-यन्त्रों के बजाये जाने का उल्लेख है। मुख से बिना बजाये शंख बज उठी। अभिषेक का दुन्दुभि और मंगल तूर्य भी बिना बजाए बज उठे।[550] इसके अलावा नृत्य के अवसर पर आलिंग्यक नाम का मृदंग शनैः शनैः बजाया जा रहा था। वंशी की सुरीली तान बज रही थी। झल्लरी भी झड़झड़ा रही थी। तन्त्रीपटहिका नामक (ताशेनुमा छोटा) बाजा टुनटुनाया जा रहा था। नीचे की तुम्बी वाली अलाबुकी वीणा धीरे-धीरे बजाई जा रही थी। कांस्यकोशी काकण नामक वाद्य भी बज रहा था। नाचने वालों के शरीर में पटह (नगाड़ा) की गम्भीर आवाज से रोमांच हो जाता था।[551] इस विषय में विद्वान् ऐसा मानते हैं कि आलिंग्यक नामक मृदंग गोपुच्छाकृति होती थी जिसका एक सिरा चौड़ा और दूसरा संकरा होता था।[552] उल्लेखनीय है कि अमरकोशकार ने तीन प्रकार के मृदंग बताये हैं: अंक्य, आलिंग्यक और ऊर्ध्वक।[553] कालिदास के कुमारसंभव में तीनों का एक साथ उल्लेख मिलता है[554] जिससे गुप्तकाल में इनके प्रचलन का संकेत मिलता है। झल्लरी संभवतः आधुनिक झांझ

के समान होती थी। कांस्यकोशी क्वणित कांस्य बाजा का समीकरण झाँझ से किया जा सकता है। तन्त्रीपटह गले में लटकाकर बजाने वाला छोटा बाजा होता है।[555] इस प्रकार हर्षचरित और कादम्बरी में विभिन्न प्रकार के वाद्य-यन्त्रों का उल्लेख मिलता है किन्तु इनमें सबसे अधिक वीणा का उल्लेख उस समय इसके महत्व की ओर संकेत करता है। सम्राट् हर्ष की नाटिकाओं में भी अनेक स्थानों पर वीणा का उल्लेख किया गया है। नागानन्द में जीमूतवाहन मलयवती की वीणा से आकर्षित होकर कहता है कि इस गाने में वीणा बजाने की दस प्रकार की व्यंजनरीति अभिव्यक्त हो रही है। तीनों प्रकार के लय यहाँ साफ तौर से मालूम पड़ रहे हैं और गोपुच्छा आदि तीनों तरह की यति इस गीत में ठीक स्थान पर रखी गयी है तथा तत्व, ओघ, अनुगत नामक तीनों प्रकार के बजाने का ढंग इस गाने में दिखाया गया है।[557] इसी प्रकार प्रियदर्शिका में भी आरण्यका के द्वारा वीणा बजाये जाने पर राजा प्रशंसा करता हुआ कहता है कि "व्यंजनरीति के दस प्रकार के प्रहार यहाँ विशेष रूप से स्पष्टता को प्राप्त कर रहे हैं। द्रुत, मध्य और विलम्बित नामक तीनों प्रकार के लय प्रकट हो रहे हैं, समा, स्रोतोगता तथा गोपुच्छ नामक तीनों प्रकार की यतियाँ क्रमशः बनी हैं, तत्व, ओघ और अनुगत नामक तीनों वाद्य के प्रकार इसमें स्फुट दिखाये गये हैं।[558] उल्लेखनीय है कि भरत के नाट्यशास्त्र में व्यंजनरीति के दस प्रकार बताये गये हैं जो कल, तल, निष्कोटित, उन्मृष्ट, रेफ, अवमृष्ट, पुष्प, निःस्वनित, बिन्दु तथा अनुबन्ध हैं।[559] इसी प्रकार लय, यति आदि के विषय में भी नाट्यशास्त्र में विशद विवेचन किया गया है। इससे ऐसा संकेत मिलता है कि गाने-बजाने में भिन्न-भिन्न गुणों का होना अनिवार्य होता है वे गुण बाण के समय प्रचलित थे और शिष्ट तथा सम्भ्रान्त लोग शास्त्रीय संगीत का सम्मान करते थे।

बाण ने हर्ष के जन्मोत्सव पर लिखा है कि सहृदय लोग मानों वेश्याओं के ताल और लय का अनुसरण करते चल रहे हों। कोयल के समान वे काकली के अव्यक्त

मधुर स्वर में गा रही थी । सुनने में चितों को प्रिय लगने वाले गाली भरे रासक गीत गा रही थीं ।[560] विद्वान् ऐसा मानते हैं कि रासक गीत का तात्पर्य शायद अश्लील गीतों से है । रासक शब्द का यह उल्लेख सबसे प्राचीन है । यहाँ रासक का अर्थ स्त्रियों में गाये जाने वाले ग्राम्य गीत ही ज्ञात होता है ।[561] शंकर ने अश्लील का अर्थ ग्राम्य किया है ।[562] राग का उद्दीपन करने वाली गीतियों में[563] का तात्पर्य संभवतः श्लेष से राग के साथ सम्बद्ध रागिनियों से है ।[564] बाण ने सरस्वती के द्वारा शिव-पूजन में "ध्रुवागीति" का उल्लेख किया है ।[565] व्याख्याकार शंकर ने इसे विशिष्ट गीत कहा है ।[566] ध्रुवागीति के पाँच भेद बतलाए गए हैं : प्रावेशिकी (रंग-प्रवेश के समय की); नैष्क्रमिकी (रंग से निष्क्रमण के समय की); आक्षेपिकी, आन्तरा और प्रासादिकी जो अभिनेता के रंग पर अभिनय के बीच में गायी जाती थी । ये गीतियाँ अभिनय की प्रस्तुति में भाव उत्पन्न करती थीं[567] । ध्रुवागीतियों की एक विशेषता यह थी कि ये वर्ण्य वस्तु को प्रतीक या अन्योक्ति द्वारा कहती थीं । ध्रुवागीतियाँ प्रायः प्राकृत भाषा में होती थीं, जिससे ज्ञात होता है कि ये लोकगीतों से ली गयी हैं । संस्कृत की ध्रुवाएँ बहुत बाद में लिखी गयीं । ध्रुवागीति का गान प्रायः समूह गीत के रूप में होता था ।[568] राज्यश्री के विवाहोत्सव पर कुछ उच्चकुलीन स्त्रियाँ वर-वधू के नाम ले-लेकर मंगल गीत गा रहीं थीं ।[569]

कादम्बरी में भी गीतों के गाये जाने के उल्लेख मिलते हैं । चन्द्रापीड के जन्मोत्सव पर अनेक वृद्ध स्त्रियाँ प्रसूति के मंगल के लिए गान आरम्भ कर सुन्दर दिखाई दे रही थी ।[570] इसी अवसर पर चारणों के द्वारा गीत गाये जाने का भी उल्लेख मिलता है ।[571] महाश्वेता द्वारा गाये गये गीत के विषय में बाण लिखता है वह वीणा की ध्वनि पर शिव के लिए ध्रुवागीति का गानकर रही थी, उसके गीत भावनाओं से युक्त थे, वह ताल समन्वित थी, उसमें मन्द्र और तार स्वरों का उतार चढ़ाव था, उसके वर्णों में राग था और आलाप से युक्त थी ।[572] ध्रुवागीति का हर्षचरित और कादम्बरी में भी शिवपूजन के समय वर्णन करके संभवतः बाण यह इंगित

करते हैं कि समाज में इसका विशेष प्रचार था किन्तु शायद उपासना से इसका विशेष सम्बन्ध भी था, क्योंकि दोनों ग्रन्थों में उपासना समय ही ध्रुवागीति का वर्णन किया गया है । इस प्रकार बाण के समय समाज में वाद्य की तरह अनेक प्रकार के गानों का भी प्रचलन था जो समयानुसार विशिष्ट अवसर पर गाये जाते थे । सम्राट् हर्ष की नाटिका रत्नावली में भी नागरिकों और पुरवासियों द्वारा वसन्तोत्सव पर चर्चरीध्वनि में गाये जाने का उल्लेख है ।[573]

वादन और गायन की ही तरह नृत्य का भी उल्लेख बाण के साहित्य में मिलता है । हर्षचरित में ग्रीष्मकाल का वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है कि धूल के बवंडर जगह बदलते हुए ऐसे लगते थे मानों रास के अवसर पर आनन्द वेग से आरभटी नृत्य में नट नाच रहे हों ।[574] उल्लेखनीय है कि बाण ने दो बार आरभटी नृत्य करने वाले नटों का उल्लेख किया है । प्रथम वर्णन में आरभटी शैली में नृत्य कर्त्ता नट मण्डलाकार रूप में रेचक (कमर, हाथ, ग्रीवा को मटकाते हुए) रास नृत्य करते हैं । बाण इस नृत्य की चार विशेषताएँ बताते हैं : मंडलीनृत्य, रेचक, रास रस और रभसारब्धनर्तन भाष्कार शंकर ने सरस्वती कण्ठाभरण को उद्धृत करते हुए मण्डलीनृत्त को हल्लीसक कहा है जिसमें स्त्री-मंडल के बीच में एक पुरुष नेता के रूप में नाचता है ।[575] इसे ही भोज ने हल्लीसक कहा है जिसके विषय में अग्रवाल महोदय का मन्तव्य है कि हल्लीसक यूनानी शब्द "इलीशियन" से उत्पन्न हुआ जान पड़ता है इसलिए इसका समय ईसवी सन् के आस-पास हो सकता है ।[576] रेचक के विषय में शंकर तीन प्रकार के रेचक का उल्लेख करते हैं : कटिरेचक, हस्तरेचक और ग्रीवारेचक ।[577] इसी प्रकार रास के विषय में शंकर का मत है कि आठ, सोलह या बत्तीस व्यक्ति जब मण्डल बनाकर नृत्य करें तो रासनृत्य कहा जाता है ।[578] अत्यन्त वेगशाली नृत्य जिसमें हाथ पैर का संचालन वेग से किया जाता है रभसारब्ध नर्तन कहा जाता है । बाण ने इन चारों को संयुक्त रूप से नृत्य की आरभटी शैली कहा है । शंकर ने लिखा है कि उछल-कूद, मार-काट, माया, इन्द्रजाल आदि के दृश्य जिस नृत्य में दिखाये जायें उसे आरभटी कहा जाता है ।[579] नाट्यशास्त्र में

भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी को नृत्य की प्रधान शैली माना गया है ।[580] भरत ने इन शैलियों की पहचान भौगोलिक स्थिति के अनुसार किया है । आरभटी की पहचान अग्रवाल महोदय बलूचिस्तान के दक्षिणी भाग से किया है जहाँ आरबिटाई या आर्बिटी नामक जाति का उल्लेख आता है ।[581] बाण आगे कहता है कि आरभटी शैली में नृत्य करते नट बालों को खुला छोड़कर नाचते हैं ।[582] इस विषय में कहा जाता है कि सिर के बाल खोलकर नृत्य करना और वेग से अंग-संचालन कबायली लोगों की पद्धति जान पड़ती है ।[583]

इसके अलावा बाण अन्य अनेक स्थानों पर भी नृत्य करने का उल्लेख करते हैं । हर्ष के जन्मोत्सव पर राजकुल की स्त्रियाँ नृत्य करती हुई दिखाई गई हैं । नृत्य का अभ्यास न होने पर भी शर्मालु कुलपुत्र राजा के प्रेम में नाचने लगे । नाच के समय राजभवन में भँवरियों के समान रासमंडलियाँ बन गईं । जगह जगह वेश्यायें नृत्य में रत थीं । राजकुल के सभी कर्मचारियों के नृत्य का उल्लेख भी किया गया है ।[584] चन्द्रापीड के जन्मोत्सव पर छोटे-छोटे राजा लोग, रनिवास की सब स्त्रियाँ, नगर के रहने वाले मनुष्य, राजपुरुष, नौजवान, वेश्याएँ, बालक तथा वृद्ध गण एवं समस्त प्रजावर्ग आनन्द से परिपूर्ण होकर नृत्य करने लगे ।[585]

इस प्रकार नृत्य का समाज में उत्सवों के अवसर पर विशेष महत्व था । राजपुत्रों एवं राजकुमारियों को इसकी शिक्षा भी दी जाती थी । चन्द्रापीड को भरतमुनि के द्वारा प्रणीत नाट्यशास्त्र के शिक्षा देने का उल्लेख है ।[586] राज्यश्री को भी नृत्य की शिक्षा उपलब्ध कराई गई थी ।[587] वेश्याएँ नर्तन एवं गायन में प्रवीण होती थी । नट भी नृत्य के माध्यम से लोगों का मनोरंजन करते थे ।

इसके अतिरिक्त बाण मनोरंजन के अन्य साधनों में द्यूत ।जुआ।, चमत्दिटक शतरंज, पहेलियाँ बुझाना, इन्द्रजाल, आदि का उल्लेख करता है । राजा तारापीड

के दरबार का वर्णन करते हुए बाण लिखता है कि सभामण्डप में अनेक सहस्र संख्यक राज्याभिषिक्त अधीनदेशस्थ राजागण बैठे थे जिनमें कुछ लोग जुआ खेल रहे थे, कुछ बार बार शतरंज खेल रहे थे। कुछ लोग चित्रफलक पर महाराज तारापीड का चित्र बना रहे थे। कुछ वारांगनाओं से वार्तालाप करके आनन्द ले रहे थे।[588] राजा तारापीड अपने राजमहल में युवतियों के साथ जलक्रीड़ा करते थे। उद्यान में भ्रमण करता था तथा मद का सेवन करके मस्त हो जाता था।[589] हर्षचरित में उल्लिखित है कि स्थाण्वीश्वर को बन्दी लोग समझते कि जुआ खेलने का उचित स्थान है।[590]

हर्ष के राजत्व का बाण वर्णन करते हुए कहता है कि शतरंज के खेल में ही सेना के चार अंग की कल्पना है।[591] इसके अलावा मनोरंजन के लिए पक्षियाँ पाले जाने का संकेत बाण ने किया है। उज्जयिनी में पिंजरे में बैठे हुए शुक-सारिकागण सुबह जागकर उच्च स्वर से प्रातःकाल के मंगलगीत गाते हैं। पालतू (गृहस्थित) सारस के शब्द सुनाई नहीं देते।[592] जाबालि आश्रम में भी तोता-मैना के पाले जाने का उल्लेख किया गया है।[593] इसके अलावा राजा शूद्रक के दरबार में चाण्डाल कन्या का शुक लेकर आना, इस बात को इंगित करता है कि राजमहल में भी पक्षियों का पालन होता था।[594] हर्षचरित में सम्राट् हर्ष को भास्करवर्मा द्वारा भेजे गये उपहार में अनेक पशु-पक्षियाँ, किन्नर, वनमानुष, जीवंजीवक, जलमानुषों के जोड़े, कस्तूरी हिरण, शुक-सारिका, चकोर आदि के वर्णन भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि इस प्रकार के पशु-पक्षी लोगों के मनोरंजनार्थ पाले जाते थे।[595]

हर्षचरित में यमपट्टिक का उल्लेख बाण ने किया है जिसे लड़कों ने घेर रखा था। उसके बायें हाथ में ऊँची लाठी के ऊपरी सिरे पर चित्रपट लगा था जिसमें परलोक में मिलने वाली नरकयातनाओं का अंकन था।[596] इन्द्रजाल का उल्लेख कादम्बरी में चन्द्रापीड की शिक्षा के प्रसंग में किया गया है।[597] इसके अलावा हर्ष की नाटिका रत्नावली में इन्द्रजाल के खेल का भी वर्णन मिलता है। ऐन्द्र-

जालिक अपने कार्यों में असंभव को संभव बताये जाने पर कहता है क्या धरती पर चन्द्रमा दिखलाया जाये? या आकाश में पर्वत, या जल में अग्नि अथवा मध्याह्न में सन्ध्या दिखलाई जाये ।[598] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्रजाल को सामूहिक रूप से समाज में मनोरंजन के लिए प्रदर्शित किया जाता था । चित्रकारी भी मनोरंजन के लिए मनोरंजन का एक साधन थी । तारापीड के राजकुल में लोग उनका चित्र बनाया करते थे ।[599] रत्नावली में सागरिका के द्वारा उदयन का चित्र बनाये जाने का उल्लेख है जिसमें रंगों की पेटी, चित्रपट और तूलिका का वर्णन है ।[600]

लोग अपना मनोरंजन उत्सव मनाकर भी किया करते थे । स्थाण्वीश्वर के विषय में कहा गया है कि चारणों के अनुसार वह महोत्सवों का समाज था ।[601] रत्नावली में बसन्तोत्सव मनाने का विशद वर्णन मिलता है ।[602] ऐसी मान्यता है कि यह फाल्गुन पौर्णमासी से लेकर पंचमी पर्यन्त मनाया जाता था ताकि होलिका नामक राक्षसी सन्तुष्ट हो जाये और शिशुओं की रक्षा हो । इस प्रकार बाण के समय उत्सव मनाकर भी मनोरंजन किये जाते रहे होंगे । यद्यपि उसने अपने साहित्य में किसी भी ऐसे उत्सव की चर्चा नहीं की है जिसे संयोग ही कहा जा सकता है ।

चीनी यात्री ह्वेनसांग समवेत रूप से भारतीयों के विषय में लिखता है कि यद्यपि भारतीय शीघ्र कुपित होने वाले और अधीर स्वभाव के होते हैं, वे नैतिक, सच्चे और सरल हृदय के होते है । अधर्म से कुछ ग्रहण नहीं करते, दूसरों के लाभ हेतु उदार हैं । अर्थ के विषय में बेइमानी नहीं करते और न्याय निष्ठ होते हैं । वे दूसरे जन्म में पापों के परिणामों से डरते हैं और संसार की वस्तुओं को तुच्छ समझते हैं । वे किसी को धोखा नहीं देते और अपनी बात पर अडिग रहते हैं ।[603]

सन्दर्भ

1. थापर रोमिला : इथिक्स, रिलीजन एण्ड सोशल प्रोटेस्ट (सं० मलिक, डिसेन्ट, प्रोटेस्ट एण्ड रिफार्म इन इंडियन सिविलाइजेशन, पृ० 224.

2. राय, जयमल : द रूरल अरबन इकानामी एण्ड सोशल चेंजेज इन एन्सिएण्ट इण्डिया, पृ० 321.

3. कर्वे, इरावती : हिन्दू सोसाइटी : ऐन इन्टरप्रिटेशन, पृ० 112.

4. मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ० 36.

5. थापर रोमिला : अशोक एण्ड द डिक्लाइन आँव द मौर्याज, पृ० 57.

6. मिश्र जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ० 39.

7. वही : पृ० 39.

8. वही : पृ० 39.

9. मनुस्मृति : 10.43-44.

10. महाभाष्य : 2.4.10.

11. मिश्र, जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ० 41.

12. कर्वे, इरावती : पूर्वोद्धरित, पृ० 38.

13. शर्मा, रामशरण : पूर्व मध्यकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ० 4.

14. मिश्र, जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ० 42.

15. शर्मा, रामशरण : पूर्वोद्धरित, पृ० 8.

16. काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, जिल्द 3, पृ० 934.

17. अल्तेकर : द राष्ट्रकूटाज एण्ड देअर टाइम्स, पृ० 332-34

18. घुर्ये : कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, पृ0 57, 64, 98, 96.

19. शर्मा, रामशरण : शूद्राज इन ऐंशेण्ट इण्डिया, 1980, द्वितीय संस्करण, पृ0 68.

20. मिश्र, जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 38.

21. हर्षचरित : 3, पृ0 159.

22. वही : 3, पृ0 163.

23. कादम्बरी।पूर्व भाग। : पृ0 119,

24. हर्षचरित : 3, पृ0 168.

25. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 122.

26. थपल्याल, के0के0 : इन्सिक्रिप्शन्स आँव द मौखरीज, लेटर गुप्ताज, पुष्यभूतिज एण्ड यशोवर्मा आँव कन्नौज, पृ0 177-79 एवं 182-84.

27. हर्षचरित : 2, पृ0 136.

28. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 141.

29. वही : पृ0 147.

30. वही : पृ0 150.

31. वही : पृ0 153.

32. वही : पृ0 139.

33. वही : पूर्वोद्धरित, हरहा पाषाण अभिलेख, पृ0 141.

34. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, हरहा पाषाण अभिलेख, पृ0 141.

35. यादव, बी0एन0एस0 : "द एकाउन्ट्स आँव द कलि एज एण्ड द सोशल ट्रान्सिशन फ्रॉम एन्टिक्वटी टू द मिडिल एजेज" द इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू, जुलाई 1978, जनवरी 1979, वाल्यूम 5, पृ0 31 पर छपा लेख ।

36. मिश्र, जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 100.

37. अर्थशास्त्र : 1.1.2

38. मनुस्मृति : 1.31

39. मिश्र, जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 100.

40. हर्षचरित : 1, पृ0 20.

41. वाटर्स : आँन ह्वेनसांग ट्रेवेल्स इन इण्डिया, जिल्द 1, पृ0 168.

42. हर्षचरित : 1, पृ0 68-70.

43. वही : 3, पृ0 143-44.

44. वही : 3, पृ0 147-48.

45. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : श्लोक संख्या 11-12.

46. वही : श्लोक 14-15.

47. वही : श्लोक संख्या 18.

48. रत्नावली : अंक 4, श्लोक 22.

49. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, 1, पृ0 168.

50. वही : 1, पृ0 140.

51. हर्षचरित : 1, पृ0 69.

52. वही : 1, पृ0 69.

53. अग्रवाल, वासुदेवशरण : हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 25.

54. अर्थशास्त्र : 1.4.8

55. हर्षचरित : 4, पृ0 220.

56. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 178.

57. हर्षचरित : पृ0 129.

58. टामस एण्ड कावेल : हर्षचरित पृ0 89, 111, 122.

59. बौधायन धर्म सूत्र : 2.2.82-83.

60. अर्थशास्त्र : 1.1.2

61. वही : 1.12

62. मनुस्मृति : 7.133

63. सरकार, डी0सी0 : सेलेक्ट इन्सक्रिप्संश, पृ0 82.

64. एपिग्राफिका इण्डिका : 8, नासिक सं0 2.

65, हर्षचरित : 7, पृ0 362.

66. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 166.

67. शर्मा रामशरण : भारतीय सामन्तवाद, पृ0 3,

68. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 182-84, 177-79.

69. शर्मा, रामशरण : पूर्वोद्धरित पृ0 5.

70. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, 1, पृ0 168.

71. हर्षचरित : 1, पृ0 68.

72. वही : 8, पृ0 417.

73. चटर्जी गौरी शंकर : हर्षवर्द्धन, पृ0 283.

74. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 111.

75. वही : पृ0 112.

76. हर्षचरित : 1, पृ0 13.

77. वही : 3, पृ0 147.

78. वही : 1, पृ0 12.

79. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 112.

80. चटर्जी गौरीशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 284.

81. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 112.

82. अर्थशास्त्र : 1.1.2

83. मनुस्मृति : 1.89

84. हर्षचरित : 8, पृ0 461.

85. वही : 2, पृ0 105 "सोमवंशसंभवः सूर्यवंशसंभवो वा"

86. वही : 3, पृ0 165, 298.

87. वाटर्स : 2, पृ0 151.

88. वही : पृ0 160.

89. वही : पृ0 195-98.

90. वही : 195-98.

91. बील : पूर्वो0 2, पृ0 270-271.

92. वाटर्स : पृ0 322.

93. वही : पृ0 272.

94. दशकुमार चरित : प्रथम उच्छ0 पृ0 22.

95. हर्षचरित : 7, पृ0 360.

96. शास्त्री, नीलकण्ठ : दक्षिण भारत का इतिहास, पृ0 130-31.

97. अर्थशास्त्र : 1.1.2

98. मनुस्मृति : 1.90

99. याज्ञवल्क्य स्मृति : 1.119

100. वाटर्स : 1, पृ0 168.

101. वही : 1, पृ0 168.

102. हर्षचरित : 3, पृ0 165.

103. वही : 7, पृ0 366.

104. रत्नावली : अंक 1, पृ0 15.

105. दशकुमारचरित : उच्छ्0 1, पृ0 9.

106. दास, एस0सी0 : इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ एंशिण्ट इण्डिया, पृ0 165.

107. अग्निपुराण : अध्याय 152.

108. पंचतन्त्र : पृ0 12.

109. वही : 1.11

110. अर्थशास्त्र : 1.1.2

111. मनुस्मृति : 1.91

112. पाराशरस्मृति : 1.7.64

113. मिश्र जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 109.

114. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, पृ0 138.

115. वार्त्स : पूर्वोद्धरित, 2, पृ0 138.

116. हर्षचरित : 7, पृ0 366.

117. वही : 5, पृ0 301.

118. वार्त्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 322.

119. शर्मा, आर0एस0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 74.

120. वही : पृ0 75

121. अष्टाध्यायी : 2.4.10

122. सिद्धहेमशब्दानुशासन : 3.1.143

123. कादम्बरी।पूर्व भाग। : पृ0 16.

124. कादम्बरी।उत्तर भाग।: पृ0 690-91

125. मनुस्मृति : 10.12

126. आपस्तम्ब धर्मसूत्र : 2.18

127. जातक 4 : पृ0 200, 376.

128. वही : पृ0 390.

129. कादम्बरी।उत्तरभाग।: पृ0 691.

130. मनुस्मृति : 10.51.

131. कादम्बरी।उत्तरभाग।: पृ0 691,

132. गाइल्स, जे0एच0 : रिकर्ड आॅव बुद्धिस्ट किंगडम, बिइंग एन एकाउण्ट आॅव चाइनीज मंग फाह्यान ट्रैवेल्स, लन्दन 1896, पृ0 21.

133. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, 1, पृ0 147.

134. कादम्बरी।पूर्व भाग। : पृ0 23, 20.

135. वही ।उत्तर भाग। : पृ0 390.

136. हर्षचरित : 7, पृ0 361.

137. याज्ञवल्क्य स्मृति : 1.95

138. मनुस्मृति : 8.51-52.

139. अमरकोश : 2.10.2

140. सरकार डी0सी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0

141. मिश्र जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 198.

142. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 141.

142. अनेकार्थ संग्रह कोश : 3.343

148. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 49, 71,

145. वही : पृ0 68.

146. वही : पृ0 68.

147. वैखानस स्मार्त सूत्र : 10.14

148. मनुस्मृति : 10.10

149. बौधायन धर्म सूत्र : 1.9,3

150. गौतम धर्म सूत्र : 4.14

151. मनुस्मृति : 10.48

152. जातक I : पृ० 292.

153. शब्दानुशासन : 6.4.31

154. हर्षचरित : 1, पृ० 74

155. मनुस्मृति : 10.8

156. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ० 168.

157. कादम्बरी [पूर्व भाग] : पृ० 21.

158. दशकुमारचरित : प्रथम उच्छ्वास, पृ० 27.

159. अमरकोश : 2.10.20

160. कुमारसंभव : 8.29

161. विष्णु पुराण : 2.3.8

162. कादम्बरी [पूर्व भाग] : पृ० 64,71

163. हर्षचरित : 8, पृ० 413.

164. अमरकोश : 2.10.20

165. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 64, 71.

166. वही : पृ0 59-72 ; हर्षचरित : 8, पृ0 413.

167. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 60-61.

168. हर्षचरित : 8, पृ0 415.

169. वही : 8, पृ0 413.

170. वही : 8, पृ0 413.

171. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 69-70.

172. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 2, पृ0 138.

173. हर्षचरित : 1, पृ0 74-75.

174. वही : 8, पृ0 416, कॉवेल एण्ड थामस : पूर्वो0, पृ0 232.

175. वही : 8, पृ0 460.

176. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 16.

177. विष्णु पुराण : 3.10.12

178. रामायण : 6.123.51, 2.55.9-11.

179. महाभारत : 3.271.48, 1.70.18

180. जातक 6 : पृ0 32.

181. अंगुत्तर निकाय : पृ0 371.

182. अभिज्ञान शाकुन्तलम् : प्रथम अंक, पृ0 34.

183. फ्लीट जे0एफ0 : कार्पस इन्स्क्रिप्शन्स इंडिकेरम् , भाग 3, अभि0 36.

184. हर्षचरित : 1, पृ0 75.

185. वही : 8, पृ0 422-23.

186. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 83-89.

187. हर्षचरित : 8, पृ0 422.

188. वही : 8, पृ0 423-24

189. वही : 8, पृ0 422.

190. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 83-89.

191. वही : पृ0 167.

192. हर्षचरित : 1, पृ0 73.

193. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 166.

194. मनुस्मृति : 2.30

195. विश्वरूप मनुस्मृति ।भाष्यकार। : 2.30

196. कुल्लूक ।भाष्यकार। मनुस्मृति : 2.30

197. संस्कार प्रकाश : पृ0 322.

198. पारस्कर गृह्यसूत्र : 1.17

199. मिश्र, जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 294.

200. संस्कार प्रकाश : पृ0 295.

201. मनुस्मृति : 2.35

202. विष्णु पुराण : 3.13.6

203. पारस्कर गृह्य सूत्र : 2.1

204. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 167.

205. संस्कार प्रकाश : पृ0 260.

206. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 155.

207. मिश्र, जयशंकर : पूर्वोद्धरित पृ0 298 पर उद्धृत

208. हर्षचरित : 2, पृ0 135.

209. गौतम धर्मसूत्र : 1.6.12

210. मनुस्मृति : 2.36

211. मेधातिथि ।भाष्य। मनुस्मृति : 2.44

212. मनुस्मृति : 2.44

213. हर्षचरित : 1, पृ0 14.

214. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 282.

215. वही ।भाष्य। : पृ0 282.

216. मिश्र, जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 420.

217. मनुस्मृति : 2.67

218. हर्षचरित : 1, पृ0 73.

219. मिश्र, जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 302.

220. मनुस्मृति : 9.28

221. हर्षचरित : 4, पृ0 241.

222. मनुस्मृति : 3.27

223. कादम्बरी ।उत्तर भाग। : पृ0 708.

224. मनुस्मृति : 3.32

225. वही : 3.32

226. वही : 3.32

227. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : अंक 3, श्लोक 20.

228. मालती माधव : अंक 2.

229. नागानन्द : पंचम अंक, श्लोक 38.

230. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, पृ0

231. मिश्र, जे0एस0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 343.

232. मालविकाग्निमित्रम् : अंक प्रथम

233. फ्लीट जे०एफ० : कार्पस इन्सिक्रिप्शनम इण्डिकेरम, 3, पृ० 152.

234. हर्षचरित : 1, पृ० 74.

235. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, पृ०

236. हर्षचरित : 4, पृ० 241.

237. मनुस्मृति : 9.85-86.

238. याज्ञवल्क्यस्मृति : 1.88

239. हर्षचरित : 4, पृ० 240.

240. गौतम धर्म सूत्र : 18.20-23.
बौधायन धर्म सूत्र : 4.1.12-14.

241. मनुस्मृति : 9.94
याज्ञवल्क्यस्मृति : 1.64

242. कामसूत्र : 3.1.2

243. कुमारसंभव : 7.77, 85.

244. रघुवंश : 5.10, 3.10.32

245. कादम्बरी (उत्तर भाग) : पृ० 708.

246. हर्षचरित : 4, पृ० 241-255.

247. वही : 4, पृ० 241.

248. वही : पृ० 242.

249. मिश्र, जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 323.

250. हर्षचरित : 4, पृ0 242.

251. वही : पृ0 242.

252. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 71, पा0टि0 1.

253. हर्षचरित : 4, पृ0 243.

254. वही : पृ0 243.

255. वही : पृ0 243.

256. वही : पृ0 243.

257. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 72.

258. हर्षचरित : 4, पृ0 243.

259. वही : पृ0 244.

260. वही : पृ0 244.

261. वही ।भाष्य। : पृ0 244.

262. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 73.

263. हर्षचरित : 4, पृ0 244.

264. वही : पृ0 244.

265. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 73.

266. हर्षचरित : 4, पृ0 244.

267. वही : पृ0 247.

268. वही : पृ0 248-49.

269. वही : पृ0 249-50.

270. मिश्र जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 323.

271. वही : पृ0 324 पर उद्धृत.

272. हर्षचरित : 4, पृ0 251.

273. मिश्र जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 323.

274, हर्षचरित : 4, पृ0 252.

275. अग्रवाल, वासुदेवशरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 84.

276. हर्षचरित : 2, पृ0 252.

277. मिश्र, जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 324 पर उद्धृत

278. कावेल एण्ड टॉमस : हर्षचरित : अग्रवाल, वासुदेवशरण में उद्धृत, पृ0 84.

279. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 84 पर उद्धृत.

280. वही : पृ0 84.

281. हर्षचरित : 4, पृ0 253.

282. वही : पृ0 253.

283. हर्षचरित : 4, पृ0 253.

284. वही : पृ0 254.

285. वही : पृ0 254.

286. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 86 पर उद्धृत

287. हर्षचरित : 4, पृ0 254.

288. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोक्त, पृ0 86.

289. वही : कादम्बरी, पृ0 178.

290. हर्षचरित : 4, पृ0 255.

291. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पृ0 86.

292. मिश्र, जयशंकर : पूर्वोद्धरित : पृ0 323-25 पर उद्धृत

293. शब्दानुशासन : 7.2.156 "विवाहे बहुभिर्युक्तमतिकथेभिः"

294. हर्षचरित : 4, पृ0 243.

295. वही : पृ0 255.

296. महाभारत : 1.113.12; 1.200.6; 1.74.3-5.

297. रघुवंश : 7.18; 12.16

298. हर्षचरित : 5, पृ0 296-97.

299. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, 2, पृ0

300\. मत्स्य पुराण : 39.17
"यः संस्थितः पुरुषो दह्यते वा
निरवन्यते वा पि कृष्यते वा ।"

301\. हर्षचरित : 4, पृ0 299, 307.

302\. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 105.

303\. हर्षचरित : 5, पृ0 299.

304\. अग्रवाल वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 105 पाद टिप्पणी 2.

305\. हर्षचरित : 5, पृ0 300.

306\. वही : 5, पृ0 307.

307\. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 117.

308\. विष्णु पुराण : 3.13.19
विप्रस्यैतद्द्वादशाहं राजन्यस्याप्यशौचकम् ।
अर्द्धमासं तु वैश्यस्य मासं शूद्रस्य शुद्धये ॥

309\. हर्षचरित : 6, पृ0 307.

310\. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 117.

311\. हर्षचरित : 6, पृ0 308.

312\. वही ।भाष्य0। : 6, पृ0 308.

313\. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 117.

314\. अमरकोश : 2.2.4 "एडूकं यदन्तर्न्यस्तकीकसम्"

315. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वो0, पृ0 118.

316. हर्षचरित : 6, पृ0 308.

317. वही : पृ0 308.

318. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वो0, पृ0 118.

319. हर्षचरित : 6, पृ0 308.

320. वही : 4, पृ0 239.

321. कादम्बरी [पूर्व भाग] : पृ0 381.

322. वही : पृ0 281.

323. हर्षचरित : 4, पृ0 227.

324. वही : पृ0 243-244.

325. रत्नावली : अंक 2, पृ0 59-60,

326. प्रियदर्शिका : प्रथम अंक, पृ0 17.

327. कर्पूरमंजरी : 1.11

328. शंकरदिग्विजय : 8.51
विधाय भार्यां विदुषीं सदस्यां
विधीयतां वादकथा सुधीन्द्र ।

329. हर्षचरित : 8, पृ0 459.

330. वही : 1, पृ0 74.

331. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 206.
यथा पितुः प्रसादात्समस्ताभिमतो विद्याभिरालोकितो स्यैवमचिरेणैव कालेनानुरूपाभिर्वधूभिस्तयालोकायिष्यामि ।

332. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : अंक 3, "बहुवल्लभाः हि राजानः श्रूयन्ते ।"

333. वही : अंक 6, "बहुधनत्वात् बहुपत्निकेन तत्र भवता भवितव्यम्"

334. शिशुपाल वध : 2.194, 316; 7.59

335. रत्नावली : अंक 4, पृ0 220.

336. हर्षचरित : 5, पृ0 293.

337. वही : 5, पृ0 286.

338. वही : 8, पृ0 444.

339. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 357.

340. नागानन्द : पंचम अंक, पृ0 197.

341. प्रियदर्शिका : प्रथम अंक, पृ0 116.

342. फ्लीट : 3, 83
"भक्तानुरक्ता च प्रिया च कान्ता भार्या बल्लभानागुताग्निराशिम् "

343. एपि0 इण्डिका : 9, पृ0 164, 344, 350.

344. हर्षचरित : 5, पृ0 287.

345. हर्षचरित : 5, पृ0 291-92.

346. वही : 8, पृ0 438.

347. वही : 8, पृ0 441.

348. वही : 8, पृ0 453.

349. वही : 8, पृ0 453.

350. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 364.

351. अल्तेकर, ए0एस0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 344.

352. हर्षचरित : 3, पृ0 167-68.

353. वही : 4, पृ0 251.

354. स्वप्नवासवदत्तम् : अंक 6,

355. रघुवंश : सर्ग 1.32, 16, 59.
कुमारसंभव : 7.2
अभिज्ञानशाकुन्तलम् : 5.13
"का स्विदवगुंठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या"

356. मृच्छकटिकम् : अंक 10, पृ0 384.

357. नागानन्द : अंक प्रथम, पृ0 38.

358. शिशुपालवध : 5.47,
"शस्तावगुंठनपटाः क्षणं ------

359. मिश्र, जयशंकर : पूर्वोद्धरित, पृ0 445.

360. हर्षचरित : 2, पृ0 120.

361. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 18-19.
"आसन्नवर्तिनीभिः सर्वतः सेवार्थमागताभिरिव दिग्वधूभिर्वारविलासिनीभिः परिवृत्तम्"

~~362. वही~~ : ~~पृ0 32.~~
363. हर्षचरित : 4, पृ0 245,
364. क्षौमैश्च बादरैश्च, दुकूलैश्च लालातन्तुजैश्चांशुकैश्च नेत्रैश्च निर्मोकनिभैः ।"

364. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, 2, पृ0 133-34.

365. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, 1964, पृ0 76.

366. हर्षचरित ।भाष्य। : 4, पृ0 245, "बादरैः कार्पासैः"

367. अमरकोश : 2.6.113 "क्षौमं दुकूलं स्यात्"

368. वही : 3.3.180 "स्याज्जटांशुकयोर्नेत्रम्"

369. हर्षचरित : 2, पृ0 122.

370. वही ।भाष्य0। : 4, पृ0 245 "क्षौमैः क्षुमाविकारैः"

371. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित 1964, पृ0 77.

372. वही : पृ0 77, पादटिप्पणी 2.

373. हर्षचरित : 7, पृ0 386.

374. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 466. "क्षौमधारिभिः"

375. हर्षचरित : 3, पृ0 177.
"पाण्डुरपवित्रक्षौमावृत्त कौपीनम्"

376. वही : 3, पृ0 145; 1, पृ0 18; 60; 43; 4, पृ0 208.

377. कादम्बरी ‡पूर्व भाग‡ : पृ0 17, 34, 239.

378. हर्षचरित : 4, पृ0 245.

379. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वो0 1964, पृ0 78, पा0टि0 2.

380. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : अंक 1, श्लोक 30.

381. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वो0 1964, पृ0 79.

382. हर्षचरित : पृ0 31, 72, 143, 206.

383. वही ‡भाष्य‡ 2, 2, पृ0 72, "नेत्रसूत्रम् पट्टसूत्रम्"

384. वही : 4, पृ0 143, "नेत्रैः पिनैः"

385. वही : 7, पृ0 206 "नेत्रं पटविशेषः"

386. वही : 7, पृ0 206.

387. वही : 1, पृ0 "धौतधवलनेत्र निर्मितेन"

388. वही : 7, पृ0 "स्मितांगपिनै"

389. मोती चन्द्र : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ0 157.

390. हर्षचरित : 4, पृ0 245.

391. हर्षचरित ।भाष्य0। : पृ0 245.

392. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वो0 1964, पृ0 81.

393. वार्ट्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 147.

394. वही : 1, पृ0 148.

395. हर्षचरित : 1, पृ0 37-38.

396. वही : 1, पृ0 40.

397. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 22.

398. हर्षचरित : 1, पृ0 36-37.

399. वही : 1, पृ0 43.

400. वही : 3, पृ0 145.

401. वही : 2, पृ0 123-24.

402. वही : 7, पृ0 360.

403. रघुवंश : 17.25 "हंसचिह्नदुकूलवान्"
कुमारसंभव : 5.67

404. वही : 4, पृ0 208.

405. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 34.

406. वही : पृ0 239.

391. हर्षचरित ।भाष्य0। : पृ0 245.

392. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वो0 1964, पृ0 81.

393. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 147.

394. वही : 1, पृ0 148.

395. हर्षचरित : 1, पृ0 37-38.

396. वही : 1, पृ0 40.

397. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 22.

398. हर्षचरित : 1, पृ0 36-37.

399. वही : 1, पृ0 43.

400. वही : 3, पृ0 145.

401. वही : 2, पृ0 123-24.

402. वही : 7, पृ0 360.

403. रघुवंश : 17.25 "हंसचिह्नदुकूलवान्"
कुमारसंभव : 5.67

404. वही : 4, पृ0 208.

405. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 34.

406. वही : पृ0 239.

407. हर्षचरित : 7, पृ0 368.

408. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 151.

409. वही : पृ0 153.

410. वही : पृ0 155.

411. रघुवंश : 6.1

412. ऋतुसंहार : 2.25; 3.26; 6.4;
रघुवंश : 1.46; 6.6, 9.43

413. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, 2, पृ0 133-34.

414. ऋतुसंहार : 5.8;
मालविकाग्निमित्र : 5.12

415. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 2, पृ0 134.

416. हर्षचरित : 2, पृ0 124.

417. वही : 2, पृ. 124

418. वही : 2, पृ0 124-27.

419. वही : 7, पृ0 360.

420. वही : 1, पृ0

421. वही : 2, पृ0 105.

422. वही :

423. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 21.

424. हर्षचरित : 4, पृ0 227
"त्रिकण्टकस्तु त्र्यस्रः स्यात्रिभी रत्नैश्च भूषणम्"
।भाष्यकार।

425. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 18.

426. वही : पृ0 214.

427. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 151.

428. यशस्तिलक : पृ0 2, 95/132, 288, 336, 556.

429. वही : पृ0 38, 24, 15, 367, 463.

430. वही : पृ0 34, 555, 288, 463, 613.

431. वही : 398, 106.

432. वही : पृ0 15.

433. : पृ0 367, 131.

434. बील : जिल्द 1, पृ0 76.

435. हर्षचरित : 1, पृ0 56.

436. वही : 3, पृ0 166.

437. वही : 4, पृ0 226.

438. वही : 1, पृ0 60.

439. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 21.

440. वही : पृ0 282.

441. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, पृ0 148.

442. हर्षचरित : 1, पृ0 56-58.

443. वही : 3, पृ0 166-168.

444. वही : 1, पृ0 60;

445. वही : 4, पृ0 227.

446. वही : 2, पृ0 128.

447. वही : 4, पृ0 213, 224, 225, 252.

448. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 22-23.

449. वही : पृ0 185-86.

450. वही : पृ0 283.

451. नागानन्द : अंक 2, श्लोक 13;
रत्नावली : 1.17

452. प्रियदर्शिका : अंक 3, श्लोक 4.

453. नागानन्द : अंक 3, श्लोक 6.

454. वही : अंक 2, श्लोक 12;
रत्नावली : 1.10

455. यशस्तिलक : पृ0 15, 100, 555, 150, 234.

456. वही : पृ0 101, 126, 345, 399.

457. हर्षचरित : 1, पृ0 57-58.

458. वही : 1, पृ0 59.

459. वही : 5, पृ0 285; 7, पृ0 370.

460. वही : 4, पृ0 227.

461. वही : 4, पृ0 222.

462. वही : 4, पृ0 244.

463. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 22.

464. वही : पृ0 185.

465. हर्षचरित : 1, पृ0 39.

466. वही : 3, पृ0 167.

467. वही : 2, पृ0 125

468. वही : 3, पृ0 166.

469. वही : 4, पृ0 221, 252.

470. वही : 4, पृ0 221.

471. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 32.

472. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ० 35.

473. अग्रवाल, वासुदेव शरण : कादम्बरी: एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 36, पाद टिप्पणी 1.

474. हर्षचरित : 1, पृ० 39.

475. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ० 32.

476. वही : पृ० 35.

477. वही : पृ० 36.

478. हर्षचरित : 4, पृ० 225.

479. वही : 4, पृ० 251.

480. वही : 5, पृ० 286.

481. कादम्बरी (पू. भाग) : पृ. 20.

482. कादम्बरी ।पूर्वभाग। : पृ० 200.

483. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, पृ० 152.

484. वही : पृ० 178.

485. वही : पृ० 178.

486. वही : पृ० 178-79.

487. कादम्बरी ।पूर्वभाग। : पृ० 35.

488. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 37, "स्नातः कृताहारश्च"

489. वही : पृ0 38.

490. मनुस्मृति : 2.56

491. वार्टर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 152.

492. वही : पृ0 152.

493. वही : पृ0 178.

494. बील : पूर्वो0 1, पृ0 178.

495. रघुवंश : 4.47 "स्नानाद्रमुत्पतिष्ठाव:"
कुमारसंभव: : 8.25 "सलवंगकेसर:"

496. वही : 5.73

497. हर्षचरित : 2, पृ0 125.

498. वही : 3, पृ0 166.

499. मानसोल्लास : 3, 15.18-79.

500. हर्षचरित : 7, पृ0 377.

501. कादम्बरी ।पूर्वभाग। : पृ0 85, 290.

502. वार्टर्स : पूर्वोद्धरित, 1, पृ0 173.

503. वही : पृ0 173.

504. हर्षचरित : 8, पृ0 227.

505. वही : 3, पृ0 173.

506. वही : 3, पृ0 179.

507. वही : 3, पृ0 179-80.

508. वही : 8, पृ0 426-27.

509. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 204.

510. वही : पृ0 203.

511. वही : पृ0 206.

512. वही : पृ0 209.

513. वही : पृ0 16 "क्षितितल निहितजानुकरकमला"

514. वही : पृ0 24.

515. हर्षचरित : 1, पृ0 60.

516. वही : 4, पृ0 247.

517. वही : 7, पृ0 382.
"आरादेव प चाल्लिंगलिङ्गितांगन: प्रणाममकरोत्।"

518. वही : 4, पृ0 238-39.

519. वही : 6, पृ0 350.

520. हर्षचरित : 6, पृ0 344.

521. वही : पृ0 277; 436-37, 49-50, 318-24, 45, 428, 149, 184, 250, 240-41, 275, 277-78, 276, 285, 90, 438, 308, 416.

522. कादम्बरी : पृ0 25, 37, 39, 139, 171, 206, 309, 312, 314, 323, 419, 588, 645, 657, 709.

523. अर्थशास्त्र : 2.43.27

524. महाभाष्य : 1.1.50

525. रघुवंश : 9.59

526. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : अंक प्रथम, पृ0 88.
"प्रत्यासन्न: किल मृगयाविहारी दुष्यन्त:"

527. रघुवंश : 19.44

528. हर्षचरित : 5, पृ0 258.

529. कादम्बरी [पूर्व भाग] : पृ0 216, 257.

530. वही : पृ0 13-14.

531. हर्षचरित : 1, पृ0 12.

532. वही : 1, पृ0 765.

533. वही : 1, पृ0 76.

534. वही : 2, पृ0 95.

535. हर्षचरित (भा0व्या0) : 1, पृ0 12-13.

536. वही : 1, पृ0 12.

537. अग्रवाल वासुदेव शरण : पूर्वो0 1964, पृ0 13.

538. वही : पृ0 13.

539. हर्षचरित : 2, पृ0 121.

540. वही : 1, पृ0 13.

541. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 14.
"स्वयमारब्धमृदंगवाद्यः--------"
"कदाचिद्वीणया"

542. वही : पृ0 283.

543. वही : पृ0 201.

544. वही : पृ0 194.

545. वही : पृ0 168.
"वीणावेणुमुरजकांस्यतालदर्दुरपुटप्रभृतिषु वाद्येषु"

546. वही : पृ0 158,
"प्रहतमृदुमृदंगशंखकाहलानकनिवह
निर्भरैः मंगलपटह ----------"

547. वही : पृ0 240.

548. हर्षचरित : 7, पृ0 362.

549\. हर्षचरित : 5, पृ0 262.

550\. वही : 4, पृ0 219.

551\. वही : 4, पृ0 223-25.

552\. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वो0 1964, पृ0 67.

553\. अमरकोश : 1.7.5

554\. कुमारसंभव : 11.36

555\. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वो0 1964, पृ0 67.

556\. नागानन्द ; प्रथम अंक श्लोक 15

557\. नागानन्द : प्रथम अंक श्लोक 15.

558\. प्रियदर्शिका : तृतीय अंक, श्लोक 10.

559\. नाट्यशास्त्र : अध्याय 29, श्लोक 89.

"व्य जनधातुर्ज्ञेय: कलतलनिष्कोटितान्यथोन्मृष्टम् ।
रेफावमृष्टपुष्पानुस्वनितं बिन्दुरनुबन्ध: ॥"

560\. हर्षचरित : 4, पृ0 224.

561\. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वो0 1964, पृ0 67.

562\. हर्षचरित (भाष्य0) : 4, पृ0 224. "अश्लीलानि ग्राम्याणि"

563\. वही : 4, पृ0 225.

564\. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वो0 1964, पृ0 68.

565. हर्षचरित : 1, पृ0 35.

566. वही ।भाष्य0। : 1, पृ0 35, "ध्रुवाख्या विशिष्टा गीतिः"

567. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वो0 1964, पृ0 21.

568. राघवन : एन आउटलाइन लिट्रेरी हिस्ट्री आँव इण्डियन म्यूजिक" नामक लेख "जर्नल आव द मदरास म्यूजिक एकेडमी, भाग 23 ।1952। पृ0 67 पर छपा ।

569. हर्षचरित : 4, पृ0 243.

570. कादम्बरी ।पूर्वभाग। : पृ0 161.

571. वही : पृ0 166.

572. वही : पृ0 284.

573. रत्नावली : अंक प्रथम, पृ0 18.

574. हर्षचरित : 2, पृ0 83.
"रेचकावर्तमण्डलीरेचकरासरसरभसारब्ध-
नर्तनारम्भारभटीनटाः"

575. वही ।भाष्य। : 2, पृ0 83.

576. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वो0 1964, पृ0 33.

577. हर्षचरित ।भाष्य0। : 2, पृ0 84,
"रेचकास्त्रयः कटिरेचकः, हस्तरेचकः, ग्रीवारेचकश्चेति"

578. हर्षचरित (भाष्य0) : 2, पृ0 84,
"अष्टौ षोडशद्वात्रिंशद्यत्र नृत्यन्ति नायका:
पिण्डीबन्धानुसारेण तन्नृत्तं रासकं स्मृतम्"

579. वही (भाष्य) : 2, पृ0 83.

580. नाट्यशास्त्र : अध्याय 13, पृ0 216, दिल्ली 1983.

581. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वो0 1964, पृ0 34.

582. हर्षचरित : 2, पृ0 88.

583. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वो0 1964, पृ0 35.

584. हर्षचरित : 4, पृ0 220-27.

585. कादम्बरी (पूर्वभाग) : पृ0 158.

586. वही : पृ0 168.

587. हर्षचरित : 4, पृ0 239.

588. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 194.

589. वही : पृ0 180-81.

590. हर्षचरित : 3, पृ0 165.

591. वही : 2, पृ0 133.

592. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 118-119.

593. वही : पृ0 85.

594. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 16.

595. हर्षचरित : 7, पृ0 388.

596. वही : 5, पृ0 264.

597. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 169.

598. रत्नावली : अंक चतुर्थ, श्लोक 8.

599. कादम्बरी ।पूर्वभाग। : पृ0 194.

600. रत्नावली : पृ0 57-58.

601. हर्षचरित : 3, पृ0 166.

602. रत्नावली : अंक 1, पृ0 10.

603. चार्ल्स : पूर्वो0 1, पृ0 171.

-------::8::-------

चतुर्थ अध्याय

आर्थिक जीवन

आर्थिक जीवन

गुप्तोत्तर काल की बदलती हुई राजनैतिक परिस्थितियों के कारण सत्ता का जो विकेन्द्रीकरण हुआ उसने न केवल प्रशासनिक व्यवस्था को प्रभावित किया अपितु आर्थिक ढाँचे को छिन्न भिन्न कर दिया । क्षेत्रीय शक्तियों के उदय के फलस्वरूप उत्तर भारत में शान्ति एवं सुरक्षा का वातावरण समाप्त हो गया । यात्रियों तथा व्यापारियों के साथ राहजनी एवं लूटपाट की घटनाएँ घटित होने लगी । आत्मनिर्भर स्थानीय ग्रामीण व्यवस्था के फलस्वरूप व्यापारिक गतिविधियाँ क्षीण हो गई । सिक्कों का चलन समाप्त प्राय हो गया । भूमि-दान तथा उससे उत्पन्न सामंतीय व्यवस्था इस काल का एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था जिसने जीवन के प्राय: सभी पक्षों को प्रभावित किया । बाणभट्ट इस काल के महान् साहित्यकार थे जिनकी रचनाओं से देश की आर्थिक स्थिति की जो झलक प्राप्त होती है उससे तत्कालीन अर्थव्यवस्था के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है । अन्य समकालीन साहित्य आर्थिक-व्यवस्था का बहुत अच्छा चित्र नहीं प्रस्तुत करते हैं । बाण हर्षचरित में श्रीकण्ठ जनपद और स्थाण्वीश्वर[1] तथा कादम्बरी में उज्जयिनी[2] के वैभवपूर्ण जीवन एवं आर्थिक स्थिति का उल्लेख करता है । यह उल्लेख अतिरंजित तथा अयथार्थ हो सकता है । दूसरी संभावना यह हो सकती है कि राजनीतिक शक्ति के केन्द्र कतिपय नगरों का आर्थिक संतुलन गुप्तोत्तर काल में भी कायम रहा हो । स्थाण्वीश्वर और उज्जयिनी नामक नगर अपवादस्वरूप समृद्ध रहे हों । ध्यान देने योग्य बात यह है कि इसके आधार पर सातवीं शताब्दी की आर्थिक स्थिति का आँकलन करना उचित नहीं होगा । नगर जीवन के विपरीत हर्षचरित में विन्ध्याटवी के वनग्राम[3] का जो जीवन चित्र बाण ने खींचा है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि सामान्य लोगों का जीवन-विशेष रूप से ग्रामीणों का अत्यन्त कष्टप्रद एवं दयनीय था ।

आर्थिक जीवन के मुख्य आधार कृषि, पशुपालन, उद्योग-धन्धे और व्यापार

तथा वाणिज्य माने गये हैं । दशकुमार चरित में कृषि, पशुपालन, व्यापार, सन्धि और विग्रह को अर्थ के परिवार का कहा गया है ।[4]

कृषि

प्राचीन काल से भारत कृषि-प्रधान देश रहा है । कौटिल्य ने कृषि-व्यवस्था पर विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है । कृषि-योग्य भूमि को विस्तृत करने की सलाह दी है । उसने परती भूमि और वन को कृषि योग्य बनाने का सुझाव दिया है । उपज में वृद्धि के लिए विभिन्न प्रकार की खादों जैसे पशुओं की हड्डी और गोबर की मिली-जुली खाद, मछलियों की खाद आदि के प्रयोग बताये हैं ।[5] इसके अलावा कृषि की उन्नति के लिए एक अलग विभाग की व्यवस्था का वर्णन मिलता है । उनके अनुसार हल से जोतकर पैदा किये गये पदार्थों को "सीता" कहते थे अतएव कृषि-विभाग के सर्वोच्च अधिकारी को "सीताध्यक्ष" कहा गया है ।[6] मनु ने भी कृषि पर विस्तार से विवेचन किया है । उनके अनुसार कृषि के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले बीजों, भूमि के भेदों और उनके गुणों का ज्ञान अपेक्षित था ।[7] खेत जोतने के लिए लोहे के फाल और बैल के उपयोग[8] की चर्चा करते हुए अच्छे प्रकार के बीजों पर विशेष बल दिया है ।[9] गुप्त और गुप्तोत्तर काल तक आकर कृषि का विस्तार बढ़ता गया । इस काल में पशु-पालन और कृषि का बहुमुखी विकास हुआ ।[10] वराहमिहिर ने तीन फसलों के वर्ष भर में पैदा होने की बात कही है : गर्मी (रबी) पतझड़ (खरीफ) और साधारण समय में पैदा होने वाली फसलें ।[11]

हर्षचरित में श्रीकण्ठ जनपद के वर्णन में कहा गया है कि वहाँ हल से खेत जोते जा रहे थे, स्थलकमलों की अधिकता के कारण हल के फाल से मृणाल उखाड़े जाते थे, चारों ओर पौंड़ों के खेत फैले हुए थे, खलिहान के रक्षकों से बाँटा गया धान की ढेरियों से सारा सिवान भर जाता । धन और अच्छे खेत लहराते थे ।[12] इसके अलावा बाण एक ऐसे वनग्राम का भी वर्णन करता है जिसकी कृषि परम्परा आदिम

जातियों से सम्बद्ध थी । विन्ध्याटवी के वन ग्राम में लोग जंगली धानों के खलिहानों की साठी के भूसे जलाने के आदी थे । गाँव के चारों ओर वन प्रदेश था । खेत बहुत विरल थे । किसान हल बैल के बिना कुदाल से गोड़कर बीज बो देते थे । कहीं-कहीं हल बैल से भी खेती की जाती थी । किसान बंजर जमीन तोड़कर उसमें खाद (कूड़े से बनी) डालकर उपजाऊ बना रहे थे । खेतों को बाड़ों से घेरा गया था । जंगली भैंसों के कंकाल जंगली जानवरों से बचाव के लिए खेत में काँटे की तरह गाड़े गये थे । खेतों में घना साँवा लहरा रहा था । गन्ने की खेती खूब अच्छी थी ।[13] इस प्रकार बाण के समय कृषि के विषय में यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है । श्रीकण्ठ जनपद और वन ग्राम की खेती में जो भी वैषम्य दिखाई पड़ता है उससे इंगित होता है कि दोनों दो विशेष पद्धतियों और परिस्थितियों का परिणाम थी । श्रीकण्ठ की कृषि व्यवस्था समतल मैदानी भाग जैसी उपजाऊ जमीन की खेती का वर्णन है जबकि वनग्राम की कृषि एक जंगली, उबड़-खाबड़ पठारी एवं पर्वतीय क्षेत्र की खेती का प्रतिनिधित्व करती है । इसलिए दोनों में वैषम्य स्वाभाविक है ।

कृषि के लिए सिंचाई का बहुत महत्व है । कौटिल्य ने सिंचाई के लिए "सेतु" बनाने का भी निर्देश दिया है ।[14] गिरनार अभिलेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिंचाई के लिए "सुदर्शन झील" का निर्माण करवाया था जो द्वितीय शताब्दी ईसवी सन् के मध्य भग्न हो गई जिसका जीर्णोद्धार महाक्षत्रप रुद्रदामन ने करवाया था ।[15] पाँचवीं शताब्दी ईसवी के मध्य गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्त के समय यह झील पुनः क्षतिग्रस्त हो गयी जिसकी मरम्मत उसने करवायी ।[16] बाण के हर्षचरित से सिंचाई का भी विरल उल्लेख मिलता है । श्रीकण्ठ जनपद की कृषि का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि चारों ओर रहट के द्वारा सींचे गये जीरक की फसल से हरी-भरी जमीन जटिल थी ।[17] इसके पूर्व पौड़ों के खेतों के विषय में कहा गया है कि मानों वे क्षीर के समुद्र को पीकर आये मेघों ने बरस कर सींचा है ।[18] बाण ने यह भी लिखा है कि विष्णु के नाभि मण्डल के समान वहाँ अनेक जलाशय थे ।[19] तथा लम्बे लम्बे ककुभ वृक्षों की श्रेणियों से वहाँ के जंगली जलाशय घिरे हुए थे ।

उनमें पशुओं के उतरकर जल पीने से किनारे का पानी मटमैला रहता था। कादम्बरी में बाण ने उज्जयिनी में सहस्रों सरोवरों का उल्लेख किया है। उज्जयिनी में निरन्तर चलित जलघटी यन्त्र (रहट) से जल खींचकर उपवनों की सिंचाई की जा रही थी।[20] वराहमिहिर ने ज्योतिष के आधार पर नक्षत्रों का अनुशीलन करके वर्षा के विषय में विस्तृत विवेचन पेश किया है।[21] पणिक्कर महोदय के अनुसार संभवतः भारत को गुप्तोत्तर काल में सिंचाई की उत्तम व्यवस्था प्राप्त थी।[22] मुकर्जी का मन्तव्य है कि उस काल में कृषि मुख्य आर्थिक क्रिया कलाप था। सिंचाई के साधन उपलब्ध थे।[23] इस प्रकार बाण के समय प्राकृतिक वर्षा तथा कृत्रिम सिंचाई के साधनों की उपलब्धता के फलस्वरूप कृषि का समुन्नत विकास हुआ और अनेक प्रकार की फसलें पैदा की जाती थीं जैसे धान, गेहूँ, गन्ना आदि। रहट का सिंचाई के यंत्र के रूप में चलन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गुप्तोत्तर काल में ईरान के सासानी सम्पर्क के फलस्वरूप भारत में रहट का चलन हुआ, सामान्यतः ऐसा माना जाता है।

फसलें एवं फल

बाण के हर्षचरित से अनेक फसलों एवं फलों के उपज के विषय में जानकारी मिलती है। श्रीकण्ठ जनपद में जिन फसलों का उल्लेख बाण ने किया है उनमें धान, शालि, राजमाष, मूँग, गेहूँ तथा जीरा मुख्य थीं।[24] इसी प्रकार विन्ध्याटवी के वनग्राम के सन्दर्भ में साठी चावल, साँवा, गन्ना आदि का उल्लेख मिलता है। वन ग्राम में एरंड, बथा, कंक (बैगन), तुलसी, सूरनकन्द, सहिजन, मंदिनवन, गरबेरुआ, लौकी आदि के उल्लेख मिलते हैं।[25] ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि चावल बहुतायत से होता था। उसके अनुसार मगध में उत्पन्न होने वाले चावल की सुगन्ध बहुत सुन्दर होती थी। इसलिए बाजार में इसकी माँग अधिक थी और उपज कम। फलस्वरूप विक्रय मूल्य अधिक था जिससे साधारण लोग इसे नहीं खरीदते थे। यह चावल प्रायः उच्च वर्ग के लोग खाते थे। अफगानिस्तान और कौशाम्बी

में भी एक विशेष किस्म का चावल पैदा किया जाता था ।[26] इस प्रकार ऐसा लगता है कि बाण के समय तक कृषि का सुव्यवस्थित विकास हो चुका था । मेधातिथि ने सत्रह प्रकार के अन्नों का उल्लेख किया है[27] जिससे कृषि के विस्तार का अनुमान लगाया जा सकता है ।

फलों के विषय में बाणभट्ट ने हर्षचरित और कादम्बरी दोनों में उल्लेख किया है । श्रीकण्ठ जनपद में जिन फलों की उपज की चर्चा की गई है उनमें अनार, नारियल, पिंड खजूर, आरुक आदि थे ।[28] इस जनपद के गाँवों के समीप की भूमि शाक-कन्द और केलों के पौधों से ढाँकी थी ।[29] वनग्राम में राजादन ।खिरनी।, मदनफल और मधुका ।महुआ। का उल्लेख किया गया है । वन ग्राम के प्रत्येक घर में बाँस, खीरा, ककड़ी, कूष्मांड ।कोहड़ा। और लौकियों के बीज रखे गये थे ।[30] कादम्बरी में जामुन मरिच, अनार तथा अंगूर का उल्लेख मिलता है ।[31]

ह्वेनसांग के अनुसार विभिन्न प्रकार की जलवायु और भिन्न-भिन्न किस्म की भूमि होने के कारण पूरे देश में अनेक प्रकार के फल एवं फसलें होती थीं । आँवला, मधुकफल, कपित्थ, उदुम्बर ।गूलर। मोच्छा।केला।, नारिकेल, नासपाती, आडु, अंगूर, सन्तरा आदि मुख्य फलों का उल्लेख किया है । केसर की खेती दारेल ।अफगानिस्तान का पूर्व-दक्षिण प्रदेश। और कश्मीर में होती थी ।[32]

पशु-पालन

बाण पशुपालन के विषय में भी उल्लेख करते हैं । श्रीकण्ठ जनपद में गायों से जंगल सफेद हो जाता, भैंस की पीठ पर बैठकर गाते हुए ग्वाले गायों की रक्षा करते । गायों को जंगल में चरने के लिए छोड़ दिया जाता था उनके गले में छोटी घंटियाँ और छोटे-छोटे घुंघरू बंधे रहते थे ।[33] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि पशुओं

को जंगल में चराने पर गायब होने की संभावना प्रबल होती थी । संभवतः इसी-लिए घंटियाँ और घुंघरू गले में बाँधे जाते थे, जिससे चरते समय बजने की आवाज से अनुमान लगाया जा सके कि पशु कहाँ हैं ?[34] जनपद के मार्गों में ऊँट के बच्चे पीलू के पत्ते तोड़कर चट कर जाते और ऊँटों के पालने वाले लोग ऊँटों के साथ साथ भेड़ों को भी चारों ओर जुटाते थे । कहीं कहीं दिशाओं में घोड़ियाँ चर रही थी ।[35] स्थाण्वीश्वर के विषय में लिखा है कि वायु से कम्पित चमरी गाय के बालों से जिसके समीप का भूभाग सफेद था वह स्वर्ग के एक देश के समान था ।[36] विन्ध्या-टवी के निकट बैल से खेत जोते जाने का उल्लेख है ।[37] घरों के पास बेर के खूँटे में बछड़े बाँधे गये थे ।[38] मुर्गों की आवाज से पहचान मिलती थी कि घर कहाँ-कहाँ बसे हैं ।[39] घरों में वनबिलाव, नेवले, मालुधान और शालिजात नाम के पशुओं के बच्चे पले हुए थे ।[40] उज्जयिनी के सन्दर्भ में गोपगणों तथा उनके पशुओं का उल्लेख मिलता है ।[41] इस प्रकार बाण के समय जिन पशुओं को सामान्य लोग पालते थे उनमें गाय-बैल, भैंस, भेड़, ऊँट, घोड़ियाँ तथा मुर्गा आदि का उल्लेख मिलता है । हाथी तथा घोड़े राजा तथा सामन्तगण पालते हैं जिनका सेना तथा अन्य कार्यों में उपयोग होता था ।

शिल्प तथा उद्योग

आर्थिक व्यवस्था में शिल्प तथा उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है । गुप्त काल तक आते आते शिल्पों तथा उद्योगों में विविधता तथा जटिलता आ गई थी । कालिदास जिन विविध धातुओं और रत्नों का उल्लेख करते हैं उनमें स्वर्ण, रजत, ताम्र, अयस, हीरा, पद्मराग, पुष्पराग (पुखराज), नीलम, पन्ना, वैदूर्य, स्फटिक आदि हैं ।[42] रघुवंश से ज्ञात होता है कि जुलाहे वस्त्र बनाने में इतने निपुण थे कि उनके कपड़े फूँक मात्र से उड़ जाते थे ।[43] शिल्पी अनेक प्रकार की आकर्षक वस्तुओं का निर्माण करते थे, उनके द्वारा निर्मित पट-मंडप कलायुक्त होते थे ।[44]

बाणभट्ट के साहित्य में विभिन्न शिल्पों तथा उद्योगों का उल्लेख मिलता है जिससे यह इंगित होता है कि गुप्त-कालीन उद्योग-व्यवसाय की परम्परा क्षीण नहीं हुई थी। हर्षचरित में वस्त्रों का जो वर्णन प्राप्त होता है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वस्त्र उद्योग काफी समृद्ध था। अंशुक[45] नामक वस्त्र दो प्रकार के बताये गये हैं। चीनांशुक के विषय में मान्यता है कि ये चीन से आयात किये जाते थे। मुक्तांशुक के विषय में शंकर ने लिखा है कि ये मालवा में बनते थे।[46] इसके अतिरिक्त राज्यश्री के विवाह के अवसर पर बादर, क्षौम, दुकूल, नेत्र, लालातन्तुज स्तवरक आदि जिन वस्त्रों का उल्लेख मिलता है[47] वे संभवतः देश में ही निर्मित होते थे। नेत्र की पहचान बंगाल में बनाने वाले नेत्रसंज्ञक एक मजबूत रेशमी कपड़े से की जाती है।[48] इसके अलावा बाण ने पुण्ड्र (बंगाल देश) के बने दुकूल का उल्लेख किया है।[49] भास्करवर्मा के द्वारा भेजे गये उपहार में क्षौम वस्त्र और पटसन से बने बोरों के उल्लेख[50] से इंगित होता है कि उस समय देश के विभिन्न भागों में तरह-तरह के वस्त्र बनते थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने लिखा है कि भारतीय वस्त्रों में कौशेय, क्षौम, कम्बल (कोमल ऊन का वस्त्र) और होलालि (किसी जंगली जानवर के ऊन या बाल से) उल्लेखनीय थे। कोमल और कातने में आरामदायक ऊन का वस्त्र मूल्यवान होता था।[51] वस्त्रों को विभिन्न रंगों में रंगने की परम्परा थी। हर्षचरित में इसका उल्लेख मिलता है।[52]

वस्त्र उद्योग के अलावा आभूषण बनाने और रत्नों के कार्य का उल्लेख मिलता है। कादम्बरी में बाण ने उज्जयिनी-वर्णन में लिखा है कि वहाँ के बाजारों में चूर्ण की गयी सोने की धूलि बिछी है और शंख, सीप, मोती, मूँगा तथा मरकत मणियों के पुंज बिक्री के लिए रखे गये हैं।[53] इसके अलावा पद्मरागमणि, वैदूर्यमणि, स्फुटिक, सूर्यकान्त मणि आदि का उल्लेख भी रत्नों के व्यवसाय के विकास की ओर इंगित करता है। ह्वेनसांग अपने यात्रा-विवरण में लिखता है कि स्वर्णकार अपने विविध आभूषणों में रत्नों का उपयोग करते थे।[54] संभवतः रत्नों का समाज में इतना महत्व

होने के कारण रत्न-परीक्षा को शिक्षा का एक अंग माना गया । चन्द्रापीड को रत्न-परीक्षा की शिक्षा प्रदान करने का उल्लेख है ।[55] हर्षचरित में भास्कर वर्मा के द्वारा भेजे गये उपहार में रत्न जटित आभूषणों, पान भाजन या मधुपान करने के चषक, जो चतुर कारीगरों द्वारा नक्काशी वाले सीप शंख, मरकत के बने हुए थे, मूंगे का पिंजड़ा, मुक्ताफल से जड़ा हाथी दाँत का कुण्डल आदि उल्लेखनीय है ।[56]

बाण के समय धातु उद्योग के विकसित होने के प्रमाण मिलते हैं । राज्यश्री के विवाह के अवसर पर स्वर्णकारों द्वारा सोने के आभूषण गढ़े जाने का उल्लेख मिलता है ।[57] बाण शबर युवक के वर्णन में कहता है कि उसका शरीर मानों खराद पर चढ़ाकर बना घूमता हुआ लौह स्तम्भ था । खान से ढलता हुआ विन्ध्याचल का लोहा था ।[58] इससे दो संकेत मिलते हैं कि विन्ध्याचल के आसपास कहीं खान से लोहा निकाला जाता था । धातु की बनी वस्तुओं को खराद पर चढ़ाकर अभीष्ट आकार दिया जाता था । उल्लेखनीय है कि बाण के पूर्व लोहे की ढलाई के पुरातात्त्विक साक्ष्य उपलब्ध हैं । गुप्त-कालीन चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का मेहरौली लौह स्तम्भ इसका प्रमुख उदाहरण है जिसे ढालकर बनाया था और हजारों वर्ष बाद भी उसकी कोई क्षति नहीं हुई है । इसके अलावा कालिदास ने भी लिखा है कि अवन्ति के राजाओं को विश्वकर्मा ने शान चढ़ाने वाले अपने चक्र पर चढ़ाकर खराद दिया है।[59] ह्वेनसांग ने भारतीयों के द्वारा प्रयोग किये जाने वाले सोने, चाँदी तथा लोहे के खानों का उल्लेख किया है[60] इससे धातु उद्योग के विकास को बल मिलता है । इसके अलावा वह लिखता है कि नालन्दा में राजपूर्ण वर्मा द्वारा बनवाई गई ताँबे की बुद्ध की मूर्ति 25 मीटर ऊँची थी ।[61] इसके अलावा कादम्बरी और हर्षचरित में अनेक स्थानों पर स्वर्ण एवं रजत कलशों[62] का उल्लेख है जिससे धातु-उद्योग के विकसित होने का संकेत मिलता है । धातु उद्योग में मुद्राओं की ढलाई का कार्य भी महत्वपूर्ण माना जा सकता है यद्यपि बाण के समय मुद्राओं का अभाव सा दिखता है किन्तु हर्षचरित में वृषभांकित स्वर्ण मुद्रा का उल्लेख मिलता है ।[63] इस प्रकार ज्ञात होता है कि बाण के समय धातु-उद्योग विकसित हो चुका था । धातुओं की विभिन्न वस्तुएं

आभूषण मूर्तियाँ, मुद्राएँ, घरेलू सामान आदि बनते थे ।

हाथी दाँत की वस्तुएँ बनाने का शिल्प अत्यन्त महत्वपूर्ण था । उज्जयिनी के वर्णन में बाण ने लिखा है कि वहाँ प्रासादों में हाथी दाँत की मंडपिका और हाथी दाँत की खूँटियों पर चँवर लटक रहे थे ।[64] जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि हाथी दाँत का शिल्प विकसित अवस्था में था । राज्यश्री के विवाह के समय खिलौने बनाने वाले कुम्हार, मछली, म कछुआ, मगर, नारियल आदि की मिट्टी की मूर्तियाँ बना रहे थे ।[65] हर्षचरित में वनग्राम के प्रकरण में बाण ने मिट्टी की सुराहियों का उल्लेख भी किया है जिससे मृण्पात्रों की परम्परा का ज्ञात होता है ।

वनोपज तथा उसके विपणन का उल्लेख हर्षचरित में एक महत्वपूर्ण आर्थिक क्रिया के रूप में मिलता है । वनग्राम के विषय में कहा गया है कि गाँव के लोग वन उपज को सिर पर उठाये जा रहे थे । कोई सेहुड की छाल का गट्ठा, कोई फूलों से भरी बोरियाँ लिए था । लोग रुई, अलसी, सन के मुट्ठों का बोझ लिए थे । शहद, मोम, मोर के पंख, खस, कत्थे की लकड़ी लिए जा रहे थे । जंगली फल बिन कर उन्हें बेचने की चिन्ता में ग्रामीण स्त्रियाँ जल्दी-जल्दी पास के गाँवों को जा रही थीं ।[67] इस प्रकार लोग जीविकोपार्जन के लिए विभिन्न उद्योग-व्यवसाय का सहारा लिये हुए थे ।

व्यापार-वाणिज्य

व्यापार-वाणिज्य का आर्थिक जीवन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । मौर्यकाल में व्यापार और वाणिज्य का अभूतपूर्व विकास हुआ । कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में मौर्य-कालीन अर्थव्यवस्था में व्यापार-वाणिज्य के महत्व को स्वीकार करते हुए इसके लिए एक अलग विभाग के संगठन का सुझाव दिया है । उनके अनुसार व्यापार

के निमित्त बाजार में बेची जाने वाली वस्तु को "पण्य" और उस विभाग के सबसे बड़े अधिकारी को "पण्याध्यक्ष" कहा जाता था ।[68] गुप्तकालीन साहित्य से व्यापारिक गतिविधि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । गुप्त-काल में बाजार को "विपणि" की संज्ञा प्रदान की गई है जहाँ क्रय-विक्रय के लिए वस्तुयें आती थीं ।[69] बाजार की दुकानें सड़क ।पण्यवीथी। के दोनों ओर होती थी जिनमें विभिन्न प्रकार की वस्तुयें बिक्री के लिए रखी जाती थी ।[70] रघुवंश में कहा गया है कि अयोध्या के बाजारों में लोग विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का क्रय-विक्रय करके नाव के द्वारा सरयू के पार चले जाते थे ।[71]

बाण के साहित्य में व्यापार-वाणिज्य के संकेत यत्र-तत्र मिलते हैं । बाण के साहित्य से भी इसी प्रकार के व्यापार का चित्रण प्राप्त होता है । कादम्बरी में विवृत है कि नगर-विन्यास में चौड़े राजमार्ग बनाकर उन्हें कई भागों में बाँट दिया गया था । इन मार्गों को "महाविपणिपथ" या बाजारों का चौराहा कहते थे । बाजारों में सड़क के दोनों ओर दुकानें थीं और पीछे की ओर आवासीय भवन बने हुए थे ।[72] चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण से भी ज्ञात होता है कि सड़कों के दोनों ओर दुकानें रहती थी जहाँ लोग क्रय-विक्रय किया करते थे ।[73] हर्षचरित में स्थाण्वीश्वर के लिए कहा गया है कि वणिक् लोग उसे आमदनी की जगह समझते थे ।[74] उज्जयिनी के विषय में कहा गया है कि वहाँ धनसम्पत्ति अथाह थी ऐसा प्रतीत होता है कि सभी समुद्रों ने अपनी रत्न-सम्पत्ति वहाँ के बाजारों में उड़ेल दी हो । वहाँ के अनेक नागरिक कोटिसार ।करोड़पति। हैं । सुवर्ण का कोष उनके घरों में सहस्रों निधान-कलशों में रखा जाता था ।[75] आन्तरिक व्यापार के विषय में चीनी यात्री ने जो उल्लेख किया है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि देश में आन्तरिक व्यापार बहुत विकसित अवस्था में था ।

ह्वेनसांग के अनुसार भारत का व्यापार विकसित अवस्था में था । यहाँ दूर-दूर के व्यापारी नगरों में क्रय-विक्रय के लिए आते थे और माल को सुदूर प्रदेशों

ले जाते थे । नगर में जहाँ दुकानें होती थी, व्यापारी अपनी वस्तुयें दुकान में सजाकर रखते थे । नगरों में विक्रय के लिए पशु भी आते थे ।[76] मछुआरे मछलियाँ बेचने के लिए नगरों की बाजारों में लाते थे ।[77] सिन्ध और कश्मीर के व्यापारी गाय और घोड़ों का व्यापार करते थे ।[78] कामरूप और कलिंग के वनों से हाथी पकड़कर विक्रय के लिए लाये जाते थे ।[79] ह्वेनसांग लिखता है कि थानेश्वर की ख्याति का मुख्य कारण उसका व्यापारिक केन्द्र होना था ।[80] वहाँ के बहुसंख्यक निवासी व्यापारी थे जो भिन्न-भिन्न वस्तुओं का व्यापार करते थे।[81] स्थाण्वीश्वर के विषय में बाण लिखता है कि वह धनार्थियों के लिए चिन्तामणि भूमि और व्यापारियों के लिए लाभभूमि थी ।[82] मथुरा के विषय में चीनी यात्री कहता है कि वहाँ के मुलायम और धारीयुक्त वस्त्रों की मांग सर्वत्र थी । वाराणसी के लोग व्यापार के कारण धनी थे और उनके घरो में बहुमूल्य वस्तुओं से भरे पड़े थे ।[83] कन्नौज दुर्लभ वस्तुओं के लिए विख्यात था जो सुदूर के व्यापारियों से खरीदकर लाये जाते थे ।[84] अयोध्या अपने कुशल शिल्पियों के कारण विख्यात था[85]। इस प्रकार चीनी यात्री के विवरण से संकेत मिलता है कि सातवीं शताब्दी में आन्तरिक व्यापार विकसित अवस्था में था ।

ऐसा प्रतीत होता है कि आन्तरिक व्यापार में दो प्रकार के लोग लगे थे । हर्षचरित में "वैदिक" का उल्लेख आता है जिसे भाष्यकार शंकर ने वणिक् माना है ।[86] इनके विषय में ऐसा माना जा सकता है कि ये स स्थायी व्यापारी थे जिनकी बाजारों में निश्चित दुकाने होती थी जिन्हें वे सजाकर रखते थे । मृच्छकटिक से एक अन्य किस्म के व्यापारी के विषय में ज्ञात होता है जिसे सार्थवाह कहते हैं ।[87] सार्थवाह ऐसे व्यापारी होते थे जो काफिले में चलते थे और दूर-दूर से माल लाकर नगरों में विक्रय करते थे । कादम्बरी से ज्ञात होता है कि उज्जयिनी के लोग समस्त देशों की शौरसेन्यादि भाषाओं में अभ्यस्त हैं । सभी प्रकार की लिपियों को पहचानते हैं ।[88] इससे इंगित होता है कि व्यापार के लिए सुदूर नगरों में जाने वाले व्यापारी देश की विभिन्न स्थानीय भाषाओं तथा बोलियों से

अवगत होते थे । व्यापार में सफलता के लिए विभिन्न भाषाओं तथा लिपियों की जानकारी आवश्यक थी ।

आन्तरिक व्यापार मुख्य रूप से स्थल और जल मार्गों से सम्पन्न होता था मार्गों के विषय में बाण कोई विशेष विवरण नहीं प्रस्तुत करते । हर्षचरित में कहा गया है कि प्रभाकरवर्द्धन ने ऊँची नीची भूमि को समतल कर विस्तृत मार्ग बनवाकर पृथ्वी को अनेक भागों में विभक्त कर दिया अर्थात् सेना के लिए दण्डयात्रा पथ निर्मित कर दिये ।[89] इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि इन प्रकार के मार्गों का उपयोग व्यापारियों के द्वारा नहीं किया जाता रहा होगा । ह्वेन-सांग के यात्रा विवरण से स्थल-मार्ग की एक स्पष्ट रूपरेखा सामने आती है । ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर भारत के प्रायः सभी नगर स्थल मार्गों से परस्पर जुड़े हुए थे । ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से ज्ञात होता है कि एक मार्ग तक्षशिला से प्रारम्भ होकर स्थाण्वीश्वर, मथुरा, कौशाम्बी, वाराणसी, पाटलिपुत्र होता हुआ ताम्र-लिप्ति तक चला जाता था । ह्वेनसांग तक्षशिला से उरशा होकर कश्मीर, पुंछ, राजौरी, टक्क, साकल, जालन्धर, कुलू, पारियात्र होता हुआ मथुरा आया । तक्षशिला से मथुरा के मध्य इस प्रकार के महापथ के विवरण से ऐसा लगता है कि बौद्ध काल के समान ही इसका महत्व था ।[90] ह्वेनसांग का दूसरा स्थल मार्ग स्थाण्वीश्वर से मतिपुर, गोविषाण, अहिच्छत्र, बिलसन, (अतिरंजीखेड़ा), संकाश्य, कान्यकुब्ज, अयोध्या, अयमुख, प्रयाग होता हुआ विशोक तक गया था । विशोक से श्रावस्ती, कपिलवस्तु, रामग्राम, कुशीनारा, वाराणसी, वैशाली आदि होता हुआ ताम्रलिप्ति तक मार्ग जाता है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि इन स्थल मार्गों का प्रयोग व्यापार के लिए अवश्य होता रहा होगा । ह्वेनसांग लिखता है कि जल-परिवहन में नदियों का उपयोग किया जाता था ।[91] उसके अनुसार हर्ष का राज्य चारों ओर से नदियों और समुद्रों से संगठित था । मलकूट में ऐसा बन्दरगाह था जिसके द्वारा लंका तथा अन्य देशों से व्यापार किया जाता था ।[92]

भारत में आन्तरिक व्यापार के साथ साथ विदेशी व्यापार की परम्परा भी प्राचीन है । बाण के समय क्षेत्रीय शक्तियों के उदय के कारण आन्तरिक असुरक्षा का वातावरण बना जिससे आन्तरिक व्यापार के साथ-साथ विदेशी व्यापार भी प्रभावित हुआ । कतिपय विद्वान् ऐसा मानते हैं कि इस काल में समुद्री व्यापारिक प्रयोजन के लिए दिये गये ऋणों पर ब्याज की दर कम हो गई थी ।[93] जिससे इंगित होता है कि विदेशी व्यापार को आर्थिक छूट देकर प्रोत्साहन दिया जा रहा था । विदेशी व्यापार भी आन्तरिक व्यापार की ही भाँति जल तथा स्थल दोनों मार्गों से होता था । बाण के काल में पूर्वी समुद्र का मुख्य बन्दरगाह ताम्रलिप्ति था जहाँ से विभिन्न देशों के लिए व्यापारिक जलयान आते-जाते थे । फाह्यान ताम्रलिप्ति से जिस जहाज से श्रीलंका के लिए रवाना हुआ था वह चौदह दिन की यात्रा के बाद लंका पहुँचा था ।[94] सुदूर दक्षिण में कांची और नागपट्टनम् मुख्य बन्दरगाह थे । दक्षिण समुद्र को पार कर व्यापारी विदेश यात्रा पर इन बन्दरगाहों से रवाना होते थे । ह्वेनसांग कहता है कि कांची से जल पोत को श्रीलंका पहुँचने में तीन दिन और नागपट्टनम से दो दिन लगते थे ।[95] उल्लेखनीय है कि स्थल तथा समुद्री मार्ग से भारत का पश्चिमी तथा दक्षिण-पूर्व एशिया एवं पश्चिमी जगत (यूनान रोम) आदि से व्यापारिक सम्बन्ध ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों से रहा है । आर०सी० मजूमदार के अनुसार दक्षिण पूर्व एशिया तथा रोम से भारत के जो व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध थे वे ईसवी सन् की छठी शताब्दी तक समृद्ध स्थिति में बने रहे ।[96]

बाण के हर्षचरित में दक्षिणी समुद्र के अष्टादश द्वीपों (अठारह द्वीप) का उल्लेख आता है । राज्यवर्द्धन मालवराज पर आक्रमण करने जाते समय हर्ष को समझाते हुए कहता है कि "हरिण को मारने के लिए सिंहों का झुण्ड जाना लज्जास्पद है । तुम्हारे लिए अठारह द्वीपों वाली अष्टमंगलक माला वाली मेदिनी विषय है ।[97] हर्षचरित में हर्ष ने गौड़ाधिप के विरुद्ध अभियान के समय भारत के समस्त

राजाओं को करद बनाने का शासन प्रेषित करने के साथ "द्वीपान्तर" तक विचरण करने की घोषणा थी ।[98] ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिण समुद्र के द्वीपों को वृहत्तर भारत का अंग गुप्त-काल से ही माना जाने लगा था । प्रो० अग्रवाल के अनुसार सम्भवतः इसी कारण से भारत का नाम कुमारी द्वीप पड़ गया ।[99] कालिदास के रघुवंश में अष्टादशद्वीपों का उल्लेख मिलता है ।[100] उल्लेखनीय है कि वायु पुराण[101] में अठारह द्वीपों का उल्लेख किया गया है जिसमें पन्द्रह के नाम इस प्रकार हैं :-

1. कुमारी द्वीप (भारत, हिमालय से कन्याकुमारी तक)
2. सिंहल द्वीप
3. नागद्वीप
4. इन्द्रद्युम्न द्वीप (अण्डमान)
5. कटाह द्वीप (मलय द्वीप कल्प)
6. सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा)
7. मलय द्वीप
8. यवद्वीप
9. वारुणक द्वीप (बरोस)
10. वारुण द्वीप
11. पर्णखुपायन द्वीप (फिलीपाइन)
12. चर्मद्वीप (कर्दरंग)
13. कर्पूरद्वीप (बोर्नियो)
14. कमलद्वीप (कम्बोडिया)
15. बालिद्वीप

इन सबको मिलाकर "द्वीपान्तर"[102] कहा गया है । उल्लेखनीय है कि कालिदास ने अष्टादश द्वीपों के साथ-साथ द्वीपान्तर की चर्चा की है । जहाँ से

तकंग आता था ।[103] हर्षचरित में भी द्वीपांतर का उल्लेख किया है कि राज्यवर्द्धन और हर्ष का यश द्वीपान्तर में पहुँच गया ।[104] कादम्बरी में चन्द्रापीड के विजय अभियान के समय वैशम्पायन कहता है कि महराज तारापीड ने किन द्वीपान्तरों को आत्मसात नहीं किया ।[105] इसके अलावा हर्ष के ताम्बूल की लाली से युक्त सिन्धूरी अधर की तुलना बाण ने उस मुद्रा से की है जिसके द्वारा वे विभिन्न द्वीपों [द्वीपान्तर] को अपने अनुरागियों [जागीर] के रूप में प्रदान कर रहे थे ।[106] भाष्यकार शंकर के अनुसार प्राचीन काल में दान दी जाने वाली वस्तुयें व सिन्दूर से मुद्रित करके प्रदान की जाती थी ।[107] बाण के इन उद्धरणों से संकेत मिलता है कि द्वीपान्तर को पारम्परिक दिग्विजय क्षेत्र में सम्मिलित करने का एक रिवाज बन गया था । संभवतः इसीलिए अनुचरों को दान दिये जाने की परिकल्पना की गई है । हर्षचरित में कहा गया है कि महाभारत की कथा तीनों जगत में व्याप्त थी।[108] यहाँ तीनों जगत के अंतर्गत भारत के अलावा द्वीपान्तरों को सम्मिलित माना गया था । चीनी यात्री इत्सिंग ने अपने विवरण में जावा-द्वीप का नाम कलिंग दिया है ।

उल्लेखनीय है कि जावा में भारत से ब्राह्मण और बौद्ध सम्प्रदाय के लोगों ने जाकर भारतीय संस्कृति का प्रसार किया था । जावा से प्राप्त पाँचवी शताब्दी ईसवी का वैष्णव अभिलेख इस बात की पुष्टि करता है ।[109] इत्सिंग इस बात की ओर संकेत करता है कि दक्षिण-पूर्व एशिया के द्वीपों के अनेक राजा बौद्ध धर्म के अनुयायी थे । आर0के0 मुकर्जी के अनुसार ऐतिहासिक विवरणों से ज्ञात होता है कि भारत से क्षत्रिय [योद्धा], लेखक, चिकित्सक, कृषक और शिल्पी जावा गये । और पुनः ईसवी सन् 603 में छः बड़े और सौ छोटे पोतों से पाषाण और धातु के शिल्पियों के भी वहाँ जाने का उल्लेख है । मुकर्जी का अनुमान है कि जावा के बोरोबुदुर और प्रम्बनम के प्राचीन मन्दिर भारतीय शिल्पियों की कृतियाँ हो सकती हैं ।[111] श्रीलंका के विषय में ह्वेनसांग का विवरण द्रष्टव्य है । उसके अनुसार श्रीलंका प्राचीन काल में "रत्नद्वीप" कहा जाता था । सिंहल नाम दक्षिण भारत के

एक राजा की पुत्री के लड़के सिंह (सिंह पकड़ने वाला) के वहाँ राज्य स्थापित करने के कारण पड़ा ।[112] इसके पूर्व फाह्यान द्वारा उल्लिखित एक विवरण से ज्ञात होता है कि सिंहल एक भारतीय व्यापारी का नाम था जिसने लंका में अपना राज्य स्थापित किया था । उसके "सिंह" नामधारी पिता के नाम पर श्रीलंका का नाम "सिंह राज्य" या सिंहल पड़ा ।[113]

रत्नावली से ज्ञात होता है कि कौशाम्बी के व्यापारी सिंहल द्वीप की व्यापारिक यात्रा पर जाया करते थे । सिंहल की राजकुमारी रत्नावली जिस पोत में सवार थी उसके टूट जाने से विपत्ति में पड़ी राजकुमारी को कौशाम्बी के एक व्यापारी के द्वारा बचाकर अपने साथ कौशाम्बी लाये जाने का उल्लेख है ।[114] इससे सिंहलद्वीप के साथ व्यापारिक सम्बन्ध सातवीं शताब्दी में होने का एक संकेत मिलता है । भागवत्महापुराण में सिंह और लंका का साथ-साथ उल्लेख मिलता है ।[115] ह्वेनसांग के विवरण से यह ज्ञात होता है कि हर्ष ने उससे कहा था कि यदि वह दक्षिणी समुद्र से जाना चाहे तो वह अपने परिचारकों को उसके साथ भेज सकता है ।[116] ऐसा कहा जाता है कि हर्ष के द्वारा ह्वेनसांग के माध्यम से चीन देश से सम्पर्क किया गया और दक्षिणी समुद्र के मार्ग से दूत-मण्डल भी भेजे गये ।[117] हर्षचरित में सव्यसाची (अर्जुन) के द्वारा राजसूय यज्ञ के लिए सम्पत्ति लाने के लिए चीन पर आक्रमण का उल्लेख महत्वपूर्ण है ।[118] यहाँ उल्लेखनीय है कि बाण ने "चीनविजय" का वर्णन किया है । ऐसा लगता है कि अर्जुन के द्वारा जीते गये "चीनविजय" का तात्पर्य चीन देश से न होकर "चीन" नामक किसी पहाड़ी प्रान्त को जीतने का प्रयास कहा जा सकता है क्योंकि "विजय" शब्द का प्रयोग प्राचीन भारत में देश के लिए नहीं अपितु "प्रान्त" के लिए ही हुआ है । अतः विद्वानों का ऐसा मानना कि चीन देश पर आक्रमण किया गया, समीचीन नहीं प्रतीत होता यह भी संभव है कि बाण का यह वर्णन साहित्यिक अधिक, ऐतिहासिक कम भी हो सकता है । किन्तु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि भारत और चीन

के मध्य बाण के समय में व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध नहीं थे । मुकर्जी के अनुसार उस काल में समुद्र यात्रा सामान्य थी । हर्ष के द्वारा भेजा गया ब्राह्मणों का एक दल 641 ईसवी सन् में चीन गया था ।[119] इस प्रकार बाण के समय भारत का व्यापारिक सम्बंध् चीन, दक्षिण पूर्व एशिया के तमाम द्वीपों और श्रीलंका से होने के संकेत प्राप्त होते हैं ।

हर्षचरित में उल्लिखित चीनांशुक[120] नामक रेशमी वस्त्र संभवतः चीन से आयात किया जाता था । इसी प्रकार चीन चोलक[121] जिसे विद्वान् चीन की पोशाक मानते हैं[122] भी चीन से आयात की जाती थी । बाण कार्दरंग की ढालों का उल्लेख भी करते हैं ।[123] उल्लेखनीय है कि मंजुश्रीमूलकल्प में कमरंगा द्वीप का उल्लेख किया गया है ।[124] प्रबोधचन्द्र बागची ने कार्दरंग को इन्डोनीशिया के द्वीपों में एक द्वीप माना है जिसे चर्म रंग द्वीप कहा जाता था ।[125] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि कार्दरंग ढालें इन्डोनीशिया से मंगाई जाती थीं ।

हर्षचरित में अश्वों के विदेशों से आयात किये जाने का उल्लेख मिलता है । तंगण देश और काम्बोज राष्ट्र के घोड़ों को हर्ष की अश्व सेना में उल्लिखित किया गया है ।[126] बाण ने हर्ष की मंदुरा में विभिन्न देशों वनायु देश, काम्बोज देश, आरट्ट, भरद्वाज, सिन्धु और पारसीक देश के घोड़ों का उल्लेख किया गया है ।[127] वनायु देश को वजीरिस्तान माना गया है । कालिदास ने भी वनायुज घोड़ों का उल्लेख किया है ।[128] आरट्ट को वाह्लीक (बल्ख) माना जाता है । काम्बोज का समीकरण मध्य एशिया में वंक्षु नदी के पामीर-प्रदेश से किया जाता है ।[129] सिन्धु देश को सिन्ध सागर या का दोआब और पारसीक देश का समीकरण सासानी ईरान से किया जाता है ।[130] उल्लेखनीय है कि कालिदास ने भी काम्बोज और ईरान के घोड़ों का उल्लेख किया है ।[131] इन देशों से घोड़ों का व्यापार मौर्य काल से चला आ रहा था । कौटिल्य ने इस प्रकार के घोड़ों का उल्लेख किया है ।[132]

बाण के समय तक घोड़ों का व्यापार होता रहा । कादम्बरी में इन्द्रायुध को भी पारसीक देश से आया हुआ कहा गया है ।[133] हर्षचरित से ज्ञात होता है कि भारत के व्यापारी द्वीपों से अपने पण्य द्वारा अर्जित रत्न भारत लाते थे । बाण ने सम्पूर्ण द्वीपों से प्रशासित रत्न अर्जित करने वाले पुरुष का वर्णन किया है ।[134] सिंहनाद के विषय में बाण ने लिखा है कि वह "अब्धमण" ।समुद्र यात्रा। से लक्ष्मी ।सम्पदा। को खींच लाने में मन्दराचल के समान था ।[135] उज्जयिनी के विषय में कहा गया है कि मानों सभी समुद्रों में अपनी रत्न राशि वहाँ लाकर उड़ेल दी हो ।[136] इससे इंगित होता है कि समुद्र के रास्ते से रत्नों का व्यापार होता था ।

उल्लेखनीय है कि जब ईसवी सन् प्रथम-द्वितीय शताब्दियों में ईरान में राज नैतिक उथल-पुथल के कारण भारत का पश्चिम से व्यापार बाधित होने लगा तो भारतीय व्यापारियों का ध्यान दक्षिण पूर्व एशिया की ओर आकृष्ट हुआ । इस कार्य में ताम्रलिप्ति और पलौरा के बन्दरगाहों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । एस0 के0 मैती के अनुसार स्यात चीन से रेशम भारत आने लगा और यहाँ से दक्षिण पूर्व एशिया के रास्ते पश्चिमी देशों को भेजा जाने लगा था ।[137] ह्वेनसांग कहता है कि भारतीय व्यापारी अपने पण्य के बदले में समुद्र के द्वीपों से अमूल्य रत्न एवं मणियों को अर्जित किया करते थे । भारत में मिलने वाले खनिजों में सोना, चाँदी, ताँबा आदि धातुयें थीं ।[138] इस प्रकार भारत का व्यापार यद्यपि पहले की अपेक्षा कम था किन्तु बाण के समय के साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि व्यापार-वाणिज्य सातवीं शताब्दी में भी हो रहा था । ह्वेनसांग उस काल के विनिमय माध्यमों के विषय में कहता है कि सोने या चाँदी के सिक्के, कौड़ियाँ आदि विनिमय के साधन थे ।[139] नेपाल में विनिमय का साधन ताँबे की मुद्रायें थी तथा कांगोद राज्य में कौड़ियों और मोतियों से वस्तुयें क्रय की जाती थी ।[140]

व्यापार-वाणिज्य एवं उद्योग की प्रगति जिन कारणों से हुई थी उनमें

शिल्पियों तथा व्यापारियों के संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण थी । व्यापारिक संगठनों का अस्तित्व प्राचीन काल से रहा है । ऐसे संगठनों को "श्रेणी" "निगम" आदि कहा जाता था । "श्रेणी" वह विशिष्ट शब्द है जो व्यापारियों या शिल्पियों के संगठन का परिचायक है । इसकी परिभाषा इस प्रकार की जाती है "समाज या भिन्न जाति के, परन्तु समान व्यापार और उद्योग अपनाने वाले लोगों का निगम ।"[141] प्राचीन भारत में विभिन्न साहित्यिक स्रोतों के आधार पर आर०सी० मजूमदार ने सत्ताईस प्रकार की श्रेणियों का उल्लेख किया है जिनमें लकड़ी का काम करने वाले, सोना, चाँदी आदि धातुओं का काम करने वाले, पत्थर का काम करने वाले, चर्मकार, दन्तकार, आदेयन्त्रिक, बसकर ।बांस का काम करने वाले।, कसकर ।ठठेरे।, रत्नकार, बुनकर, कुम्हार, तिल-पिषक ।तेली।, फूस का काम करने वाले और डलिया बनाने वाले, रंगरेज, चित्रकार, कृषक, मछुए, कसाई, नाविक, चरवाहे, सार्थ सहित व्यापारी, महाजन आदि की श्रेणियाँ थी ।[142] इन श्रेणियों या निगमों की व्यापार का विकास करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका थी । कादम्बरी के उज्जयिनी वर्णन के विषय में कहा गया है कि वहाँ निगम, श्रेणी, पूग, पाषण्ड कितने ही प्रकार के सार्वजनिक संगठन थे और सबके अपने अपने नैगम, श्रेष्ठी चौधरी और मुखिया होते थे ।[143]

बाण इस प्रकार के संगठन आदि के विषय में कोई विस्तृत ब्यौरा नहीं देते हैं । नारद एवं बृहस्पति स्मृतियों से श्रेणी जैसे संगठन के विषय में प्रकाश पड़ता है। नारद स्मृति में कहा गया है कि राजा का कर्तव्य है कि वह श्रेणियों तथा निगमों की प्रथाओं को मान्यता दे, उनके जो भी कानून, ।धार्मिक। कर्तव्य, उपस्थिति के नियम और जीवन निर्वाह की विशेष परम्परा हो, उन सब को राजा अंगीकार करे ।[144] बृहस्पति स्मृति[145] में भी श्रेणी के कार्यों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है जिसके अनुसार ग्राम वासियों, शिल्पसंगठनों तथा गणों के मध्य शर्तमाना को "समय-क्रिया" कहा गया है । इसका पालन बाधाओं से बचने तथा कर्तव्य पालन के लिए लोगों द्वारा की जानी चाहिए ।[146]

श्रेणियों का अपना अलग अस्तित्व होता था । बृहस्पति के अनुसार श्रेणी में एक प्रधान या अध्यक्ष होता था जिसकी सहायता के लिए दो, तीन या पाँच प्रबन्ध अधिकारी होते थे ।[147] प्रबन्ध अधिकारी को ईमानदार, विद्वान्, योग्य, आत्मसंयमी तथा उच्चकुलीन होना चाहिए ।[148] परिषद् का एक कार्यालय होता था जहाँ श्रेणी के सदस्य समय-समय पर एकत्रित होकर विचार-विमर्श करते थे ।[149] नारद के अनुसार सदस्यों के लिए कुछ नियम होते थे जिन्हें राजा मान्यता प्रदान करता था ।[150] श्रेणियों के कार्यों में यात्रियों के मन्दिर, सरोवर तथा उद्यान से युक्त विश्रामगृह का निर्माण सम्मिलित था । वे गरीबों को शास्त्रानुमोदित संस्कार के लिए भी सहायता प्रदान करते थे ।[151] श्रेणियों या व्यापारिक संगठनों को न्यायालयों में संगठन के रूप में मान्यता थी । वे अचल सम्पत्ति रख सकती थीं । श्रेणियाँ ऋण ले और दे सकती थीं । संगठन की ओर से धार्मिक कार्य भी किये जाते थे ।[152] इस प्रकार ऐसा ज्ञात होता है कि इस प्रकार के संघटन विभिन्न अधिकारों, कर्तव्यों के साथ भारत की आर्थिक-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में सहयोग प्रदान करते थे ।

राजस्व एवं कर

बाणभट्ट के साहित्य से राजस्व एवं कर व्यवस्था पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता । हर्षचरित से ज्ञात होता है कि सम्राट् हर्ष के सैन्य अभियान के समय ग्रामवासियों ने भेंट स्वरूप दूध, दही, फूल, गुड़, खाँड आदि दिया था ।[153] इसके अलावा राज्यश्री के विवाहोत्सव पर राजा के नियुक्त सैनिक गाँव वालों को पकड़-पकड़कर सामान उठवा कर लाने लगे ।[154] ऐसा लगता है कि राजपुरुष देहातों से सामान इकट्ठा करने के लिए छोड़े गये थे जो गाँव वालों से लदवा कर ला रहे थे । कादम्बरी में शूद्रक के विषय में लिखा है कि उसके राज्य में कर ग्रहण (पाणिग्रहण) मात्र विवाहों में होता था ।[155] यह काव्यात्मक उल्लेख मात्र है ।

बाण के आश्रयदाता हर्ष के बाँसखेड़ा और मधुबन अभिलेखों से कर एवं राजस्व व्यवस्था पर विशेष प्रकाश पड़ता है । इनमें तुल्यमेय, भाग, भोग, कर और हिरण्य का उल्लेख आता है ।[156] ब्यूलर ने तुल्यमेय को वजन और माप के आधार पर दिया जाने वाला कर माना है ।[157] उल्लेखनीय है कि कौटिल्य ने "तुलामानान्तर-कर" का उल्लेख किया है । कम तौलने पर दण्ड स्वरूप जो मुआवजा लिया जाता था, उसे तुलामान्तर कहते थे ।[158] ऐसा प्रतीत होता है कि तुल्यमेय का तात्पर्य कृषि उपज के एक भाग को तौल कर कर के रूप में लिए जाने से रहा हो । "भाग" का शाब्दिक अर्थ राजकर के भाग का भोग है ।[159] उत्पाद में राजा को जो हिस्सा दिया जाता है उसे "भाग" और समय समय पर फल-फूल आदि जो राजा को प्रदान किया जाता था उसे भोग कहा गया है ।[160] मनुस्मृति में भी राजा को समय समय पर भेंट देने का उल्लेख आया है[161] जिससे भोग का बोध होता है ।

कर के विषय में सरकार का मत है कि वह राजस्व जो धान्य के अलावा प्रदान किया जाता था, कर कहा जाता था ।[162] "हिरण्य" के विषय में कहा जाता है कि कुछ फसलों पर नगद कर लिया जाता था उसे "हिरण्य" कहा जाता था ।[163] मनु ने सोने पर लगने वाले पचासवें भाग को जो कर के रूप में लिया जाता था, उसे "हिरण्य" कहा है ।[164] इसके अलावा हर्ष के अभिलेखों में "उद्रंग" तथा "सर्वराजकुलाभाव्यप्रत्याय" को कर कहा गया है ।[165] "उद्रंग" का उल्लेख जीवितगुप्त के कटरा भूमि दान अभिलेख[166] तथा देवबनार्क अभिलेख में भी आता है ।[167] उद्रंग को विद्वान् मुख्य कर मानते हैं ।[168] फ्लीट के अनुसार ग्रामवासियों से उपज का जो भाग राजा लेता था उसे "उद्रंग" कहते थे । यह कर जमीन पर पैतृक अधिकार वाले कृषकों से लिया जाता था ।[169] "सर्वराजकुलाभाव्यप्रत्याय" को उन सब प्रकार के करों को जिन्हें राज्य को दिया जाता था, माना गया है ।[170] कटरा भूमि दान अभिलेख में आया कर "प्रत्याधाय" का समीकरण विद्वान् हर्ष के अभिलेख में

वर्णित "प्रत्याय" से करते हैं। "प्रत्याय" को विद्वान् मालगुजारी मानते हैं।[171] इसके अलावा राज्य को पड़ोसी राज्यों को पराजित करके लूटे गये धन से आय होती थी। राज्यवर्द्धन ने मालवराज को पराजित करके उसके कोष को अपने अधिकार में ले लिया था।[172] इसके अतिरिक्त बाण ने लिखा कि परमेश्वर हर्ष ने हिमालय के दुर्गम प्रदेशों से भी "कर" लिया था।[173] विजित राजाओं के अलावा समय-समय पर भेंट - उपहार से राज्य को आय होती थी। हर्षचरित में उल्लिखित है कि महाराज पुष्यभूति को पौरजन, पादोपजीवी, सचिवगण और करदीकृत सामन्त शिव के पूजनार्थ भेंट दिया करते थे।[174] सम्राट् हर्ष को कामरूप के राजा भास्करवर्मन ने मैत्री सम्बन्ध को सुदृढ़ करने के लिए बहुमूल्य एवं उपयोगी उपहार भेजे थे।[175] हर्ष के राजद्वार पर उपस्थित हाथियों के विषय में बाण ने लिखा है कि कुछ हाथी कर और उपहार में राजाओं के द्वारा दिये गये थे, कुछ बलपूर्वक छीनकर लाये गये थे।[176] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अधीनस्थ राजाओं से हाथियों को कर के रूप में भी लिया जाता था। सेना का मुख्य अंग हस्ति सेना के होने के कारण हाथियों का संग्रह आवश्यक था।

ह्वेनसांग कहता है कि राज्य की आय का मुख्य साधन भूमिकर एवं व्यापार शुल्क थे। कृषक राज्य को उत्पाद का छठवाँ हिस्सा कर के रूप में देता था। कर हल्के थे, बेगार कम ली जाती थी जिससे लोग पैतृक वृत्ति और सम्पत्ति से सन्तुष्ट थे। व्यापारियों के विषय में कहता है कि व्यापारियों से घाटों और सीमान्तों के शुल्क स्थान पर हल्के कर वसूल किये जाते थे। व्यापारी वर्ग सुविधापूर्वक अपने माल का विनिमय करते थे।[177] राजकीय व्यय के सम्बन्ध में चीनी यात्री लिखता है कि राजकीय भूमि की आय चार भागों में विभाजित की जाती थी। एक भाग प्रशासन एवं धार्मिक कार्यों में, दूसरा भाग उच्चाधिकारियों को पुरस्कार वितरण में, तीसरा भाग विद्वानों को पुरस्कार देने में और चौथा भाग विभिन्न धर्मों को दान देने में व्यय किया जाता था।[178]

राज्य के समस्त अधिकारियों को उनके कार्य और पदानुरूप वेतन दिया जाता था, मंत्रियों और अधिकारियों को भूमि या नगर भी जागीर में दिये जाते थे।[179] इस प्रकार बाण के समय आर्थिक व्यवस्था का जो स्वरूप था उसमें आय के साधन भिन्न होने पर भी व्यय अधिकांशतः धार्मिक क्रिया-कलापों पर ही किया जाता था जिसे राज्य के हित में बहुत अच्छी नहीं ~~x~~ कहा जा सकता है।

सन्दर्भ

1. हर्षचरित : 3, पृ0 159-68.
2. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 109-16.
3. हर्षचरित : 7, पृ0 406-412.
4. दशकुमारचरित : 2, पृ0 143.
5. अर्थशास्त्र : 2.17.1
6. वही : 2.40.24
7. मनुस्मृति : 9.330
8. वही : 10.84
9. वही : 9.38
10. कामंदकीनीतिसार : 2.14 "पशुपाल्यं कृषिं पण्यं वार्ता वार्तानुजीविनाम्"

11. वृहत्संहिता : 5.21, 9.42, 10.18, 27.1

12. हर्षचरित : 3, पृ0 159-60.

13. वही : 7, पृ0 406-08.

14. अर्थशास्त्र : 7.118.14

15. एपिग्राफिया इण्डिका : जिल्द 8.

16. कार्पस इन्स्क्रि0 इण्डिकेरम: 3, पृ0 63-64.

17. हर्षचरित : 3, पृ0 160.

18. वही : पृ0 160.

19. वही : पृ0 162.

20. वृहत्संहिता : 2.6-9.

21. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 111.

22. पणिक्कर, के0एम0 : श्री हर्ष आँव कन्नौज, पृ0 59.

23. मुकर्जी, राधाकुमुद : हर्ष, पृ0 171.

24. हर्षचरित : 3, पृ0 160.

25. वही : 7, पृ0 406-11.

26. वाटर्स : ह्वेनसांग ट्रेवेल्स इन इण्डिया 1, पृ0 306; 2, पृ0 81.

27. मेधातिथि : मनु0 8.320

28. हर्षचरित : 3, पृ0 161

29. वही : पृ0 161

30. वही : 7, पृ0 411-12.

31. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 39-42.

32. वार्ट्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 261, 298.

33. हर्षचरित : 3, पृ0 160.

34. वही : पृ0 161.

35. वही : पृ0 162.

36. वही : पृ0 164.

37. वही : 7, पृ0 409.

38. वही : पृ0 411.

39. वही : पृ0 411.

40. वही : पृ0 412.

41. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 115.

42. मालविकाग्निमित्र : प्रथम अंक, पृ0 4.

43. रघुवंश : 16.43

44. रघुवंश : 5.41, 7.2, 9.93, 13.79

45. हर्षचरित : 1, पृ0 64; 8, पृ0 433; 5, पृ0 291.

46. वही : 8, पृ0 434.

47. वही : 4, पृ0 245.

48. मोती चन्द्र : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ0 157.

49. हर्षचरित : 3, पृ0 145.

50. वही : 7, पृ0 286-87.

51. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 148.

52. हर्षचरित : 4, पृ0 244.

53. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 109.

54. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 178, 225, 239.

55. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 168.

56. हर्षचरित : 7, पृ0 386-88.

57. वही : 4, पृ0 243.

58. वही : 8, पृ0 416.

59. रघुवंश : 6.32

60. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 152.

61. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 171.

62. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 32.
हर्षचरित : 4, पृ0 253-54.

63. वही : 7, पृ0 361.

64. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 115.

65. हर्षचरित : 4, पृ0 243.

66. वही : 7, पृ0 407.

67. वही : 7, पृ0 407-08.

68. अर्थशास्त्र : 2.32.16

69. रघुवंश : 16.41
मालविकाग्निमित्र : पृ0 33, 801.

70. वही : 19.30 "अट्टापणं राजपथं।

71. वही : 14.30

72. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 110, "महाविपण्पिथै:"

73. बील, एस0 : लाइफ ऑव ह्वेनसांग, 2, पृ0 205.

74. हर्षचरित : 3, पृ0 165.

75. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 110-111.

76. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 300; 2, पृ0 252.

77. वार्टर्स	:	पूर्वोद्धरित 1, पृ0 178.
78. वही	:	1, पृ0 261.
79. वही	:	2, पृ0 186, 198.
80. वही	:	1, पृ0 314.
81. वही	:	2, पृ0 47.
82. हर्षचरित	:	3, पृ0 165.
83. वार्टर्स	:	पूर्वोद्धरित 3, पृ0 47.
84. वही	:	2, पृ0 314.
85. वही	:	2, पृ0 365.
86. हर्षचरित	:	3, पृ0 165.
87. मृच्छकटिक	:	।अनु0 एम0आर0 काले। : वाराणसी 1972, अंक प्रथम, पृ0 38.
88. कादम्बरी ।पूर्व भाग।	:	पृ0 113.14.
89. हर्षचरित	:	4, पृ0 204.
90. मोती चन्द्र	:	सार्थवाह, पृ0 20.
91. वार्टर्स	:	पूर्वो0 1, पृ0 170.
92. वही	:	188-89.
93. थापर, रोमिला	:	भारत का इतिहास, पृ0 112.

94. लेग्गे, जेम्स : ए रिकॉर्ड ऑव बुद्धिस्टिक किंगडम, पृ0 100.

95. बील, एस0 : पूर्वोद्धरित 2, पृ0 228, 233.

96. मजूमदार, आर0सी0 : द एज आॅव इम्पीरियल यूनिटी, पृ0 615, 624

97. हर्षचरित : 6, पृ0 326.

98. वही : 6, पृ0 344.

99. अग्रवाल, वासुदेव शरण : द डीड्स आॅव हर्ष, पृ0 147.

100. रघुवंश : 6.57

101. वायुपुराण : 1.2.23

102. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 147-48.

103. रघुवंश : 6.57

104. हर्षचरित : पृ. 195

105. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 252.

106. कावेल एण्ड टामस : हर्षचरित, पृ0 204.

107. हर्षचरित : 7, पृ0 370.

108. वही : 1, श्लोक 9.

109. राय, यू0एन0 : गुप्त सम्राट् और उनका काल, पृ0 466-67.

110. वही : पूर्वोद्धरित, पृ0 465-66.

111. मुकर्जी, राधाकुमुद : हर्ष, पृ0 179.

112. बील, एस0 : पूर्वोद्धरित 2, पृ0 236,240.

113. लेग्गे, जेम्स : द ट्रैवेल्स ऑव फाह्यान, पृ0 100, फ्र पाद टिप्पणी 5.

114. रत्नावली : अंक प्रथम, पृ0 15.

115. भागवतमहापुराण : 5.18
"पा जन्य: सिंहलोलकेति"

**x×xxxxxxxxx

116. बील, एस0 : पूर्वो0 1, पृ0 351.

117. वाटर्स : पूर्वो0 1, पृ0 351.

118. हर्षचरित : 7, पृ0 380.
"पाण्डव: सव्यसाची चीनविषयमतिक्रम्य राजसूयसम्पदे"

119. मुकर्जी, राधाकुमुद : पूर्वोद्धरित, पृ0 178.

120. हर्षचरित : 1, पृ0 64, 5, पृ0 291, 8, पृ0 433.

121. वही : 7, पृ0 368.

122. अग्रवाल, वासुदेव शरण : द डीड्स ऑव हर्ष, पृ0 184-85.

123. अ हर्षचरित : 7, पृ0 368.

124. मंजुश्रीमूलकल्प : भाग 2, पृ0 322.

125. बागची, पी० : प्री-आर्यन् एण्ड प्री-द्रविड़ियन इन इण्डिया, पृ० 106.

126. हर्षचरित : 7, पृ० 367.

127. वही : 2, पृ० 106.

128. रघुवंश : 5.73
"वनायुदेश्या: वाहा:"

129. अग्रवाल, वासुदेव शरण : हर्षचरित, पृ० 41.

130. वही : पृ० 42.

131. रघुवंश : 4.70, 4.60, 62.

132. अर्थशास्त्र : 2.46.30

133. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ० 173.

134. हर्षचरित : 6, पृ० 327.

135. वही : पृ० 334.

136. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ० 113.

137. मैती, एस०के० : इकोनॉमिक लाइफ ऑव नार्दर्न इण्डिया इन गुप्ता पीरियड, पृ० 318.

138. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ० 178.

139. वही : 1, पृ० 178.

140. वही : 2, पृ० 83, 107.

141. मजूमदार, आर०सी० : कारपोरेट लाइफ इन एन्सियण्ट इण्डिया का अनुवाद : "प्राचीन भारत में संघटित जीवन" ।अनु०। प्रो० के०डी० बाजपेयी, पृ० 18.

142. वही : पूर्वोद्धरित, पृ० 19-20.

143. अग्रवाल, वासुदेव शरण : कादम्बरी, पृ० 65.

144. नारदस्मृति : 10.2.3

145. वृहस्पति स्मृति : 17; 5-6.

146. बाजपेयी के०डी०।अनु०। : "प्राचीन भारत में संघटित जीवन" ।कारपोरेट लाइफ इन एन्सियण्ट इण्डिया।, पृ० 46.

147. वृहस्पतिस्मृति : 17.10

148. वही : 17.9

149. वही : 17.11

150. नारदस्मृति : 10.3

151. बाजपेयी, के०डी० : पूर्वो० पृ० 49-50.

152. वही : पृ० 56.

153. हर्षचरित : 7, पृ० 377-78.

154. वही : 4, पृ० 242.

155. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ० 11.

156. थपल्याल, के0के0 : इन्स्क्रिप्शन्स ऑव द मौखरीज, लेटर गुप्ताज़, पुष्पभूतिज एण्ड यशोवर्मन ऑव कन्नौज, पृ0 177, 182.

157. एपिग्राफिया इण्डिका : 1, पृ0 75.

158. अर्थशास्त्र : (अंग्रेजी अनु0) शामशास्त्री, 2. 15

159. फ्लीट : पूर्वोद्धरित 3, पृ0 120, पा0टि0 1.

160. सरकार डी0सी0 : सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, पृ0 372, पा0टि0 7.

161. मनुस्मृति : 7. 118, 131, 132.

162. सरकार, डी0सी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 372, पा0टि0 7.

163. वही : पृ. 372

164. मनुस्मृति : 7. 130.

165. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 177, 182.

166. वही : पृ0 174.

167. वही : पृ0 171.

168. एपिग्राफिया इण्डिका : पृ0 360.

169. फ्लीट : पूर्वोद्धरित, 3, पृ0 97.

170. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0

171. सरकार डी०सी० : पूर्वोद्धरित, पृ० 372, पा०टि० 7.

172. हर्षचरित : 7, 7, पृ० 405.

173. वही : 3, पृ० 154.

174. वही : 3, पृ० 171.

175. वही : 7, पृ० 386-88.

176. वही : 2, पृ० 99.

177. वाटर्स : पूर्वोद्धरित I, पृ० 176.

178. वही : पृ० 175-76.

179. बील, एस० : पूर्वोद्धरित I, पृ० 213.

--------::0::--------

पंचम अध्याय

धार्मिक जीवन

बाणभट्ट के समय (सातवीं शताब्दी ईसवी) तक भारत की धार्मिक जीवन-पद्धति में अनेकानेक नवीन प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होने लगती हैं। सारा देश एक धार्मिक संक्रान्ति की ओर बड़े वेग के साथ अग्रसर हो रहा था और ऐसे लक्षण स्पष्टतः दृष्टिगत हो रहे थे जिनसे यह प्रकट होता है कि भारत में प्रचलित धार्मिक पद्धतियों के कायापलट की आवश्यकता शीघ्र होगी।[1] आलोच्य काल के साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों से देश की धार्मिक स्थिति का उलझा हुआ रूप सामने आता है। हिन्दू धर्म की अनेक सम्प्रदायों में विखण्डन की प्रवृत्ति बढ़ती हुई दिखाई पड़ती है। इस काल में कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं जिससे यह इंगित होता है कि लोग हिन्दू धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म स्वीकार कर रहे थे। हर्षचरित में बाणभट्ट ने दिवाकर मित्र नामक एक ऐसे साधु का वर्णन किया है जो मूलतः मैत्रायणी शाखा के अध्येता ब्राह्मण थे किन्तु बाद में बौद्ध बन गये थे।[2] इससे इंगित होता है हिन्दू धर्म से निष्क्रमण की प्रवृत्ति पूर्णतः समाप्त नहीं हुई थी। बौद्ध धर्म के विषय में यदि बाण के साहित्य का अनुशीलन किया जाय तो बहुत अच्छी स्थिति नहीं ज्ञात होती। यत्र-तत्र उल्लेखों से किसी अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचना अत्यन्त दुःसाध्य है। ह्वेनसांग बौद्ध धर्म एवं हिन्दू धर्म के विषय में पर्याप्त जानकारी देता अवश्य है किन्तु उसका विवरण एक विदेशी धार्मिक यात्री होने के कारण बहुत अधिक विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। उसके यात्रा विवरण से कतिपय स्थानों (नगरों) के विषय में विभिन्न धर्मों के सन्दर्भ में आँकड़े तत्कालीन धार्मिक स्थिति का सापेक्ष अध्ययन करने में सहायक हो सकते हैं जो इस प्रकार हैं[3]:

क्र0 स0	स्थान	मन्दिरों की संख्या	विहार/संघाराम चैत्यों की संख्या	बौद्धेतर धर्मानुयायी	बौद्धधर्मानुयायी हीनयान/महायान	अन्य
1	2	3	4	5	6	7
1.	थानेश्वर[4]	x	3	x	700	x
2.	मथुरा[5]	5	20 से अधिक	x	2000	x

1	2	3	4	5	6	7
3.	श्रुघ्न[6]	100	5	बहुसंख्यक	1000	×
4.	मतिपुर[7]	50	10	×	800	×
5.	मयूरगंगाद्वार[8]	(यहाँ स्नान, पुण्य, धर्मशाला की चर्चा करता है)				×
6.	गोविशाण[9]	30	4	×	100	×
7.	अहिच्छत्र[10]	9	10	300 पाशुपत	1000	×
8.	कपित्थ[11]	10	4	शैवधर्मी	1000	×
9.	कन्नौज[12]	200	100	सहस्रों में	10000	×
10.	नवदेवकुल[13]	विष्णु मंदिर	3	×	500	×
11.	अयोध्या[14]	10	100	अल्पसंख्यक	3000	×
12.	अयमुख[15]	10	5	×	1000	×
13.	प्रयाग[16]	100	2	बहुसंख्यक	अल्पसंख्यक	×
14.	कौशाम्बी[17]	50	10	बहुसंख्यक	300	×
15.	काशपुर[18]	×	(खंडितविहार	×	×	×
16.	विशोक[19]	50	20	बहुसंख्यक	3000	×
17.	श्रावस्ती[20]	100	सैकड़ों ध्वंसावशेष	बहुसंख्यक	अल्पसंख्यक	×
18.	कुशीनगर[21]	×	ध्वंसावशेष	×	×	×
19.	वाराणसीनगर[22]	100	30	10,000 साधु	1500	×
20.	गाजीपुर[23]	20	10	×	×	×
21.	वैशाली[24]	24	कोड़ियों	ध्वंसावशेष	(दोनों सम्प्रदाय साथ में रहते हैं	जैन बहुसंख्यक
22.	वृज्जि[25]	(ध्वंसावशेष) कोड़ियों	10	×	×	×
23.	मगध[26]	10	50	विभिन्न सम्प्र. के साधु	10,000	×

1	2	3	4	5	6	7
24.	गया[27]	×	विहार/स्तूप	1000 ब्राह्मण परिवार	×	×
25.	कुशाग्रपुर[28]	×	×	×	बौद्ध	×
26.	राजगृह[29]	×	नालन्दा संघाराम	1000 ब्राह्मण परिवार	×	×
27.	हिरण्यपर्वत[30]	12	10	×	4000	×
28.	चम्पा[31]	20	10 ध्वंसावशेष	विभिन्न सम्प्र. के साधु	200	×
29.	कजुघिर[32]	10	6-7	वही	300	×
30.	पुण्ड्रवर्धन[33]	सैकड़ों	20	वही	3000	नग्न निग्रन्थ
31.	कामरूप[34]	100	×	देवोपासक	×	×
32.	ताम्रलिप्ति[35]	50	10	विभिन्न सम्प्र. के साधु	×	×
33.	कर्णसुवर्ण[36]	50	10	बहुसंख्यक	×	×
34.	उद्र।उत्कल।[37]	50	110	×	बौद्ध बहु०	×
35.	कोंगद[38]	100	×	10,000 विभिन्न सम्प्रदाय के साधु		
36.	कोशल[39]	20	100	×	10,000	×
37.	उज्जयिनी[40]	10	10	×	300	×
38.	बल्लभी[41]	सैकड़ों	कुछ सौ	×	6,000	×
39.	आनन्दपुर[42]	10	10	×	1,000	×

ह्वेनसांग के प्रस्तुत विवरण से बौद्ध धर्म की स्थिति बहुत अच्छी नहीं मानी जा सकती। उसने अधिकांश स्थानों पर बौद्धों की संख्या निर्दिष्ट की है जिससे इंगित

होता है कि बौद्ध धर्म के विकास की गति अवरुद्ध हो गयी थी क्योंकि बौद्ध बहुसंख्यक न होकर अल्पसंख्यक वर्ग की ओर बढ़ रहे थे। साथ ही बौद्धों के स्थापत्य भी अनेक स्थानों में ध्वंसावशेष के रूप में पाये गये। ह्वेनसांग यह भी निर्दिष्ट करता है कि बौद्धों में अधिकांश स्थानों पर हीनयान सम्प्रदाय के लोग ही पाये गये, महायान के विषय में वह बहुत कम विवरण देता है। ह्वेनसांग के अलावा बाण के समकालीन साहित्य एवं अभिलेखों से भी बौद्ध धर्म की बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है जिससे इंगित होता है कि बौद्ध धर्म का प्रभाव घटता जा रहा है। बाण लिखता है कि दिग्विजय के पूर्व हर्ष ने तांत्रिक कृत्य सम्पन्न किये। उसने चाँदी और सोने के कुम्भों से स्नान किया।

भगवान् शंकर की परम भक्ति से पूजा की। दक्षिणावर्त शिखाओं की प्रज्वलित अग्नि में हवन किया।[43] हर्ष के अभिलेखों बाँसखेड़ा एवं मधुबन में भी हर्ष को "परममाहेश्वर" कहा गया है।[44] जिससे ज्ञात होता है कि हर्ष मूलतः शैव था किन्तु राजनैतिक लाभ के लिए बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया था क्योंकि दिवाकर मित्र को राज्यश्री को उपदेश देने के लिए साथ ले आया था।[45] इससे ऐसी संभावना हो सकती है कि हर्ष का उद्देश्य रहा हो कि राज्यश्री को बुद्ध के उपदेशों से इस प्रकार प्रभावित कर दिया जाय जिससे वह राज्य के भार से मुक्त होना चाहे जिससे उसको इसका राजनैतिक लाभ मिल सके।

बाण के समय धार्मिक क्षेत्र में नवीन प्रवृत्तियाँ क्रियाशील थीं। प्रत्येक सम्प्रदाय विखण्डित हो रहे थे। बौद्ध एवं शाक्त धर्म में तान्त्रिक प्रवृत्तियों का प्रभाव बढ़ रहा था जिसके फलस्वरूप समाज में इनके प्रति लोगों का खिंचाव बढ़ रहा था। तंत्र का मुख्य उद्देश्य सिद्धि, प्रकाश, स्वास्थ्य धन और शक्ति प्राप्त करना था।[46] पूर्वमध्यकाल में तान्त्रिक पद्धति धार्मिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गयी थी। कुछ विद्वान् ऐसा मानते हैं कि तान्त्रिक प्रवृत्ति का उदय बौद्ध धर्म से हुआ जो शुरू से ही किसी न किसी रूप में विद्यमान थी।[47] इसके विपरीत कतिपय अन्य

विद्वानों का विचार है कि यह एक स्वतन्त्र पद्धति थी जो प्रागैतिहासिक काल से अनवरत प्रवहमान है ।[48] प्रो०जी०सी०पाण्डे के अनुसार सातवीं आठवीं शताब्दियों तक शैव-शाक्त तन्त्रों का पूर्ण विकास हो चुका था । इसी समय से बौद्ध तन्त्रों का विशेष विकास प्रारम्भ होता है । अतः काल की दृष्टि से शैव तान्त्रिक परम्परा बौद्ध तान्त्रिक परम्परा से प्राचीन होती है । तान्त्रिक धर्म के उपासनात्मक होने के कारण उसमें किसी न किसी प्रकार से ईश्वरवाद अन्तर्निहित है जो कि मूल बौद्ध धर्म के अनुकूल नहीं है । मूलतः आगमिक परम्परा से प्रभावित होने पर भी बौद्ध तन्त्रों ने शैव-शाक्त तन्त्रों को कालान्तर में प्रभावित किया ।[49] इस तांत्रिक प्रवृत्ति से न केवल बौद्ध एवं शाक्त धर्म प्रभावित हुए अपितु शैव, वैष्णव जैसे शुद्ध सत्व वाले धर्म भी अछूते न रह सके । इस प्रकार तन्त्र के उद्भव के साथ-साथ प्रत्येक सम्प्रदाय में विखण्डन की गति तेज हो गयी ।

बौद्ध धर्म

हर्षचरित में बाण राज्यवर्द्धन को बौद्ध धर्म से प्रभावित बतलाता है । राज्य वर्द्धन के बौद्ध होने का संकेत करते हुए बाण लिखता है कि राज्यवर्द्धन सोच रहा था कि तात की मृत्यु के बाद तपोवन में रहा जाये, या वल्कल धारण किया जाये या तपस्या की जाये ।[50] राज्यवर्द्धन के लिए उसी समय पूर्वनिर्दिष्ट वस्त्रकर्मान्तिक के द्वारा वल्कल लाया गया ।[51] ऐसा प्रतीत होता है कि राज्यवर्द्धन को सभी चाहते थे कि वे भिक्षु का जीवन बितायें क्योंकि उनके लिए वल्कल लाने के लिए वस्त्रकर्मा-न्तिक को पूर्व निर्देश दिये जा चुके थे । हर्ष के बांसखेड़ा और मधुबन ताम्रपत्राभि-लेखों में राज्यवर्द्धन को "सुगत" की उपाधि प्रदान की गयी है[52] जिससे उनके बौद्ध होने का संकेत मिलता है ।

हर्षचरित में बौद्ध आचार्य दिवाकर मित्र के आश्रम का विस्तृत विवरण बाण प्रस्तुत करते हैं जिससे बौद्ध धर्म के विषय में प्रकाश पड़ता है । दिवाकर मित्र और

उनके आश्रम के वर्णन में समकालीन बौद्ध धर्म से सम्बन्धित अभिप्रायों और संस्थाओं का उल्लेख किया है। 1. भिक्षु, 2. तत्व, 3. बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार, 4. दिवाकर मित्र के रूप में उस काल के एक बड़े बौद्ध आचार्य का वर्णन।[53] इस विषय में बाण ने उन्नीस सम्प्रदायों का आश्रम के सन्दर्भ में उल्लेख किया है जिनमें धार्मिक और दार्शनिक सम्प्रदाय दोनों सम्मिलित थे[54], संभवतः इस ओर संकेत दिया है कि उस समय तक साम्प्रदायिक कट्टरवाद कम हो चुका था। ऐसा प्रतीत होता है कि लोग परस्पर आपस में बैठकर तत्वचिन्तन की एक नई परम्परा की शुरूआत कर रहे थे। बाण ने दार्शनिक तत्व चिन्तन के विषय में अनेक प्रकार की विधियों का उल्लेख किया है। कतिपय आचार्य शास्त्रों की व्याख्या करते थे, शिष्य सर्वप्रथम मूलग्रन्थों का अध्ययन करते थे। मूल ग्रन्थ के अध्ययन के बाद शंका-समाधान आदि द्वारा शास्त्र चिन्तन किया जाता था।[56]

दिवाकर मित्र के आश्रम का तत्कालीन एक आदर्श बौद्ध संस्था के रूप में वर्णन किया गया है। बाण लिखता है कि वहाँ शिष्यगण चैत्यवन्दकर्म में तत्पर रहते थे। वे बुद्ध, धर्म और संघ इन तीनों की शरण में जाते थे। भगवान् बुद्ध के बताये हुए दस शीलों के शिक्षापदों के उपदेश द्वारा दोष का मार्जन करके धर्मोपदेश दिया जाता था। शील के विषय में प्रो० जी० सी० पाण्डेय का मत है कि शील का सार है चित्त का कुशल धर्मों की ओर झुकाव और कायिक तथा वाचिक संयम में उसकी व्यभिव्यक्ति होती है।[56] दशशील इस प्रकार हैं :-

1. प्राणातिपातविरति (हिंसा से विरत रहना),
2. अदत्तादानविरति (चोरी न करना),
3. कामभिथ्याचारविरति (काम और टूटे आचार से विरत रहना),
4. मृषावादविरति (झूठ से विरत रहना),
5. सुरामैरेयप्रमादस्थानविरति (नशीली वस्तुओं और सुस्ती से विरत रहना),
6. अकालभोजनविरति (कुसमय भोजन से विरत रहना),

7. नृत्यगीतवादित्रविरति (नृत्य, गीत, वाद्य से विरत रहना),
8. माल्यगन्धविलेपनविरति (गन्ध, लेप, श्रृंगार से बचना),
9. उच्चासनशयनविरति (ऊँचे आसन पलंग पर सोने से बचना),
10. जातरूपरजतप्रतिग्रहविरति (स्वर्ण, रजत और धन सम्पत्ति के संग्रह से विरत रहना)।[57]

भिक्षुओं के लिए दसों का पालन अनिवार्य था किन्तु उपासक और उपासिकाओं के लिए प्रथम पाँच ही उपदिष्ट हैं। जातक कहानियाँ सुनाई जाती थीं।[58] विद्वानों की मान्यता है कि जातक माला और दिव्यावदान आदि ग्रन्थों में कही हुई अनेक कहानियों को नये ढंग से कहना और सुनाना तत्कालीन बौद्धधर्म और साहित्य की विशेषता थी।[59]

बाणभट्ट आश्रम के अन्तिम भाग के क्रम में दिवाकर मित्र के व्यक्तित्व का वर्णन करते हैं। उनके आसन के दोनों ओर सिंहशावकों के बैठने का उल्लेख किया गया है।[60] मौर्यकाल से लेकर मध्य काल तक बुद्ध के प्रतीक के रूप में अथवा बुद्ध के साथ मूर्ति कला में सिंहों का अंकन मिलता है। पशु-पक्षियों को आश्रम में दाना चुनने की स्वतन्त्रता थी। बाण दिवाकर मित्र के विषय में लिखता है कि वे लाल चीवर धारण किये हुए थे, उनका शरीर मानों समाप्त शास्त्रों के अक्षररूपी परमाणुओं से बना हुआ जान पड़ता था। परम सौगत होते हुए भी वे अवलोकितेश्वर थे। अवलोकितेश्वर बोधिसत्वों में एक थे। इससे संकेत मिलता है कि वे महायानशाखा के अनुयायी थे। अजन्ता की वाकाटक गुप्त काल की चित्रकला अवलोकितेश्वर का अत्यन्त सुन्दर चित्रांकन मिलता है। स्वयं बुद्ध से भी आदर पाने योग्य थे। स्वयं धर्म से भी पूजा के योग्य थे। वे आत्मा की भी स्पृहा करने योग्य, ध्यान के भी ध्येय, ज्ञान के भी ज्ञेय, जप के जन्म, नियम के नेमि, तपस्या के तत्व, पवित्रता के साक्षात् शरीर, कुशल के कोश, विश्वास के गृह, सदाचार के निवास, सर्वज्ञता के सर्वस्व, दाक्षिण्य के दाक्ष्य, दूसरों पर अनुकम्पा से भरे और सुख की प्राप्ति के साधन थे।[61]

इस वर्णन से ऐसा ज्ञात होता है कि ये सभी गुण, जिनका सम्बन्ध बुद्ध और बोधिसत्वों के वर्णनों में प्राय: मिलता है, की कल्पना दिवाकर मित्र के लिए करके उस काल में बौद्ध मठों में महन्तों के चारित्रिक गुण को आदर्श के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है।

चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण से बौद्धधर्म पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उसके अनुसार हीनयान और महायान सम्प्रदाय के अतिरिक्त अट्ठारह बौद्ध सम्प्रदाय थे जो बुद्ध की शिक्षाओं का भिन्न-भिन्न अर्थ और व्याख्या करने से उत्पन्न हुए थे। सभी सम्प्रदाय अपने को ज्ञाननिष्ठ मानते थे। उसके अनुसार हीनयान और महायान के सिद्धान्तों में यथेष्ट भिन्नता थी।[62] ह्वेनसांग कहता है कि महायान सम्प्रदाय के प्रसार-प्रचार में हर्ष ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने उड़ीसा के हीनयान धर्मावलम्बियों को शास्त्रार्थ में पराजित करने के लिए नालन्दा के आचार्य शीलभद्र से चार अन्य विद्वानों के साथ उड़ीसा जाने का अनुरोध किया।[63] संभवत: हर्ष के द्वारा राज्याश्रय दिये जाने के कारण ह्वेनसांग कन्नौज को बौद्धधर्म के ब सबसे सशक्त केन्द्र के रूप में प्रदर्शित करता है। उसने यहाँ सौ विहारों और दस हजार बौद्ध भिक्षुओं के होने का उल्लेख किया है।[64] उल्लेखनीय है कि हर्ष के राज्याश्रय देने के बाद भी सातवीं शताब्दी ईसवी में हीनयान बौद्धधर्म के ह्रास का संकेत स्वयं चीनी यात्री ने भी दिया है। उसके अनुसार बौद्ध धर्म मध्यदेश में अवनत स्थिति में था, उसका विशेष प्रचार-प्रसार मथुरा, पंजाब, कश्मीर, बिहार, बंगाल, उड़ीसा और पश्चिम में वल्लभी तक ही सीमित रह गया था। मध्यभारत के अनेक स्थानों पर उसने विहारों के ध्वंसावशेष का उल्लेख करता है।[65] ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म ह्वेनसांग के समय तक भारत के बाहर अफगानिस्तान, पामीर घाटी, बदख्शां, खोतान, तिब्बत, चीन, कोरिया, श्रीलंका, जापान, बर्मा, स्याम आदि देशों में अपनी जड़ें जमा चुका था किन्तु अपनी मातृभूमि भारत से समाप्त होता जा रहा था, इसका मुख्य कारण संभवत: हूणों का आक्रमण और शशांक जैसे उन्मादी राजाओं के उदय को माना जा सकता है।[66] विद्वान् इसका एक कारण यह भी मानते हैं कि महायान बौद्ध धर्म भागवत धर्म से प्रेरित होकर विकसित हुआ जिसके फलस्वरूप बुद्ध का स्वरूप

परिवर्तित होकर भागवत सम्प्रदाय के विष्णु के सदृश हो गया । साथ ही वैष्णव धर्म में बुद्ध को अपने में समाहित करके विष्णु के एक अवतार के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। इस प्रकार नारायण कृष्ण के समान महायानियों के बुद्ध भी धर्म की हानि होने पर सर्वकल्याण और धर्म की पुनर्स्थापना के लिए अवतार लेने की परम्परा का एक साथ विकास हुआ ।[67] तंत्र के प्रभाव के फलस्वरूप बुद्ध, अवलोकितेश्वर और तारा को सम्पृक्त कर बौद्ध धर्म में त्रिमूर्ति की स्थापना कर ली गई ।[68] उल्लेखनीय है कि ह्वेनसांग ने नालन्दा से 32 किलोमीटर दूर पश्चिम में एक बौद्ध विहार में तीन मन्दिरों का उल्लेख किया है । मन्दिर के बीच में बुद्ध की 9 मीटर ऊँची मूर्ति स्थापित थी । उसके बायीं ओर तारा बोधिसत्व और दाहिने ओर के मन्दिर में अवलोकितेश्वर की मूर्तियों का उल्लेख है ।[69] ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध और विष्णु के मध्य का अन्तर समय के साथ मिटता चला गया । सामान्य लोग राम और कृष्ण की भाँति बुद्ध को भी नारायण का रूप मानने लगे । फलस्वरूप बुद्ध विष्णु के अवतारों की श्रृंखला की अन्तिम कड़ी के रूप में जुड़ गये ।[70] इस तरह हिन्दू धर्म ने बुद्ध को अपने में समेट कर बौद्धधर्म को पृथक् सम्प्रदाय के रूप में शनैः शनैः भारत भूमि से समाप्त प्राय कर दिया ।

उल्लेखनीय है कि ह्वेनसांग लिखता है कि प्रयाग के दान महोत्सव पर हर्ष ने बुद्ध के साथ आदित्य और शिव की मूर्तियाँ भी स्थापित करवाई थी ।[71] इससे विद्वान् ऐसा अनुमान लगाते हैं कि इस त्रिमूर्ति के क्रम में ब्राह्मण त्रिमूर्ति परिलक्षित होती है । अन्तर इतना ही था कि ब्रह्मा की जगह उसमें बुद्ध तथा विष्णु के स्थान पर सूर्य रखे गये थे ।[72] बौद्ध धर्म के क्षीण होने में एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि बौद्धधर्म में धर्म प्रचार की जो गति पहले थी, वह समाप्त होती जा रही थी । बौद्ध जन अपने भिन्न-भिन्न मतों व विचारों की पुष्टि में ग्रन्थ लिख रहे थे । राम और कृष्ण जैसे महापुरुषों से सम्बद्ध महाकाव्यों के समान बौद्ध गौतमबुद्ध के प्रचारार्थ काव्यों का सृजन न कर सके, परिणामस्वरूप वे बुद्ध को राम और कृष्ण की

तरह लोकप्रिय बनाने में असमर्थ रहे । हिन्दू धर्म के बढ़ते वेग ने धीरे-धीरे बौद्ध धर्म को उखाड़ कर फेंक दिया और बुद्ध को अपने आराध्य देवों में एकीकृत कर लिया ।[73]

बौद्धधर्म से सम्बन्धित बाण के समकालीन अभिलेखीय प्रमाण भी कोई महत्वपूर्ण साक्ष्य नहीं प्रस्तुत करते । हर्ष के बांसखेड़ा और मधुबन ताम्रपत्र अभिलेखों में राज्यवर्द्धन को "परमसौगत" की उपाधि से विभूषित किया गया है ।[74] इसके अलावा यशोवर्मन के नालन्दा पाषाण अभिलेख (आठवीं शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध) में उसके कृपापात्र मालाद द्वारा बौद्ध संघ को दान देने का उल्लेख मिलता है ।[75] जिससे संकेत मिलता है कि यत्र-तत्र बौद्धों को प्रश्रय दिया जा रहा था किन्तु वे बौद्धधर्म को पुनर्जीवित करने में कोई महत्वपूर्ण भूमिका न निभा सके । इसी अभिलेख में बुद्ध के अनेक नामों बुद्ध, शौद्धोधन, जिन, शस्ता और शाक्यमुनि का भी उल्लेख मिलता है ।[76] इस प्रकार समवेत रूप से कहा जा सकता है कि बाण के समय बौद्ध धर्म की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी । वह निरन्तर ह्रास के पथ पर बढ़ रहा था। आठवीं-नवीं शताब्दी ईसवी में कुमारिलभट्ट और शंकराचार्य जैसी महान् विभूतियों के उदय के पश्चात् बौद्ध धर्म दब गया, जो फिर नहीं उठ सका ।

जैन धर्म

हर्षचरित में दिवाकर मित्र के आश्रम में बाण ने जैन धर्मावलम्बियों में अर्हत (जैन साधु), श्वेतपट (श्वेताम्बर जैन), केश लुंचक का उल्लेख किया है ।[77] इसके अलावा सम्राट् प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु से दुःखी होकर उनके सगे-सम्बन्धियों के गृह-त्याग वर्णन में बाण ने इक्कीस सम्प्रदायों का उल्लेख किया है जिसमें चार सम्प्रदायों के नाम गिनाए हैं, शेष सत्तरह सम्प्रदायों को संकेत मात्र से ही उल्लेख किया है ।[78] इस वर्णन में जैन सम्प्रदाय का तीन बार उल्लेख मिलता है । उसके अनुसार कुछ लोग कुश बिछाकर बैठे और आहार त्यागकर भारी शोक मिटाने लगे ।[79] इसका तात्पर्य

प्रायोपवेशन के द्वारा लम्बे-लम्बे उपवास करने वाले जैन साधु से है । उल्लेखनीय है कि मौर्य वंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य ने भी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में जैन आचार्य भद्रबाहु के साथ उपवास करके प्राण त्यागने की जैनों की परम्परा का निर्वाह किया था ।[80] बाण आगे लिखते हैं कि कुछ विषयों का त्याग कर अल्पाहार से कृश शरीर होकर शून्य अटवी स्थानों में रहने लगे । इसका तात्पर्य विद्वानों ने यापनीय संघ वाले साधुओं से किया है जो मोरपिच्छ साथ रखते थे, नग्न रहते थे, पाणितलभोजी थी, अल्प भोजन का कष्ट संक्लिष्ट बुद्धि के बिना सहकर उत्तम स्थान पाने के इच्छुक थे ।[81] बाण ने इस प्रकार के साधुओं का संकेत अनेक स्थानों पर किया है। प्रभाकरवर्द्धन की अस्वस्थता का समाचार सुनकर हर्ष के प्रयाण के समय बहुत दिन की मैल से चिकटे शरीर वाला काला-कलूटा सा साधु ।क्षपणक। हाथ में मोरपिच्छ लिये सामने आ गया ।[82] ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में बाण कहते हैं कि पवनों ने मानों मलिन वेश धारण किये हुए जैन साधुओं के आचार सीखकर वन मयूरों के पंख ग्रहण करना आरंभ कर दिया ।[83]

विद्वान् ऐसा मानते हैं कि यापनीय नग्न रहते थे, यही श्वेताम्बरों से उनका भेद था ।[84] बाण के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि क्षपणक बहुत दिन तक बिना स्नान किये शरीर को अत्यन्त मलिन रखते थे । उल्लेखनीय है कि जैन धर्म सुखमय जीवन व्यतीत करने का विरोधी था । जैन धर्म बाइस परिषह ।कड़ाई। को सहन करने का निर्देश देता है : भूख, पिपासा, ।प्यास।, शीत, उष्ण, दंशमशक ।मच्छरों का काटना। नाग्न्य ।नंगापन।, अरति ।दूषित वातावरण।, स्त्री ।यौन संताप।, चर्या ।थकावट।, निषद्या ।एक स्थल पर बैठे रहना।, शैया ।कठोर भूमि पर शयन।, आक्रोश ।क्रुद्ध वचन सहना।, वध ।पिटना।, याचना ।माँगना।, अलाभ ।कुछ भी न मिलना।, रोग ।बीमारी।, तृणस्पर्श ।काँटे चुभना।, मल ।गंदगी।, अपमान, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन ।सिद्धान्त के प्रति अविश्वास। ।[85] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि नग्नाटक और क्षपणक इन्हीं सिद्धान्तों का पालन करते थे । बाण के वर्णन "सेवा विमुख"[86] में अविमुख का तात्पर्य विद्वान् नैगमेश संज्ञक देवता से कहते हैं । मथुरा और अहिच्छत्रा के

उत्खनन से कुषाण एवं गुप्तकालीन नैगमेष की मिट्टी की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई है. संभवतः यापनीय संघ के अनुयायी लोगों में नैगमेष की पूजा का चलन गुप्तकाल या उसके कुछ बाद भी जारी रहा जिसका वर्णन बाण ने भी किया है। इससे इंगित होता है कि बाण के समय भी नैगमेष की पूजा का यत्र तत्र प्रचार था। बाण आगे कहते हैं कि कुछ वायु भक्षण करते हुए कृश शरीर मुनि हो गये। विद्वान् इनका तात्पर्य दिगम्बर जैनों से करते हैं जिनमें उग्र तपस्या करने की प्रवृत्ति जारी थी। बाण के द्वारा वर्णित दिवाकर मित्र के आश्रम में केशलुंचन शब्द का प्रयोग संभवतः ऐसे ही दिगम्बर जैनों के लिए हुआ है तथा आर्हत को यापनीय संघ के जैनों से समीकृत किया जा सकता है।[87] चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी इस प्रकार के जैन साधुओं पर यत्र-तत्र प्रकाश डाला है। उसके अनुसार वैशाली में जैनों की संख्या बहुत थी।[88] इसके अलावा पुण्ड्रवर्धन में नग्न-निर्ग्रन्थ होने का भी विवरण प्रस्तुत करता है।[89] जिससे संकेत मिलता है कि जैनों की स्थिति बाण के समय बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती। बाण के समकालीन किसी अभिलेख में भी जैनों का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता जिससे उनकी दशा का अनुमान लगाया जा सके।

बाण के समकालीन दक्षिण भारत के चालुक्य वंश के समय वहाँ जैन धर्म के प्रचार-प्रसार के कतिपय उल्लेख प्राप्त होते हैं। चालुक्यवंशीय नरेशों में यद्यपि जैन मन्दिरों को दान दिये थे और दूसरों द्वारा दिये गये दानों का अनुमोदन भी किया था किन्तु स्वयं किसी राजा ने जैन मत को नहीं स्वीकार किया था।[90] चालुक्य वंश के प्रसिद्ध अभिलेख ऐहोल के लेखक रविकीर्ति ने जिन मन्दिर को बनवाया था। अभिलेख में वह दावा करता है कि उसे पुलकेशिन् द्वितीय की अनुकम्पा प्राप्त थी। इसी से वह इतना बड़ा और भव्य मन्दिर बनवाने में सफल हुआ।[91] इसके अलावा जेबुलगेरी के मुखिया कलियम्म जैन ने कीर्तिवर्मन द्वितीय के राज्यकाल में अग्निगेरे में एक चैत्य का निर्माण करवाया था।[92]

कोडिसूलर कप्प (कीर्तिवर्मन गोसाई) ने राजा के नाम वाले (प्रभुनाम)

मन्दिर के सामने जैन मुनि की प्रतिमा स्थापित की थी ।[93] इस प्रकार ज्ञात होता है कि जहाँ उत्तर भारत में जैन धर्म की स्थिति दयनीय थी, वहीं दक्षिण भारत में वह फल-फूल रहा था ।

वैष्णव धर्म

बाण के साहित्य में वैष्णव धर्म का यत्र-तत्र उल्लेख ही प्राप्त होता है । दिवाकर मित्र के आश्रम में विभिन्न धर्मावलम्बियों के मध्य भागवत और पांचरात्र जैसे प्राचीन सम्प्रदायों का उल्लेख किया गया है ।[94] इसके अलावा प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु के शोक में गृहत्याग करने वाले लोगों के वर्णन में कतिपय वैष्णव सम्प्रदायों का संकेत किया गया है । बाण के अनुसार कुछ लोग भृगुओं में अनुरक्त हुए ।[95] इसका तात्पर्य विद्वान् भागवत सम्प्रदाय से लगाते हैं ।[96] अन्यत्र बाण लिखते हैं कि कुछ तपोवन में आश्रम-मृगों से चाटे जाते हुए वार्धक्य को प्राप्त हुए ।[97] विद्वानों ने इनका समीकरण वैखानस सम्प्रदाय के वैष्णवों से किया है ।[98] इसी प्रकार इस प्रसंग में बाण ने पांचरात्रिकों का संकेत दिया है जिससे ज्ञात होता है कि ये पंचव्यूह अर्थात् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और साम्ब की पूजा करते थे । वासुदेव और संकर्षण की पूजा सबसे प्राचीन थी । आगे चलकर उस परम्परा में प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि कुलपुत्र भी सम्मिलित कर लिये गये ।[99] वैष्णव धर्म में प्राचीन सम्प्रदाय भागवत, पांचरात्रिक, वैखानस और सात्वत आदि थे । सात्वत सम्प्रदाय जो नारायण की पूजा करते थे, के विषय में विद्वानों का मत है कि सात्वत वृष्णि वंश (जिसमें कृष्ण का जन्म हुआ था) का दूसरा नाम है । वासुदेव, संकर्षण, अनिरुद्ध इसी वंश के थे तथा इनका अपना निजी धर्म था जिसके अनुसार वासुदेव की पूजा परमात्मा के रूप में की जाती थी ।

वासुदेव भक्ति यह धर्म प्राचीनतम माना जा सकता है ।[100] सात्वत धर्म का कोई उल्लेख बाण के साहित्य से नहीं प्राप्त होता । कादम्बरी में रानी विलास-

वती के द्वारा कथा ।श्रीकृष्णजन्मादि पवित्र कथा। सुनने का उल्लेख बाण करते हैं ।[101] भागवत सम्प्रदाय जिन साक्ष्यों पर आधारित हैं वे पांचरात्र संहिताएं हैं । पांचरात्र सम्प्रदाय के लोग वासुदेव की पूजा करते हैं तथा भागवत सम्प्रदाय के लोग भी वासुदेव की पूजा करते हैं ।[102] ब्रह्मसूत्र की टीका में भागवत सम्प्रदाय सम्बन्धी अपनी टिप्पणी में शंकराचार्य ने भगवान् वासुदेव की पाँच प्रकार की पूजा विधियाँ बताई हैं जो निम्नांकित हैं[103]

1. अभिगमन - मन, वचन और शरीर को भगवान पर केन्द्रित करके उनके मन्दिर में जाना,
2. उपादान ।पूजा की सामग्री जुटाना।,
3. इज्या ।पूजा।
4. स्वाध्याय ।मन्त्र जाप।
5. योग या ध्यान.

भण्डारकर के अनुसार भागवत और पांचरात्रों में कोई विशेष भेद नहीं था । सामान्य वैष्णवों में भागवत धर्म ही अधिक लोकप्रिय हुआ ।[104] संभवत: यही कारण है कि वैष्णव धर्म बाण के पूर्व गुप्त काल में भी खूब प्रचलित हुआ । गुप्त काल के अभिलेखों एवं सिक्कों में राजाओं को "परमभागवत" की उपाधि से विभूषित किया गया है । चन्द्रगुप्त प्रथम से लेकर भानुगुप्त तक इन सम्राटों में एक भी ऐसा नहीं हुआ जिसका किसी अन्य धर्म के प्रति झुकाव रहा हो । धार्मिक दृष्टि से गुप्त सम्राट थानेश्वर के वर्द्धन वंशीय शासकों से भिन्न थे ।[105]

बाणभट्ट के समकालीन अभिलेखों से भी वैष्णव सम्प्रदाय की झलक यत्र तत्र प्राप्त होती है । अवन्ति वर्मा के बराबर गुहा लेख ।छठीं शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध। में कृष्ण की मूर्ति स्थापित करने का उल्लेख किया गया है ।[106] इससे ऐसा इंगित

होता है । विष्णु के अवतारों में कृष्ण को विशेष महत्व मिला था । इसी प्रकार उत्तर गुप्त वंश के अफसढ़ अभिलेख ॥सातवीं शताब्दी ईसवी का उत्तरार्द्ध॥ में आदित्यसेन के द्वारा विष्णु मन्दिर के निर्माण का उल्लेख किया गया है ।[107] देवबर्नार्क अभिलेख ॥आठवीं शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध॥ में आदित्यसेन को "परमभागवत" कहा गया है ।[108] जिससे उसके वैष्णव मतानुयायी होने की पुष्टि होती है । दक्षिण भारत के बाण के समकालीन राजवंश ॥चालुक्य-वंश॥ में भी वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार का उल्लेख मिलता है । मंगलेश के नेरूर दान लेख के अनुसार उसने कार्तिक द्वादशी को उपवास करके विष्णु की पूजा की थी और कंडियाटक ग्राम को दान दिया था ।[109] मंगलेश ने पहाड़ कटवाकर एक मन्दिर का निर्माण करवाया और उसमें विष्णु की प्रतिमा स्थापित की ।[110] चालुक्यवंशीय राजाओं को भी विष्णु का उपासक होने पर परम भागवत की उपाधि से अलंकृत कर दिया जाता था ।[111] इस प्रकार वैष्णव धर्म का विकास यद्यपि बाण के समय पूर्ववत् ॥गुप्त-युग के समान॥ नहीं रह गया था किन्तु अनेक राजाओं के वैष्णव धर्म स्वीकार करने से उसकी अच्छी अ स्थिति का संकेत मिलता है ।

शैव धर्म

बाण के साहित्य और समकालीन अभिलेखों तथा साहित्य से शैव धर्म का जो स्वरूप निखर कर सामने आता है, उससे इंगित होता है कि बाण के समय शैव धर्म खूब पुष्पित एवं पल्लवित हो चुका था । ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तों के समय उत्तरी भारत में विष्णु और भागवत धर्म को जो प्रधानता मिली थी, गुप्तों के पश्चात् छठीं और सातवीं शताब्दी में उसका स्थान शैव धर्म ने ले लिया था ।[112] हर्षचरित और कादम्बरी के प्रारम्भ में ही बाण ने मंगलाचरण के श्लोकों में शिव की वन्दना की है। हर्षचरित में बाण लिखता है कि त्रिभुवन रूपी नगर के निर्माण आरम्भ के मूलस्तम्भ, जिनके उन्नत मस्तक पर चन्द्र के भँवर की शोभा है, उन भगवान् शंकर को नमस्कार

है ।[113] कादम्बरी के दो श्लोकों में शंकर की स्तुति की गई है ।[114] सम्राट हर्ष की दो नाटिकाओं रत्नावली[115] और प्रियदर्शिका[116] के मांगलिक श्लोक भी शिव की स्तुतिपरक हैं । इस प्रकार शिव की स्तुतियों से स्पष्ट हो जाता है कि शैव धर्म का प्रभाव बढ़ चुका था । इससे बाण के स्वयं शैव होने की भी पुष्टि हो जाती है । हर्ष की दो नाटिकाएँ शैव धर्म के स्तुतिपरक मंगल श्लोकों से प्रारम्भ होती है, जिससे उनके भी शैव होने के संकेत मिलते हैं । वैसे बाण हर्षचरित में सम्राट् हर्ष को शिव की पूजा करते हुए दिखाया है ।[117]

हर्ष के आदिपूर्वज पुष्यभूति के विषय में कहा गया है कि पुरवासी, राज्य के कर्मचारी, मंत्री और भुजबल से पराजित होकर कर देने वाले बड़े-बड़े सामन्त भी शिव की पूजा के उपयोग में आने वाले उपहारों और भेंटों से उसकी सेवा करते थे ।[118] हर्षचरित में सरस्वती को बालू के शिव लिंग (पार्थिव) का पूजन करते हुए बताया गया है जिसमें शिव की पंचब्राह्मरूप में पूजा की जाती है । उल्लेखनीय है कि शिव के पाँच रूप सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान नामक थे । विद्वानों का मत है कि शिव के पाँच रूपों के कारण पंचमुखी शिवलिंग कुषाण काल से ही बनने लगे थे और गुप्त काल में भी उनका विशेष प्रचार था । पाँच तत्व और पाँच चक्रों के अनुसार यह शिव के पंचात्मक रूप की कल्पना की ।[119] किन्तु बाण सरस्वती के द्वारा अष्टमूर्तियों पर अष्टपुष्पिका चढ़ाये जाने का उल्लेख करते हैं । बाण ने इनके नामों में पृथ्वी, वायु, जल, आकाश, अग्नि, सूर्य, चन्द्र और यजमानमयी शिव की आठ मूर्तियों को उल्लिखित किया है ।[120] भैरवाचार्य द्वारा भी अष्टपुष्पिका से शिवार्चन करने का उल्लेख किया गया है ।[121]

उल्लेखनीय है कि शिव की अष्टमूर्ति परिकल्पना बाण की अपनी नहीं है, अपितु यह गुप्त-काल के गृहीत है । कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् के मंगलाचरण श्लोक में इन्हीं अष्टमूर्तियों की स्तुति की है ।[122] बाण ने बालुका निर्मित लिंग

पूजन का उल्लेख किया है । इस सन्दर्भ में विद्वान् ऐसा मानते हैं कि वस्तुतः इसी देश की कुछ आदिवासी जातियाँ थीं जो कि लिंग पूजा करती थीं । जिस प्रकार रुद्र-शिव उपासना में वन में बसने वाली और एकान्त में रहने वाली जातियों के अनेक ग्रहण कर लिये गये, उसी प्रकार शिश्नोपासना वाला तत्व भी उन बर्बर जातियों से ग्रहण कर लिया गया होगा, जिनके सम्पर्क में आर्य आये होंगे ।[123]

बाण हर्षचरित में अनेक स्थानों पर शिव के पूजन का उल्लेख करता है, किन्तु वे उल्लेख पाशुपतमतानुयायियों के हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि आन्ध्र और द्रविड़ जनपद वासियों में तान्त्रिक शैवधर्म शायद विशेष रूप से प्रचलित था । बाण ने तान्त्रिक उपासकों में द्रविड़ और आन्ध्र के दाक्षिणात्य शिवभक्ति के आचार्यों का वर्णन किया है ।[124] सम्राट् हर्ष के पूर्वज पुष्यभूति जिस प्रसिद्ध भैरवाचार्य को अपना गुरु मानते थे वे भी दाक्षिणात्य महाशैव थे । वे अनेक विद्याओं और सहस्रों गुणों के लिए विख्यात थे ।[125] बाण भैरवाचार्य का वर्णन करते हुए कहता है कि वे काले कम्बल ओढ़कर असुर-विवर में प्रवेश करने की इच्छा से घने अन्धकार में अभ्यास कर रहे थे । बिजली के समान पीले चमकते हुए अपने तेज से शिष्यों को मानों श्मशान का महामांस बेचकर खरीदे हुए मैनसिल के चन्दन से चर्चित कर रहे थे । सिर पर रखकर जलाये गये गुग्गुल, से खोपड़ी के सफेद होने की शंका हो रही थी । नेत्र के रक्त अपांगों से मानों महामण्डल का निर्माण कर रहे थे । शैव संहिता के भारी बोझ से उनका निचला ओष्ठ झुक गया था । कान की पालियों में स्फुटिक के कुण्डल लटक रहे थे ।[126]

उल्लेखनीय है कि बाण इस वर्णन में कई प्रकार की क्रियाओं को एक साथ प्रकाशित करते हैं । असुर-विवर की क्रिया के विषय में बाण स्थाण्वीश्वर वर्णन में असुर-विवर साधक को स्पष्ट रूप से वातिक कहा है ।[127] बाण कहते हैं कि असुर विवर क्रिया में किसी गहरे गड्ढे में उतर कर साधना करना पड़ता था ।[128] कतिपय विद्वान् इस विषय में कहते हैं कि यह कोई वीभत्स तान्त्रिक प्रयोग था । इसका

मुख्य अंग बेताल साधना थी । किसी कारण से इसका सम्बन्ध शैवधर्म से हो गया है होगा ।[129] बाण हर्षचरित में महामांस के विक्रय का उल्लेख करते हैं ।[130] यह क्रिया कापालिक सम्प्रदाय के लोग करते थे इसमें श्मशान से शवमांस लेकर फेरी लगाकर भूत-पिशाच को प्रसन्न करते थे ।[131] शिव पूजा में साधक गुग्गुल की बत्ती सिर कर जलाते थे । यह क्रिया भी अतिवादी सम्प्रदायों की ही थी । बाण ने भैरवाचार्य के वर्णन में शैव संहिता का उल्लेख किया है जिससे ज्ञात होता है कि बाण के पूर्व शैव संहिताओं की रचना हो चुकी थी ।

हर्षचरित से ज्ञात होता है कि भैरवाचार्य साधना भूमि में महामण्डल बनाकर बैठा हुआ था । लाल चन्दन, लाल माला और लाल वस्त्र से अलंकृत शव के मुंह में अग्नि जलाकर हवन कर रहा था । स्वयं काला वस्त्र, काली पगड़ी, काला अंगराग, काला हस्तसूत्र धारण किये हुए था । काले तिल से आहुति दे रहा था ।[132] भैरवाचार्य के इस कृत्य से कालामुख सम्प्रदाय का आभास होता है । वैसे ऐसे अतिवादी सम्प्रदाय को समाज में बहुत सम्मान संभवतः नहीं था । बाण लिखता है कि साधना स्थल पर आवाज आती है कि यह पुष्यभूति राजा होकर भी तेरे जैसे निम्न कोटि के शैवों द्वारा साधन बनाया गया है ।[133] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के अतिवादी शैव सम्प्रदायों को समाज में बहुत सम्मानीय स्थान नहीं प्राप्त रहा होगा । चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी इस प्रकार के भूतों, कापालिकों और मुंडिक आदि सम्प्रदाय के साधुओं का उल्लेख यात्रा-विवरण में किया है ।[134]

शैव सम्प्रदाय के इन अतिवादी सम्प्रदायों के अलावा बाण ने कतिपय अन्य सम्प्रदायों की ओर संकेत किया है । प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु के शोक में उनके शुभेच्छुओं के द्वारा गृहत्याग के वर्णन में बाण कहता है कि कुछ शोक के आवेग से अग्नि में प्रविष्ट हो गये ।[135] धार्मिक पक्ष में इसका तात्पर्य पंचाग्नि तापने वाले शैवों से लगाया जाता है । इसी प्रकार पाशुपत सम्प्रदाय की ओर संकेत करके कहते हैं कि

कुछ ने चूड़ामणि उतारकर शिव की शरण लेकर जटाएँ रख लिया ।[136] इसके अलावा कादम्बरी में रानी विलासवती के द्वारा कृष्ण पक्ष चतुर्दशी को महाकाल के पूजन के लिए जाने का उल्लेख है ।[137] महाश्वेता के द्वारा शिव की अर्चना का भी उल्लेख मिलता है ।[138] अन्यत्र बाण कहता है कि शिव के मन्दिर रुद्र एकादशी के जप से शब्दायमान थे । अत्यन्त पवित्र शैव लोग भगवान् शंकर को दूध के हजार घड़ों से स्नान कराने में लगे थे ।[139] इस प्रकार शैव धर्म का विस्तृत विवरण बाण के साहित्य से प्राप्त होता है ।

कतिपय अभिलेखीय साक्ष्य बाण के समय की धार्मिक स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं । इस समय के अभिलेखों से शिव के विभिन्न रूपों पर प्रकाश पड़ता है । ईश्वर वर्मा का हरहा पाषाण अभिलेख ﴾554 ईसवी﴿[140] शिव की स्तुति से प्रारम्भ होता है जिसमें उन्हें विश्व का निर्माता, पालन कर्ता तथा संहारकर्ता कहा गया है । स्तुति में शिव के अर्द्धभाग में पार्वती के आसीन होने के वर्णन से है । शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप का संकेत मिलता है । इसी प्रकार नागार्जुनी गुहा संख्या एक[141] ﴾छठीं शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध﴿ में मौखरि वंश के अनन्तवर्मा द्वारा शिव और पार्वती की मूर्ति स्थापित करने की पुष्टि होती है । उस समय के विभिन्न राजवंशों के अनेक राजाओं ने अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार उपाधियाँ धारण की हैं । मौखरि वंश के सर्ववर्मा को नालन्दा और असीरगढ़ मुद्रा ﴾छठीं शताब्दी ईसवी उत्तरार्द्ध﴿ अभिलेखों में "परममाहेश्वर" कहा गया है ।[142] इसी प्रकार अवन्ति वर्मा को नालन्दा और सोहनाग मुद्रा अभिलेखों ﴾छठीं शताब्दी ईसवी का उत्तरार्द्ध﴿ में "परममाहेश्वर" की उपाधि से विभूषित किया गया है ।[143] हरहा पाषाण अभिलेख में सूर्यवर्मा के द्वारा अन्धक का नाश करने वाले शिव के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवा कर दुगुना करने का उल्लेख है ।[144] इस प्रकार की उपाधि मौखरि वंश के अनेक शासकों द्वारा "परममाहेश्वर" की उपाधि धारण करने से ज्ञात होता है कि बाण के पूर्ववर्ती इस वंश में शैव मत का पर्याप्त लोकप्रिय था । इसकी पुष्टि मौखरियों की

राजमुद्राओं पर शिव के वाहन नान्दी की गणों के साथ अंकन से मिलता है।[145] पुष्यभूति वंश के सम्राट् हर्ष को उनके बाँसखेड़ा एवं मधुबन ताम्रपत्र अभिलेखों में "परम माहेश्वर" उपाधि से विभूषित किया गया है।[146]

हर्षचरित में सैन्य अभियान के समय ग्रामाक्षपटलिक द्वारा वृषाङ्कयुक्त शासन मुद्रा के उल्लेख से भी हर्ष के शैव होने की पुष्टि हो जाती है।[147] उत्तरगुप्त वंश के मँगराव अभिलेख (आठवीं शताब्दी ईसवी का आरम्भ) में विष्णु गुप्त को शैव बताया गया है और उसके माध्यम से अविमुक्तज्ञ द्वारा सुभद्रेश्वर शिव मन्दिर में दीप-दान के लिए धनराशि देने का उल्लेख है।[148] इसी प्रकार इस वंश के रामगुप्त और उसके पुत्र जीवगुप्त को कटरा भूमिदान अभिलेख (आठवीं शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध) में "परममाहेश्वर" की उपाधि से अलंकृत किया गया है।[149] इस प्रकार बाण के पूर्ववर्ती एवं परवर्ती अभिलेखों से भी इस बात की पुष्टि हो जाती है कि उत्तर भारत में उस समय शैव मत अपने उत्कर्ष पर था। दक्षिण भारत का शैव मत के माध्यम से उत्तर भारत से सम्बन्ध बना रहा। गंगा के उत्तरी किनारे से पट्टदकल आकर वहाँ के विजयेश्वर (संगमेश्वर) मन्दिर में ज्ञानाशिवाचार्य नामक एक शैव के "अर्चक" होने का उल्लेख प्राप्त होता है। आचार्य ने भूमि खरीदकर अक्षयनिधि स्थापित की थी जिसकी आमदनी से आचार्यों के व्याख्यान के व्यय, मन्दिर की पूजा और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रबन्ध किया जाता था।[150] इस प्रकार बाण के समय उत्तर और दक्षिण भारत में शैव मत पुष्पित एवं पल्लवित हो रहा था।

शाक्त धर्म

बाण के समय जिस प्रकार शैव मत का प्राबल्य था, संभवतः उसी प्रकार शाक्त मत का भी प्रचार-प्रसार था किन्तु शाक्त मत में तान्त्रिक क्रियाओं को प्रधानता प्राप्त हो चुकी थी। शाक्त मत मूलतः मातृशक्ति पर आधारित था। बाण

के समय (सातवीं शताब्दी ईसवी) में शक्ति की पूजा दुर्गा, चण्डिका, काली, भवानी आदि विभिन्न नामों से की जाती थी ।[151] तान्त्रिक धर्म में "ज्ञानकर्म-समुच्चयवाद" की विचारधारा को लक्ष्य करके आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए लोग पूजा के अंग के रूप में कतिपय क्रियाओं का आश्रय लेते हैं । इसमें मन्त्र के जप को मुख्य अंग माना जाता है ।[152] शाक्त धर्म के मातृ शक्ति पर आधारित होने के कारण विकास क्रम में देवी के तीन रूप प्राप्त होते हैं ।[153]

1. साधारण सौम्य रूप, जिसकी सामान्य तया पूजा की जाती थी ।
2. उग्र रूप, जिसमें वह कापालिकों और कालामुखों के सम्प्रदायों से सम्बद्ध हो गयी और पशुओं तथा मनुष्यों की बलि चढ़ाई जाती थी ।
3. कामात्मक रूप, इस रूप में उनकी पूजा शाश्वत सम्प्रदायानुयायी करते हैं जो शक्ति के उपासक होने के कारण शाक्त कहलाते हैं ।

तान्त्रिक सम्प्रदाय में जाति एवं पेशा की कोई प्रतिबद्धता नहीं थी । तन्त्र जाति व्यवस्था को मान्यता प्रदान नहीं करता है और वैदिक क्रियाओं का विरोधी है ।[154] तंत्रशास्त्र प्रत्येक व्यक्ति के लिए कतिपय योग्यताओं की चर्चा करता है । कुलार्णव तंत्र के अनुसार जाति व्यक्ति के लिए पाश है जिसे वह साधक बनकर काटता है ।[155] तंत्र सभी व्यक्तियों, जातियों और स्त्रियों के लिए है । तंत्र में गुरु को विशेष महत्व दिया गया है जो उसे आध्यात्मिक कल्याण के साथ-साथ बाह्य शक्तियों से सुरक्षित करता है ।[156] इस प्रकार तंत्र से निम्न एवं मध्यम वर्ग के लोगों की धार्मिक जिज्ञासा की पूर्ति होती है ।[157]

बाणभट्ट कादम्बरी में चण्डिका के मन्दिर और द्रविड़ पुजारी का जो वर्णन करते हैं । उसके अ तत्कालीन शाक्त सम्प्रदाय में तन्त्र के महत्व को स्वीकार किया जा सकता है । उसके अनुसार चन्द्रापीड जब उज्जयिनी के लिए विजय अभियान के मध्य से लौटता है तो उसे विन्ध्य के महावन में चण्डिका का मन्दिर दिखलाई देता

है । बाण मन्दिर के वर्णन में कहता है कि मन्दिर की चारदिवारी के अन्दर अंजन की काली शिला से निर्मित वेदिका पर लोहे का भैंसा बनाया गया था जिसका मुख देवी की ओर था । आँगन में जगह-जगह पुष्पों की ढेरियाँ लगी थीं । मन्दि के आँगन में बलि के कारण रक्त का फौव्वारा सा छूट रहा था । मन्दिर के गर्भगृह में पिण्डिकापीठ बना हुआ था । उस पर आलते में रंगे वस्त्र देवी के चरणों में चढ़ाए गये थे । गर्भगृह में जीव हिंसा के लिए फरसे, लोहदंड आदि शस्त्र टँगे हुए थे। देवी के गले में बिल्वपत्रों की लम्बी मालाएँ पहनाई गयी थीं । मालाओं में बेल के फल गूँथे गये थे मानों बालमुण्डों का प्रालम्ब हो । देवी के ललाट पर हेमपट्ट बँधा हुआ था । उसके नीचे शबरों की स्त्रियों ने सिन्दूर की लाल टिकुली लगा दी थी। पिण्डीपीठ पर देवी के चरणों के पास चढ़ाए हुए लाल वस्त्र मानों बलि किये हुए बालकों के मुण्डों की माला थी ।[158]

गर्भगृह में अनेक दीपक जल रहे थे जो महिषासुर के रक्त में सनी देवी की लाल अंगुलियों के समान प्रतीत हो रही थीं । देवी के दाहिने हाथ की अंगुलियाँ तर्जनकारिणी मुद्रा में थीं ।[159] मन्दिर के पुजारी के पास कपड़े की पट्टी पर दुर्गा जी का स्तोत्र लिखा हुआ था । उसके पास तालपत्र पर लिखी हुई जादू, टोने, तंत्र और मन्त्रों की पोथियों का संग्रह था । किसी वृद्ध महापाशुपत की बताई हुई महाकाल की पूजा की गुह्य पद्धति उसने अपने पास रख छोड़ी थी । गड़ा हुआ धन बताने का उसे व्यसन था । वह पारे से सोना बनाने की विधि जानता था । असुर-विवर में प्रवेश करने का उसे शौक था । यक्ष कन्या के साथ आलिंगन का नया झांसा उसे सताने लगा था । शरीर से अलोप होने के मन्त्रों का वह अपने पास अंबार बढ़ा रहा था । पिशाच चढ़े हुए लोगों का भूत उतारने के लिए पीली सरसों पढ़कर बार-बार उससे उन्हें मारता । पुजारी को अपने शैव होने का घमण्ड था । अपनी देश की भाषा में उसने गंगा की भक्ति का स्तोत्र बनाया था जिसे गाकर वह नाचा करता था । देवी पर अष्टपुष्पिका चढ़ाये जाने

का उल्लेख भी है । पुजारी स्त्रीवशीकरण के चूर्ण का प्रयोग भी करता था । मन्दिर के पास मातृभवनों का उल्लेख भी बाण ने किया है । पुजारी का शरीर सभी अंगों पर दीपक रखकर जाने से व्रणमय हो गया था ।[160]

बाण के द्वारा वर्णित चण्डिका मन्दिर और पुजारी की क्रियाओं से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं । देवी के जिस रूप का वर्णन किया गया है वह दुर्गा के महिषासुरमर्दिनी के स्वरूप का द्योतक है । शाक्त सम्प्रदाय में बलि-प्रदान करने की पुष्टि होती है साथ ही नर-बलि का भी प्रचलन होने का संकेत मिलता है । देवी को रक्तवस्त्र ही चढ़ाये जाते थे जो परम्परा समाज में आज तक विद्यमान है । बाण के द्वारा शबर स्त्रियों के उल्लेख से यह भी इंगित होता है कि इस प्रकार की देवी का पूजन आदिवासी समाज में अधिक प्रचलित थी । दशकुमारचरित से ज्ञात होता है कि देवी के अ मन्दिर में भील और किरात एकत्रित होकर एक बालक को विजयोपलक्ष्य में बलि चढाना चाहते थे ।[161] आदिवासियों के मध्य देवी के पूजन की लोकप्रियता की पुष्टि होती है ।

देवी की प्रसन्नता के लिए स्तोत्रों का पाठ किया जाता था और विभिन्न प्रकार के मन्त्रों-तन्त्रों का उपयोग भी किया जाता था । तन्त्र में कुछ पद्धतियाँ ऐसी होती थीं जो गोप्य रखी जाती थीं । बाण ने इसको "गुह्य पद्धति" कहा है। तान्त्रिकों के कार्यों का वर्णन करते समय बाण कहते हैं कि उन्हें गढ़े धन बताने, धातुवाद की क्रिया, यक्षिणी सिद्धि तथा झाड़-फूंक की क्रियायें करने में आनन्द का अनुभव होता था । उल्लेखनीय है कि यक्ष-यक्षिणी पूजा प्राचीन-काल से भारत में प्रचलित थी । मथुरा, पटना, बेसनगर से कई यक्ष-यक्षिणी की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं । साँची, बोधगया, भाजा में अश्वमुखी यक्षिणियों की प्रतिमाएँ देखी जा सकती हैं ।[162] बौद्ध साहित्य में भी यक्ष-यक्षिणियों की एक लम्बी सूची मिलती है । तृतीय शताब्दी के एक महत्वपूर्ण बौद्ध ग्रन्थ महामायूरी में यक्षों की एक लम्बी सूची और उनके

पूजा स्थलों का वर्णन किया गया है ।[163] गुप्त-काल में कालिदास ने मेघदूत में भी यक्षों का वर्णन किया है ।[164] जैन धर्म में भी यक्ष-यक्षिणियों की एक लम्बी परम्परा मिलती है ।[165] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि यक्ष-यक्षिणियों की पूजा की परम्परा हिन्दू, बौद्ध, जैन तीनों धर्मों में थी ।

बाण के उल्लेख से जो महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आता है वह गंगा की स्तुति का है । द्रविड पुजारी अपनी भाषा में गंगा की स्तुति करता है । इससे संकेत मिलता है कि बाण के समय सातवीं शताब्दी तक गंगा को देवी के रूप में मान्यता मिल चुकी थी । बाण के द्वारा मातृभवनों के उल्लेख से इंगित होता है कि शाक्त सम्प्रदाय में परम्परा से प्रचलित षोडश मातृओं की जो पूजा होती है संभवत: उसी से बाण का तात्पर्य रहा हो । शरीर पर दीपक रखकर जलाने की परम्परा को पाशुपत सम्प्रदाय के अनुयायियों द्वारा सिर पर गुग्गुल जलाने की प्रथा से समीकृत किया जा सकता है । ऐसा प्रतीत होता है कि शैव सम्प्रदाय की अनेक अतिवादी तान्त्रिक क्रियायें शाक्त सम्प्रदाय में भी अंगीकृत कर ली गयी थी । यह परम्परा उसी का उदाहरण मानी जा सकती है क्योंकि पुजारी स्वयं को शाक्त न कहकर शैव कहता है जिससे संकेत मिलता है कि शैव और शाक्त सम्प्रदाय में कोई विशेष भेद नहीं था । शैव सम्प्रदाय पुरुष शक्ति प्रधान धर्म था और शाक्त सम्प्रदाय नारी-शक्ति प्रधान था ।

इसके अतिरिक्त बाण ने हर्षचरित में शिव की पत्नी के रूप में उमा की वन्दना की है ।[166] बाणभट्ट शक्ति की उपासना में अलग से "चण्डीशतक" नामक एक कृति की रचना की थी जो उनके शाक्त होने का पुष्ट प्रमाण है ।[167] हर्षचरित में प्रभाकरवर्द्धन की रुग्ण अवस्था के समय भी आन्ध्र देश के पुजारी द्वारा भुजा उठा कर चण्डिका के लिए मनौती मानने का उल्लेख आता है ।[168] राज्यश्री के विवाह के अवसर पर इन्द्राणी की मूर्ति पूजा का वर्णन भी मिलता है ।[169] इसके अलावा जयन्ती और गौरी का उल्लेख भी बाण करते हैं ।[170] जिससे शाक्त धर्म के विकास

का ज्ञान होता है। चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार दुर्गा (शिव की रौद्र शक्ति) के उपासक अपनी समृद्धि और सुख के लिए नर-बलि दिया करते थे, ऐसी नरबलि देने वाले को चीनी यात्री ने डाकू कहा है।[171] विद्वान् इस घटना से ऐसा अनुमान करते हैं कि बाण के समय सातवीं शताब्दी ई0 में नर-बलि की प्रथा का प्रचलन था।[172]

कतिपय अभिलेखों से भी शाक्त-सम्प्रदाय के उत्कर्ष का प्रमाण मिलता है। नागार्जुनी गुहा अभिलेख संख्या दो (छठीं शताब्दी ई0 का पूर्वार्द्ध) में कात्यायनी की मूर्ति के निर्माण तथा भवानी के लिए ग्रामदान का उल्लेख आता है।[173] ऐसा प्रतीत होता है कि अभिलेख में एक ही देवी के लिए दो नामों का प्रयोग किया गया है। इसी अभिलेख में देवी द्वारा महिषासुर के सिर पर नूपुर की ध्वनि से युक्त पैर रखने का उल्लेख मिलता है।[174] इसी प्रकार उत्तरगुप्त वंश के कटरा भूमि दान पत्र में देवी चामुण्डा के मंदिर को तीन ग्राम दान देने का उल्लेख है।[175] इस प्रकार समवेत रूप से कहा जा सकता है कि शाक्त धर्म में प्रधान रूप से दुर्गा के महिषासुर-मर्दिनी रूप को विशेष मान्यता मिली थी जिसको शिव की रौद्र शक्ति के रूप में जाना जाता था। प्रारम्भ में संभवतः शाक्त-धर्म का प्रचार निम्न वर्ग एवं आदिवासियों में था किन्तु बाद में सामान्य जन के बीच भी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई जैसा कि अभिलेखों के विवरण से ज्ञात होता है।

सौर-सम्प्रदाय

सौर-सम्प्रदाय में सूर्य की उपासना की जाती है। यह उपासना भारत में प्राचीन काल से ही प्रचलित थी। बाण के पूर्व सूर्य के मन्दिरों का भी उल्लेख मिलता है। मन्दसौर के एक अभिलेख में (437 ईसवी) पट्टवाय श्रेणी द्वारा एक सूर्य मन्दिर के निर्माण का और सन् 473 ईसवी में उसके जीर्णोद्धार का उल्लेख मिलता है।[176]

बाण के साहित्य से सूर्योपासना पर यत्र-तत्र प्रकाश पड़ता है। सम्राट् हर्ष के पिता प्रभाकरवर्द्धन को आदित्य भक्त कहा गया है। बाण लिखता है कि वह राजा स्वभाव से ही सूर्य का भक्त था। प्रतिदिन सूर्योदय के समय स्नान करके, श्वेत वस्त्र धारण कर पूर्वाभिमुख होकर घुटनों के बल बैठकर थाल में कुंकुम से बनाए हुए सूर्यमण्डल में अर्घ्य देता था और आदित्य-हृदय मन्त्र का जप करता था।[177] उल्लेखनीय है कि वी०सी० श्रीवास्तव के अनुसार प्रारम्भ में सूर्य की पूजा नैसर्गिक रूप से होती थी।[178] जैसा कि बाण ने वर्णित किया है।

सम्राट् हर्ष के बाँसखेड़ा और मधुबन ताम्रपत्र अभिलेखों में प्रभाकरवर्द्धन को "परमादित्यभक्त" कहा गया है।[179] जिससे ऐसा संकेत मिलता है कि सूर्य की उपासना राजवंशों में भी यत्र-तत्र होती थी। जीवित गुप्त (द्वितीय) के देवबर्नाक अभिलेख (आठवीं शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध) से ज्ञात होता है कि भोजक सूर्य मित्र को वरुणवासि सूर्यमन्दिर के लिए बालादित्य के समय में एक ग्राम दान दिया गया था।[180] इस दान की मुख्य विशेषता यह है कि इसकी बार-बार पुष्टि मौखरि वंश के सर्ववर्मा, अवन्तिवर्मा और उत्तर गुप्त वंश के जीवितगुप्त द्वितीय के समय भी की गयी थी।[181] सर्ववर्मा ने दान को भोजक हंस मित्र को, अवन्तिवर्मा ने भोजक ऋषिमित्र को तथा जीवित गुप्त ने दुर्द्धरमित्र को प्रदान किया।[182] इस प्रकार सूर्य मन्दिर के लिए एक दान का बालादित्य (छठीं शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध) से प्रारंभ करके जीवितगुप्त द्वितीय (आठवीं शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध) के समय तक भिन्न-भिन्न राजवंश की पीढ़ियों से होता हुआ अक्षुण्ण बना रहा, जिससे कम से कम सूर्योपासना के विषय में लोगों की धारणा का पता लगाया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि इस अभिलेख में सूर्य की उपासना में लगे सभी व्यक्तियों को "भोजक" कहा गया है। हर्षचरित में बाण ने तारक नामक ज्योतिषी को भी "भोजक" कहा है।[183] भाष्यकार शंकर ने सूर्य की पूजा करने वाले भोजकों को मग कहा है।[184] कुछ विद्वान् शकों को भोजक मानते हैं।[185] वराहमिहिर के अनुसार सूर्य मन्दिरों और सूर्य मूर्तियों की प्रतिष्ठा एवं अभिषेक मगों द्वारा करवाया जाना चाहिए। इससे

यह इंगित होता है कि मग ब्राह्मण सूर्य के विशेष पुजारी थे ।[186] सूर्योपासना के विषय में कुछ विद्वान् मानते हैं कि सूर्य-पूजा भारत में प्राचीन पारसी मगों द्वारा लाई गयी । यह कहना कठिन है कि किसकी प्रेरणा से और किन परिस्थितियों में मग यहाँ आये ।[187] चीनी यात्री ह्वेनसांग ने कन्नौज में सूर्य मन्दिर का उल्लेख किया है ।[188] बाण के समकालीन मयूर कवि के द्वारा "सूर्यशतक" नामक स्तोत्र की रचना, तत्कालीन समाज में सूर्योपासना का एक पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करता है । इस प्रकार संभवतः स्वदेशी और विदेशी तत्वों से समन्वित सूर्योपासना सातवीं शताब्दी ईसवी में बाण के समय प्रचलित थी और अनेक राजवंश इस सम्प्रदाय के समर्थक थे ।

अन्य धर्म

हर्षचरित में बाण अन्य धर्म के अनुयायियों का भी जिक्र करते हैं । प्रभाकर-वर्द्धन की मृत्यु से दुःखी लोगों में "मस्करी" साधु होने का संकेत मिलता है ।[189] "मस्करी" साधु नियतिवादी होते थे । इसके अलावा सुख दुःख को एक समझने वाले "लोकायत" सम्प्रदाय की ओर संकेत किया गया है । लोकायत (चार्वाक) का उल्लेख दिवाकर मित्र के आश्रम में उपस्थित सम्प्रदायों की सूची में भी मिलता है ।[190] हर्ष को समझाकर उनके दुःख को कम करने वालों में पौराणिकों का उल्लेख किया गया है ।[191] दिवाकर मित्र के आश्रम में विभिन्न प्रकार के सम्प्रदायों के मध्य भी पौराणिकों का उल्लेख मिलता है ।[192] उल्लेखनीय है कि बाण के समय पुराण सुनने की परम्परा का समाज में प्रचलन था । बाण जब अपने गाँव सम्राट् हर्ष से मिलकर लौटता है तो गाँव में पुस्तक वाचक सुदृष्टि का वर्णन करता है जो वायु-पुराण की पुस्तक लेकर सुनाने की तैयारी में था ।[193] इसी प्रकार कादम्बरी में महाकाल का पूजन करने गई विलासवती के द्वारा "महाभारत" की कथा का श्रवण करने का उल्लेख भी मिलता है ।[194] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में इस प्रकार के कथाओं के सुनने का प्रचलन लोकप्रिय हो चुका था । कपिल मत के अनुयायी लम्बी जटा रखने

वाले होते थे । दिवाकर मित्र के आश्रम में भी इस मत के अनुयायी उपस्थित थे ।[195] इस प्रकार के साधु मोक्षमार्गी माने जाते थे । इसके अलावा कतिपय दार्शनिकों का उल्लेख बाण ने किया है जिनमें मीमांसक[196] (यज्ञवादी), धर्मशास्त्री[197], नैयायिक[198], वर्णी[199], वैयाकरण[200] आदि हैं । इस प्रकार बाण के समय विभिन्न धर्मावलम्बी और दार्शनिक समाज में प्रतिष्ठित थे जो उस समय के धार्मिक जीवन को प्रभावित करते थे ।

लोक-धर्म एवं विश्वास

बाण के हर्षचरित एवं कादम्बरी में कतिपय वर्णन ऐसे हैं जो समाज में प्रचलित लोक धर्म एवं विश्वास के प्रतीक माने जा सकते हैं । प्रसूतिगृह में किये जाने वाले कर्म लोक धर्म एवं विश्वास के प्रतीक ही हैं । कादम्बरी में बाण इस विषय में पर्याप्त प्रकाश डालते हैं । रानी विलासवती के पुत्र जन्म होने पर प्रसूतिगृह के दोनों द्वारों पर मंगल कलश रखे गये थे । बहुत से बच्चों से घिरी हुई बहुपुत्रिका नामक देवी की आकृति द्वार पर बनाई गयी थी ।[201] हर्षचरित में इसे जातमातृदेवता कहा गया है ।[202] इस देवी को बिल्ली की मुख वाली भी कहा गया है । कुछ विद्वान् इसका समीकरण चर्चिका देवी से करते हैं ।[203] सोने का बना मूसल और जुआ द्वार पर रखा था । बाघम्बर लटकाया गया था । लोकाचार में निपुण स्त्रियाँ द्वार के पक्षों पर गोबर से साथियों की भाँति बना रही थी जिन पर चित दाँव कौड़ियाँ लगाई जा रही थी । प्रसूति गृह में छठी देवी और मयूर पर बैठे कार्तिकेय की मूर्ति बनाई गयी थी । दोनों पार्श्वों में सूर्य और चन्द्र की आकृतियाँ बनाई गयी थी । द्वार के पास फूल मालाओं से अलंकृत वृद्ध बकरा बाँधा गया था । सूतिका गृह के भीतर श्वेत पलंग के सिरहाने अक्षत-चावल बिछाकर उनके ऊपर बीच में आर्यवृद्धा की मूर्ति स्थापित की गयी थी ।[204] विद्वान् आर्यवृद्धा का समीकरण लोकप्रचलित बीमाता से करते हैं जिसके विषय में मान्यता है कि बीमाता बच्चे को देखने छठी रात

में आती है। बच्चों के जन्म सम्बन्धी पूजा-पाठ में इसका विशेष स्थान है। प्राय: यह मूर्ति गोबर से बनती है और सायंकाल माता के सिरहाने पाये के पास चावल बिछाकर रखी जाती है।[205] इसके अलावा साँप की केंचुल और भेड़े के सींग अग्नि में जलाये जा रहे थे। नई चित्रित मातृपट की पूजा में धात्रियाँ लगी थीं।[206] मातृपट से तात्पर्य संभवत: मातृपूजन से है जो छठी के उत्सव का मुख्य अंग माना जाता है। इस प्रकार लोकप्रचलित मान्यता के अनुसार विभिन्न प्रकार के रक्षा-विधान प्रसूति गृह के लिए किये जाते थे जिनमें से अधिकांश आज भी समाज में प्रचलित हैं। इसके अलावा रक्षाकरंडक (ताबीज) पहने का उल्लेख भी मिलता है। लोकधर्म एवं विश्वास से सम्बन्धित अनेक क्रियायें जैसे कांटेदार शैय्या पर हरा कुश बिछाकर सोने का, कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में चौराहे पर महागारुड़िक द्वारा बनाये गये मंडल के बीच में बैठकर दिग्देवताओं को बलि प्रदान, मातृ भवनों में मातृ देवियों की पूजा, कौवा खिलाना, शुभाशुभ बताने वाली (विप्रश्निका) पर विश्वास, हाथ में राखी के साथ अभिमन्त्रित औषधि बांधना, रात में अंगालियों को मांसबलि देना, आदि का उल्लेख बाण ने विलासवती को पुत्र प्राप्ति की साधना के सन्दर्भ में किया है।[207] उल्लेखनीय है कि बाण ने जहाँ समाज में प्रचलित अन्धविश्वासों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।

हर्षचरित में यमपट्टिक के द्वारा यमलोक में मिलने वाली नरक यातनाओं का बखान कर रहा था।[208] दशकुमारचरित में भी नरक यातनाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है।[209] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में इस प्रकार के अन्ध-विश्वास पूर्णत: प्रचलित थे। हर्षचरित में बाण ने अपशकुनों की एक लम्बी सूची का उल्लेख भी किया है[210] जिससे ज्ञात होता है कि बाण के समय शकुन-अपशकुन की मान्यता समाज में फैली हुई थी। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि लोगों में अन्धविश्वास बढ़ता जा रहा था। धार्मिक पद्धतियों में सुधार की अनिवार्य आवश्यकता थी फलस्वरूप आठवीं-नवीं शताब्दी ईसवी में कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य जैसे महान् विभूतियों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने हिन्दू धर्म के अन्दर आवर्जनाओं

को दूर किया और समाज को एक नई दिशा प्रदान की ।

सन्दर्भ

1. चटर्जी, गौरी शंकर : हर्षवर्द्धन, पृ0 330.

2. हर्षचरित : 8, पृ0 417.

3. ह्वेनसांग के विवरण में प्राप्त संख्याओं का प्रयोग ही किया गया है । कहीं-कहीं उसने अमुक संख्या से अधिक शब्द का प्रयोग भी किया गया है ।

4. वाटर्स : ह्वेनसांग ट्रैवेल्स इन इण्डिया, 1, पृ0 314.

5. वही : पृ0 301.

6. वही : पृ0 318.

7. वही : पृ0 322.

8. वही : पृ0 351.

9. वही : पृ0 331.

10. वही : पृ0 313.

11. वही : पृ0 333.

12. वही : पृ0 340-43.

13. वही : पृ0 352-53.

14. वाटर्स : ह्वेनसांग ट्रेवेल्स इन इण्डिया, 1, पृ0 355.

15. वही : पृ0 359-60.

16. वही : पृ0 361-65.

17. वही : पृ0 365-72.

18. वही : पृ0 372-73.

19. वही : पृ0 373-74.

20. वही : पृ0 376-96.

21. बील, एस0 : रिकॅर्ड ।सी-यू-की। 2, पृ0 31-40.

22. वही : पृ0 44-49.

23. वही : पृ0 61-64.

24. वही : पृ0 66-75.

25. वही : पृ0 77-78.

26. वही : पृ0 82-95.

27. वही : 113-23.

28. वही : पृ0 149-153.

29. वही : पृ0 165-67.

30. वही : पृ0 186-87.

31. बील, एस0 : रिकॉर्ड (सी-यू-की) 2, पृ0 191-92.

32. वही : पृ0 193.

33. वही : पृ0 194-95.

34. वही : पृ0 195-98.

35. वही : पृ0 200-201.

36. वही : पृ0 201-04.

37. वही : पृ0 204-05.

38. वही : पृ0 206-07

39. वही : पृ0 209-14.

40. वही : पृ0 270-71.

41. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, 2, पृ0 246-47.

42. बील, एस0 : पूर्वोद्धरित, 2, पृ0 268.

43. हर्षचरित : 7, पृ0 359.

44. थपल्याल, के0के0 : इन्स्क्रिप्शन्स ऑव द मौखरीज लेटर गुप्ताज, पुष्यभूतिज एण्ड यशोवर्मन ऑव कन्नौज, पृ0 177, 182.

45. हर्षचरित : 8, पृ0 459.

46. यादव, बी0एन0एस0 : सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृ0 362.

47. कोंचे इडवर्ड : बुद्धिज्म आक्सफोर्ड 1953, पृ0 176.

48. कविराज गोपीनाथ : एस्पेक्ट्स आव इण्डियन थाट, पृ0175.

49. पाण्डे, जी0सी0 : बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 475.

50. हर्षचरित : 6, पृ0 318.

51. वही : 6, पृ0 321.

52. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 177, 182.

53. अग्रवाल, वासुदेव शरण : हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 194.

54. हर्षचरित : 8, पृ0 422-23.

55. वही : 8, पृ0 423.

56. पाण्डे, जी0सी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 116.

57. मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 834.

58. वही : 8, पृ0 423-24.

59. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 198.

60. हर्षचरित : 8, पृ0 424.

61. वही : 8, पृ0 425.

62. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 162.

63. बील : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 160.

64. वार्ट्स : पूर्वोद्धरित, 1, पृ० 342, 352.

65. वही : पृ० 377-80, पृ० 67.

66. कारपेन्टर : थीज्म इन मेडिवल इण्डिया, पृ० 106.

67. वही : पृ० 46,81

68. वही : पृ० 112.

69. वार्ट्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ० 170 से आगे

70. मजूमदार, आर०सी०।सं०।: एन एडवान्सड हिस्ट्री आँव इण्डिया, पृ० 201.

71. बील, एस० : पूर्वोद्धरित, 1, पृ० 233 और आगे ।

72. कारपेन्टर : पूर्वोद्धरित, पृ० 110, पा०टि० 5.

73. सरकार, एफ०के० : द फॉक एलीमेन्टस इन हिन्दू कल्चर, 1917, पृ० 169.

74. थपल्याल, के०के० : पूर्वोद्धरित, पृ० 177-182.

75. वही : पृ० 189.

76. वही : पृ० 189.

77. द्रष्टि हर्षचरित : 8, पृ० 422-23.

78. वही : 5, पृ० 301-302.

79. वही : 5, पृ० 301.

80. शास्त्री, नीलकण्ठ : नन्द मौर्य-युगीन भारत, पृ० 184.

81. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 109.

82. हर्षचरित : 5, पृ0 261-62.

83. वही : 2, पृ0 84,

84. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 109.

85. मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 809.

86. हर्षचरित : 5, पृ0 261-62
"विध्यानुत्सृज्य सेवा विमुक्ता:"

87. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 110.

88. बील, एस0 : पूर्वोद्धरित, 166-75.

89. वही : पृ0 194-95.

90. याजदानी, गुलाम (सं0) : दकन का प्राचीन इतिहास, पृ0 227.

91. एपिग्राफिया इण्डिका : भाग 6, पृ0 3.

92. याजदानी, गुलाम : पूर्वोद्धरित, पृ0 228.

93. एपिग्राफिया इण्डिका : 21, पृ0 204.

94. हर्षचरित : 8, पृ0 423.

95. वही : 5, पृ0 301.

96. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 107.

97. हर्षचरित : 5, पृ0 302.

98. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 111.

99. महाभारत, : शान्तिपर्व, 321.16-17.

100. भण्डारकर, आर0जी0 : वैष्णव, शैव एवं अन्य धर्म, (अनु0 उमाशंकर व्यास), वाराणसी 1978, भूमिका पृ0 12.

101. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 167

102. भण्डारकर, आर0जी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 56-57.

103. वही : पृ0 58.

104. वही : पृ0 56-60.

105. बनर्जी, राखालदास : द एज ऑव इम्पीरियल गुप्ताज का अनुवाद गुप्त-युग (अनु0 डॉ0 आनन्द कृष्ण) पृ0 80.

106. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, "बराबरगुहा अभिलेख" पृ0 133.

107. वही : अपसढ़ पाषाण अभिलेख, पृ0 160.

108. वही : देवबर्नार्क अभिलेख, पृ0 171.

109. एपि0 इण्डिका : 7, पृ0 161.

110. याजदानी, गुलाम : पूर्वोद्धरित, पृ0 228.

111. वही : पृ0 220.

112. मजूमदार, आर0सी0(सं0): पूर्वोद्धरित, पृ0 203.

113. हर्षचरित : 1, श्लोक 1.

114. कादम्बरी (पूर्व भाग) : श्लोक 1-2.

115. रत्नावली : प्रथम अंक, श्लोक 1-2.

116. प्रियदर्शिका : प्रथम अंक, श्लोक 1-2.

117. हर्षचरित : 7, पृ0 359.

118. वही : 3, पृ0 171.

119. अग्रवाल वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 19.

120. हर्षचरित : 1, पृ0 35.

121. वही : 3, पृ0 175.

122. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : प्रथम अंक, श्लोक प्रथम

123. भण्डारकर, आर0जी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 174.

124. हर्षचरित : 5, पृ0 263.

125. वही : 3, पृ0 171.

126. वही : 3, पृ0 175-76.

127. वही : 3, पृ0 165-66.

128. वही : 3, पृ0 175-76.

129. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ0 58.

130. हर्षचरित : पृ0 175-76, 263.

131. भण्डारकर, आर0जी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 194.

132. हर्षचरित : 3, पृ0 188.

133. वही : 3, पृ0 192.

134. बील, एस0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 161-62.

135. हर्षचरित : 5, पृ0 301-02.

136. वही : पृ0 301-02.

137. कादम्बरी ॥पूर्व भाग॥ : पृ0 139.

138. वही : पृ0 277.

139. हर्षचरित : 5, पृ0 265.

140. थपल्याल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, "हरहा पाषाण अभिलेख" पृ0 141.

141. वही : पूर्वोद्धरित, "नागार्जुनी गुहा लेख" संख्या एक, पृ0 135.

142. वही : पूर्वोद्धरित, "असीरगढ़ ताम्रमुद्रा लेख" एवं "नालन्दा मृण्मुद्रा लेख" पृ0 147, 152.

143. वही : पूर्वोद्धरित, "नालन्दा मुद्राभिलेख" एवं "सोहनाग मुद्रालेख", पृ0 152, 150.

144. वही : पूर्वोद्धरित, "हरहा पाषाण अभिलेख" पृ0 141.

145. थपल्याल, के०के० : पूर्वोद्धरित, पृ० 124.

146. वही : पूर्वोद्धरित, "बांसखेड़ा अभिलेख" पृ० 177, "मधुबन अभिलेख", पृ० 182.

147. हर्षचरित : 7, पृ० 361.

148. थपल्याल, के०के० : पूर्वोद्धरित, "मंगराव अभिलेख", पृ० 168.

149. वही : पूर्वोद्धरित, "कटरा ताम्रपत्र अभिलेख", पृ० 174.

150. याजदानी, गुलाम।सं०। : पूर्वोद्धरित, पृ० 228.

151. यादव, बी०एन०एस० : सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया, पृ० 363.

152. वही : पृ० 362.

153. भण्डारकर, जी०आर० : पूर्वोद्धरित, पृ० 221.

154. उडरफ, जान : इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्र शास्त्र, मद्रास, 1956. पृ० 77.

155. वही : पृ० 31, 79.

156. वही : पृ० 31, 66, 63.

157. वही : पृ० 55.

158. कादम्बरी।पूर्व भाग। : पृ० 455-58.

159. वही : पृ० 458-59.

160. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 459-63.

161. दशकुमारचरित : प्रथम उच्छवास, पृ0 27.

162. सिंह, अमरेन्द्र कुमार : प्राचीन भारतीय धर्म एवं कला में यक्ष, किन्नर और दिक्पाल, इलाहाबाद 1990, पृ0 44.

163. वही : पूर्वोद्धरित, पृ0 50.

164. मेघदूत : 1.3

165. सिंह, अमरेन्द्र कुमार : पूर्वोद्धरित, पृ0 56.

166. हर्षचरित : 1, श्लोक 2.

167. चण्डीशतक : श्लोक 1-2.

168. वही : 5, पृ0 263.

169. वही : 4, पृ0 242.

170. वही : 4, पृ0 230.

171. बील, एस0 : 1, पृ0 86.

172. त्रिपाठी, आर0एस0 : हिस्ट्री ऑव कनौज, पृ0 146, पा0टि0 1.

173. धमल्पाल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, "नागार्जुनी गुहा लेख सं0 2, पृ0 137.

174. वही : पृ0 137.

175. थपल्याल, के०के० : "कटरा ताम्रपत्र अभिलेख", पृ० 174.

176. राय, यू०एन० : गुप्त सम्राट और उनका काल, पृ० 631.

177. हर्षचरित : 4, पृ० 208.

178. श्रीवास्तव, वी०सी० : सन वरशिप इन एंशियन्ट इण्डिया, पृ० 273-74.

179. थपल्याल, के०के० : पूर्वोद्धरित, पृ० 177, 182.

180. वही : "देवबर्नार्क अभिलेख" पृ० 171.

181. वही : पृ. 171

182. वही : पृ. 171

183. हर्षचरित : 4, पृ० 218.

184. वही [भाष्य] : 4, पृ० 218.

185. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, पृ० 64, पा०टि० 3.

186. भण्डारकर, आर०जी० : पूर्वोद्धरित, पृ० 235.

187. वही : पृ० 236.

188. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ० 352-53.

189. हर्षचरित : 5, पृ० 303.

190. वही : 5, पृ० 303, 423.

191. हर्षचरित : 5, पृ0 303.

192. वही : 8, पृ0 423.

193. वही : 3, पृ0 146.

194. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 135.

195. हर्षचरित : 5, पृ0 303, 423.

196. वही : पृ0 303, 423.

197. वही : पृ0 303, 423.

198. वही : पृ0 303.

199. वही : पृ. 303

200. वही : पृ. 303

201. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 158-59.

202. हर्षचरित : 4, पृ0 220.

203. अग्रवाल, वासुदेव शरण : कादम्बरी, पृ0 83.

204. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 158-60.

205. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पूर्वोद्धरित, 1970, पृ0 86.

206. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 160.

207. वही :

208. हर्षचरित : 5, पृ0 264.

209. दशकुमारचरित : द्वितीय उच्छ्वास, पृ0 45.

210. हर्षचरित : 6, पृ0 356-57.

-------::0::-------

षष्ठ अध्याय

शिक्षा एवं साहित्य

शिक्षा एवं साहित्य

भारत में प्राचीन काल से शिक्षा का महत्व रहा है । शिक्षा के क्षेत्र में कतिपय परम्परागत विद्याओं का उल्लेख मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि इन विद्याओं का जीवन में कितना महत्व था । बाणभट्ट के पूर्व गुप्त काल के साहित्य में परम्परागत विद्याओं का उल्लेख मिलता है । कालिदास के रघुवंश के अनुसार परम्परागत विद्याओं की संख्या चौदह थी : चार वेद, छः वेदांग, मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र ।[1] वेदांगों में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष की गणना की गई है । इनके अलावा उपवेदों में धनुर्वेद, आयुर्वेद, और गान्धर्व वेद को गृहीत किया गया है । वात्स्यायन ने चौसठ विद्याओं का उल्लेख किया है जिनमें पुराण, इतिहास के साथ महाकाव्यों का भी अध्ययन सम्मिलित किया गया है ।[2] बाण ने हर्षचरित में लिखा है कि ब्राह्मण गुरु शिष्यों को वेद, व्याकरण, न्याय, मीमांसा, यज्ञ सम्बन्धी विद्या का निरन्तर पाठ करवाते थे । यज्ञ की अग्नि जला करती थी, अग्निहोत्र की क्रियायें सम्पन्न की जाती थीं ।[3] इसके अलावा कादम्बरी में राजकुमार चन्द्रापीड के लिए 45 विद्याओं की लम्बी सूची अध्ययन के लिए प्रस्तुत की गई है, जिनमें पद, (व्याकरण), वाक्य (पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा), प्रमाण (न्याय, वैशेषिक, सांख्य आदिदर्शनशास्त्र), धर्मशास्त्र, राजनीति, व्यायाम विद्या (मल्ल आदि), आयुधों का संचालन, रथचर्या, हाथी पर चढ़ने की, घोड़े की सवारी, वादन, नृत्य, गान्धर्ववेद, हस्तिशिक्षा, तुरंग शिक्षा, सामुद्रिक शास्त्र, चित्रकर्म, यन्त्रछेद्य, पुस्तक-व्यापार, लेख्य कर्म, द्यूत-कला, गन्ध शास्त्र, शकुनिरुत ज्ञान, ग्रहगणित, रत्न परीक्षा, दारुकर्म, दन्त-व्यापार, वास्तुविद्या, आयुर्वेद, यात्रा-प्रयोग, विषापहरण, सुरंगोपभेद, तरण, लंघन, प्लुति, इन्द्रजाल, कथा, नाटक, आख्यायिका, काव्य, महाभारत-पुराण-इतिहास, रामायण, सर्वलिपि, सर्वदेशभाषा, सर्वसंज्ञा, सर्वशिल्प, छन्द, आदि हैं ।[4] इसी प्रकार दण्डी के दशकुमारचरित में अनेक विद्याओं का उल्लेख किया गया है जिनमें काव्य, नाटक, आख्यायिका, आख्यानक, इतिहास, चित्रकथा सहित पुराणों की विज्ञता, धर्मशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, न्याय, मीमांसा, नीतिशास्त्र,

वाद्य कला, संगीत, साहित्य, मणि, मन्त्र, औषधि, माया-प्रपंचों में दक्षता, हाथी, घोड़े, रथादि पर सवारी करने की क्षमता, अस्त्र-शस्त्र संचालन, चोरी, जुआ, कपट कला, आदि हैं।[5] चीनी यात्री ह्वेनसांग ने पंच-विद्याओं को सबके लिए अनिवार्य बताया है। ये पंचविद्यायें - 1. व्याकरण या शब्द विद्या, 2. शिल्प स्थान विद्या, 3. चिकित्सा विद्या, 4. हेतु विद्या (तर्क अथवा न्यायशास्त्र), 5. अध्यात्म विद्या है। प्रत्येक बौद्ध आचार्य अथवा पंडित के लिए इन विद्याओं का जानकार होना आवश्यक बताया गया है।[6]

बाण के समकालीन दक्षिणी चालुक्य राजवंश के कतिपय अभिलेखीय प्रमाण भी इस प्रकार की परम्परागत विद्याओं का उल्लेख करते हैं। विजयादित्य के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि चौदह विद्याओं में पारंगत हजारों द्विज चालुक्यों की राजधानी वातापी की शोभा बढ़ाते हैं।[7] बादामी के एक अन्य अभिलेख से चार महाविद्याओं की अकादमी का उल्लेख प्राप्त होता है जिसमें दो हजार छात्र अध्ययनरत थे।[8] ऐसा प्रतीत होता है कि चौदह विद्याओं में चार वेद, छः वेदांग, पुराण, मीमांसा, न्याय और धर्मशास्त्र की गणना थी। चार महाविद्याओं में 'आन्वीक्षिकी' (दर्शन) त्रयी (वेद), वार्ता (अर्थशास्त्र) और दण्डनीति (राजनीति) का समायोजन रहा होगा।[9] इस प्रकार पारम्परिक विद्या में वेदों का अध्ययन, राजनीति, शिल्प, धर्मशास्त्र, दर्शन आदि का विशेष उल्लेख किया जा सकता है जो बाण के समय समाज में प्रचलित थे।

वैदिक शिक्षा सभी विद्याओं में मुख्य मानी जाती थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए इस शिक्षा का प्राचीन-काल से विशेष महत्व रहा है। गुप्तोत्तर काल के पश्चात् ऐसा लगता है कि समाज में सभी वेदों का अध्ययन-मनन की प्रक्रिया मन्द पड़ गयी। वेदों के आचार्यों ने वेदों के अंगों अथवा किसी एक वेद के अध्ययन की प्रक्रिया को प्रारम्भ किया। सम्राट् हर्ष के बांसखेड़ा और मधुबन ताम्रपत्र अभि-

लेखों में दान ग्रहीता ब्राह्मणों के वैदिक शाखाओं के चरण का उल्लेख किया गया है। बांसखेड़ा ताम्रपत्र अभिलेख[10] से ज्ञात होता है कि भट्ट बालचन्द्र का चरण बाह्वृच था जो ऋग्वेद से सम्बन्धित है और भट्ट भद्र स्वामी का छान्दोग्य चरण सामवेद से सम्बन्धित था। इसी प्रकार मधुबन ताम्रपत्र अभिलेख[11] में भी छान्दोग्य चरण (सामवेद) और वाह्वृच चरण (ऋग्वेद) का उल्लेख मिलता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में ब्राह्मण वैदिक वाङ्मय की किसी एक शाखा के ज्ञाता होते थे न कि सम्पूर्ण वैदिक साहित्य के। वेदों का सम्यक् अध्ययन करने लोग भी विद्यमान थे। हर्ष से बाण कहता है कि मैंने अंगों के साथ वेदों का सम्यक् प्रकार से स्वाध्याय किया है। अपनी शक्ति के अनुसार शास्त्रों का भी श्रवण किया है।[12] बाण का तात्पर्य संभवतः वेदों के छः अंगों शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, व्याकरण और ज्योतिष सहित वेदाध्ययन का है। ह्वेनसांग के अनुसार ब्राह्मण चारो वेदों का अध्ययन अध्यापन करते थे। वेदों के आचार्यों को सम्पूर्ण वेदों के ज्ञान में पारंगत होना आवश्यक था।[13] इस प्रकार बाण के काल में परम्परागत पद्धति के अनुसार षटांग वेदों का अध्ययन आवश्यक था किन्तु यत्र-तत्र वेदों की किसी शाखा विशेष के अध्ययन से ही कर्तव्य की पूर्ति कर ली जाती थी।

प्रारम्भिक शिक्षा के विषय में बाण के साहित्य से कोई प्रकाश नहीं पड़ता है। चीनी यात्री ह्वेनसांग इस विषय में कहता है कि बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा सात वर्ष की अवस्था में शुरू की जाती थी। वर्ण-परिचय कराने वाली पुस्तक को उसने "सिद्धम् चंग" कहा है। बौद्ध मतावलम्बियों की पुस्तक "सिद्धम्" कहलाती थी और ब्राह्मण धर्मावलम्बियों की पुस्तक "सिद्धिरस्तु" कही जाती थी। इसके अध्ययन का समय छः माह होता था।[14] ऐसा प्रतीत होता है कि वर्ण-परिचय घर पर ही बच्चों को कराया जाता था, तत्पश्चात् उन्हें गुरु के पास अन्य विद्याओं के अध्ययन के लिए भेजा जाता था। "सिद्धम्" की समाप्ति के पश्चात् सातवें वर्ष पंच विद्याओं का अध्ययन कराये जाने की बात ह्वेनसांग कहता है।[15] ईत्सिंग ने भी बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा "सिद्धिरस्तु" नामक पुस्तक से मानी है, जिसमें वर्णमाला, स्वर और

दर्शन का विनियोग था ।[16]

शिक्षा में लेखन उपकरण सभ्यता के उत्कर्ष के साथ परिवर्तित होते रहे । वैदिक काल में मौखिक शिक्षा दी जाती थी । बाण एक स्थान पर हर्षजात के वर्णन में संकेत देता है कि अर्धखण्डित इक्षु की लेखनी से लिखे गये एवं भौरों द्वारा पढ़े गये दान पट्टों से करपातियों के सभी जंगलों को मानों प्राप्त कर रहा था ।[17] बाण सुदृष्टि के वर्णन में पुस्तक का उल्लेख करता है जिसमें पन्नों को हल्की दफ्ती से बन्द किया गया था । यहाँ बाण मषी (स्याही) का उल्लेख भी करता है ।[18] कादम्बरी में द्रविड़ पुजारी का वर्णन करते हुए बाण लिखता है कि हरे पत्तों का रस मिली हुई कोयले की स्याही एक सीपी में उसके पास थी । कपड़े की पट्टी पर दुर्गा स्तोत्र लिखने, तालपत्र पर लिखी हुई पोथियों और आलता से लिखने का उल्लेख बाण करता है ।[19] इस प्रकार बाण के समय तक कोयले में पत्तों का रस मिलाकर स्याही, आलते को स्याही के रूप में प्रयोग किया जाने लगा था । लिखने के लिए कपड़े की पट्टी, तालपत्र, भोजपत्र, ताम्रपत्र आदि का उपयोग किया जाता था । जिससे संकेत मिलता है कि बाण के समय तक लेखन-कार्य विकास कर चुका था ।

प्राचीन भारत में वैदिक शिक्षा के अलावा संभवतः व्यावसायिक शिक्षा भी दी जाती थी । मनुस्मृति में वैश्यों को व्यापारिक उन्नति के लिए भौगोलिक ज्ञान, गणना सम्बन्धी ज्ञान, अन्य भाषाओं का ज्ञान तथा व्यापार सम्बन्धी बारीकियों के ज्ञान प्राप्त करने की ओर संकेत किया गया है ।[20] बाणभट्ट ने उज्जयिनी के वर्णन में वहाँ के व्यापारियों को सभी लिपियों, सभी भाषाओं का जानकार बताया है।[21] इससे ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि बाण के समय व्यापारियों को व्यावसायिक शिक्षा देने का प्रचलन रहा होगा । इस प्रकार की शिक्षा संभवतः श्रेणियों की ओर से सम्पन्न कराई जाती रही होगी । व्यावसायिक शिक्षा न केवल घरेलू कार्यों के लिए दी जाती रही होगी अपितु श्रेणी से सम्बद्ध व्यापारिक विकास के लिए भी रही होगी ।[22] शिल्पियों आदि में तकनीकी शिक्षा लोग शिल्पियों के घरों में

ज्येष्ठ जनों से सीख लेते थे ।[23] बौद्ध केन्द्रों पर कला एवं दस्तकारी की शिक्षा उप-लब्ध कराने की व्यवस्था थी ।[24]

अध्ययन के लिए छात्र प्रायः गुरु के पास जाता था । गुरु के निर्देशन में रहकर वेदादि विद्याओं का अध्ययन करता था । ऐसे स्थानों को गुरुकुल कहा जाता था । बाण ने हर्षचरित में इस प्रकार के गुरुकुल का वर्णन किया है । बाण के वंश के ब्राह्मण इस प्रकार के गुरुकुल चलाते थे । उसने अपने गाँव के गुरुकुल का सम्यक् चित्रण प्रस्तुत किया है जिसमें बटुकों के द्वारा वेदाध्ययन किया जाता था । वेद का निरन्तर पाठ होता था । अग्निहोत्र की क्रियायें सम्पन्न की जाती थीं । शास्त्रार्थ परम्परा का निर्वाह होता था । विभिन्न विषयों के अध्ययन की परम्परा अक्षुण्ण थी ।[25] गुरुकुल के अलावा कतिपय आचार्यों के निवासस्थान अध्ययनकेन्द्र के रूप में विद्यमान थे । हर्षचरित से ज्ञात होता है कि बाण ने स्वयं आचार्य कुल में रहकर पिता की मृत्यु के पूर्व अध्ययन किया था और स्नातक होने पर उसका समा-वर्तन संस्कार सम्पन्न हुआ था ।[26] आचार्यकुल के विषय में बाण लिखता है कि ब्राह्मणों के घर निरन्तर अध्ययन की ध्वनि से झंकृत हो रहे थे ।[27] पिता की मृत्यु के पश्चात् उसने अनिन्द्य विद्याओं के उज्ज्वल कीर्ति वाले गुरुकुलों में विद्या का सेवन किया और अपनी कुल परम्परा के योग्य विद्वान् बन गया ।[28] हर्षचरित में बाण ने लिखा कि स्थाण्वीश्वर नर्तकों (नर्तकों) के लिए संगीतशाला, विद्याप्राप्ति करने वालों के लिए "गुरुकुल" और शिल्प-शास्त्रज्ञों के लिए "विश्वकर्मा" का मन्दिर था ।[29] ह्वेनसांग के विवरण से भी नगरों में शिक्षा के विकास का संकेत मिलता है। कान्यकुब्ज के विषय में कहता है कि नगर निवासी विद्या और शिल्पों के अर्जन में संलग्न रहते थे ।[30] इसी प्रकार वाराणसी को वह विद्या का केन्द्र कहता है ।[31]

बाण के समय वैदिक ब्राह्मणों को गाँव दान में दिये जाते थे । हर्ष के बाँसखेड़ा और मधुबन ताम्रपत्र अभिलेख में भट्ट बालचन्द्र और भट्टभद्र स्वामी तथा

भट्टवात स्वामी एवं भट्ट शिवदेव स्वामी को दान देने का उल्लेख मिलता है ।[32] ऐसे अग्रहार ग्राम निश्चय ही अध्ययन अध्यापन के केन्द्र रहे होंगे । ह्वेनसांग एकान्त-वासी अध्ययनरत ऐसे विद्वानों का उल्लेख करता है जो नगर के शोरगुल से दूर मान-अपमान की भावनाओं से दूर रहकर जीवन यापन करते थे । राजा भी उनके जीवन चर्या में हस्तक्षेप नहीं करते थे और उन्हें दरबार में बुलाने की धृष्टता नहीं करते थे ।[33] ऐसे विद्वान् ब्राह्मणों के एकान्तवास से आश्रम परम्परा का विकास हुआ जो विद्या के केन्द्र के रूप में विकसित थे । बाण के साहित्य में दो प्रकार के आश्रमों का वर्णन उपलब्ध होता है । प्रथम ब्राह्मण परम्परा से संचालित आश्रम और द्वितीय बौद्ध परम्परा से संचालित आश्रम । बाण की कादम्बरी में ब्राह्मण परम्परा से संचालित जाबालि आश्रम का वर्णन है जिसके विषय में बाण कहता है कि कहीं ब्राह्मणों के बालक एक स्वर से पाठ का अभ्यास कर रहे थे । कहीं हवन कुण्डों में घी की आहुति दी जा रही थी । यज्ञविद्या की व्याख्या हो रही थी, धर्मशास्त्रों की मीमांसा हो रही थी, अनेक प्रकार की पुस्तकें पढ़ी जा रही थी, शास्त्रों के अर्थों पर विचार किया जा रहा था । कहीं मंत्र सिद्ध किये जा रहे थे, कहीं इष्टदेवताओं का ध्यान किया जा रहा था, कहीं योगाभ्यास किया जा रहा था ।[34] इस प्रकार आश्रमों का जीवन विद्या केन्द्रों के रूप में विकसित हुआ था जहाँ विद्यार्थी को आवास-भोजन आदि की भी सम्पूर्ण व्यवस्था उपलब्ध होती थी ।

बौद्ध आश्रम परम्परा में बाण ने हर्षचरित में दिवाकर मित्र के आश्रम का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है । दिवाकरमित्र के आश्रम में शिष्यभाव से अनेक देशों से आये लोग एकत्रित थे । वहाँ अनेक सम्प्रदाय के लोगों का भी बाण ने वर्णन किया है । लोग अपने-अपने आगमों का पूरी लगन के साथ श्रवण, मनन, आवृत्ति संशय, निश्चय, व्युत्पत्ति, विवाद और अभ्यास के द्वारा व्याख्यान कर रहे थे । वहाँ लोग चैत्यवन्दन कर्म में संलग्न थे, बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में लोग जाते थे, वसुबन्धुकृत अभिधर्मकोश और बुद्ध के दस शीलों के उपदेश दिये जा रहे थे । जातक

कहानियाँ सुनाई जा रही थी ।[35] इस प्रकार बौद्ध धर्म से अनुशासित आश्रम में बौद्ध धर्म की शिक्षाओं पर विशेष बल दिया गया था ।

परम्परागत आश्रमों के अतिरिक्त कभी-कभी राजाओं के द्वारा राजकुमारों की शिक्षा के लिए नये गुरुकुलों की भी व्यवस्था की जाती थी । कादम्बरी में चन्द्रापीड की शिक्षा प्राप्ति के लिए तारापीड ने शिप्रा नदी के तट पर ऐसे ही एक विद्यालय की स्थापना की थी जो चारों ओर से चहारदीवारी के समीप बनाई परिखा से आवेष्ठित था । उसमें एक देव-मन्दिर का भी निर्माण कराया गया था। इस प्रकार के विद्यालय में सभी प्रकार के आचार्यों को एकत्रित करने के लिए राजा ने विशेष प्रयत्न किये ।[36] इस प्रकार के नवनिर्मित गुरुकुल में चन्द्रापीड की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध किया गया था । राजाओं के द्वारा इस प्रकार के विद्यालयों को संभवतः वित्तीय सहायता भी प्रदान की जाती रही होगी ।

प्राचीन काल में शिक्षा केन्द्रों के अलावा बौद्ध मठ एवं विहार भी शिक्षा के केन्द्र के रूप में विकसित हुए । ह्वेनसांग इस प्रकार के अनेक मठों एवं विहारों का वर्णन करता है जहाँ बौद्धधर्म एवं दर्शन की शिक्षा दी जाती थी । कश्मीर की राजधानी में जयेन्द्र विहार का वर्णन करता है जहाँ उसने कुछ आचार्य से न्यायशास्त्र, हेतुविद्याशास्त्र का अध्ययन किया था । वह लिखता है कि वहाँ उसने बौद्ध पण्डितों से भेंट की जो अपने विषयों में सिद्धहस्त थे । कश्मीर को वह शिक्षा का केन्द्र कहता है ।[37] पंजाब एवं जालन्धर के विहारों में उसने अनेक विद्याओं का अध्ययन किया था । जालन्धर के नगरधन-मठ के आचार्य चन्द्रवर्मा से ह्वेनसांग ने त्रिपिटक का अध्ययन किया था । स्रुघ्न में वहाँ के प्रसिद्ध आचार्य जयगुप्त से त्रिपिटक आदि का अध्ययन किया था ।[38] मतिपुर के एक बौद्ध मठ में आचार्य मित्रसेन से ह्वेनसांग ने त्रिपिटक तथा अन्यान्य शास्त्रों का अध्ययन किया था ।[39] कन्नौज के भद्रक विहार में त्रिपिटकाचार्य वीरसेन से विभाषा आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया था ।[40] इसके अलावा वैशाली के श्वेतपुर मठ[41] गया के महाबोधि मठ[42] एवं सुवर्ण के रक्तविटमठ[43]

का भी उल्लेख शिक्षा केन्द्रों के रूप में करता है । मुंगेर के बौद्ध विहार में उसने आचार्य तथागत गुप्त और क्षान्तिसिंह से विद्या अध्ययन किया था ।[44] इस प्रकार ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि उत्तर में कश्मीर से लेकर पूर्व में बिहार तथा बंगाल तक, पश्चिम में वल्लभी और दक्षिण में कांची तक फैले बौद्ध अधिकांश मठ एवं विहार शिक्षा केन्द्रों के रूप में विकसित हो चुके थे ।

विश्वविद्यालय

यथातथ्य है कि इस काल तक बौद्ध धर्म के प्रसार के कारण संगठित शैक्षिक संस्थायें और कतिपय बौद्ध विहार विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हुए ।[45] इस प्रसंग में नालन्दा विश्वविद्यालय का उल्लेख किया जा सकता है जिसकी स्थापना गुप्त साम्राज्य के समय पाँचवीं छठी शताब्दी ईसवी में हुई थी ।[46] इस विश्वविद्यालय में शिक्षा का कार्य अत्यन्त सुचारू ढंग से सम्पन्न होता था । विश्वविद्यालय का प्रशासन शैक्षणिक और प्रशासनिक समितियों द्वारा संगठित किया जाता था । यहाँ पर भोजन एवं आवास की निःशुल्क सुविधा थी जिसका व्यय दान में प्राप्त गाँवों के आय से किया जाता था । इसमें बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्म के सभी विषयों का अध्ययन अध्यापन की सुविधा उपलब्ध थी ।[47] ह्वेनसांग इस विश्वविद्यालय के विषय में विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है । विश्वविद्यालय में अनेक विहारों का निर्माण किया गया था ।[48] विहारों में कुछ काफी बड़े और भव्य थे जिनके गगनचुम्बी शिखर अत्यन्त आकर्षक थे ।[49] विद्यार्थी छात्रावासों में रहते थे तथा प्रत्येक कोने पर कूपों का निर्माण किया गया था ।[50] शिक्षा-संस्था में प्रवेश के लिए कड़े नियम थे । प्रवेश के इच्छुक छात्रों को वाद-विवाद द्वारा शंकाओं का समाधान करना पड़ता था जिसमें कुछ ब ही विद्यार्थी सफल होते थे । यहाँ विभिन्न विषयों के अनेक विद्वान् रहते थे ।[51] ह्वेनसांग के समय यहाँ विद्यार्थियों की संख्या लगभग दस हजार थी ।[52] चीनी यात्री के समय यहाँ का प्रधान कुलपति शीलभद्र था जो विभिन्न विषयों में पारंगत था । यहाँ चीन, तिब्बत, कोरिया, तुखार आदि देशों के विद्यार्थी

विद्याध्ययन करते थे ।[53] यहाँ धर्मगंज नामक विशाल पुस्तकालय था जिसमें रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरंजक नामक तीन भवन थे जिसमें अध्ययनरत लोगों की भीड़ लगी रहती थी ।[54] इस प्रकार विश्वविद्यालयीय शिक्षा का प्रारम्भ बाण के समय की विशेषता थी ।

नालन्दा विश्वविद्यालय के अतिरिक्त बाण के काल सातवीं शताब्दी ईसवी तक काशी विश्वविद्यालय शिक्षा के प्रधान केन्द्र के रूप में विकसित हो चुका था । इस विश्वविद्यालय का स्वरूप प्रारम्भ में बौद्ध शिक्षा के रूप में था । ह्वेनसांग यहाँ सौ विहारों और 6,000 भिक्षुओं के होने का विवरण प्रस्तुत करता है । बौद्ध शिक्षा का प्रधान केन्द्र होने के कारण दूर दूर से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने आते थे।[55] बाण के बाद भी विश्वविद्यालय की परम्परा कायम रही । आठवीं शताब्दी ईसवी में पालवंशीय धर्मपाल के द्वारा भागलपुर से 40 किलोमीटर दूर विक्रमशिला विश्व-विद्यालय की स्थापना उच्च शिक्षा की एक कड़ी के रूप में की गई थी ।

शिक्षा के विकास में आचार्य और शिष्य की योग्यता का महत्वपूर्ण योगदान होता है । बाण के हर्षचरित में आचार्य कुल और गुरुकुल के आचार्यों के विषय में विशद वर्णन प्राप्त होता है । हर्षचरित में आचार्य कुल के आचार्यों के विषय में बाण लिखता है कि ब्राह्मण मृदुमुनि होते थे, कपट, कुटिलता से परे थे । दूसरे की निन्दा से पराङ्मुख थे, याचना वृत्ति को तिरस्कृत कर दिया था । सारे ग्रन्थों की ग्रन्थियाँ उन्होंने उद्घाटित की थी, विद्या में पारंगत थे ।[56] इसी प्रकार आश्रमों के प्रधान के रूप में जाबालि और अ दिवाकर मित्र के वर्णन में भी आचार्यत्व की योग्यता का परिचय बाण ने दिया है । जाबालि के विषय में बाण लिखता है कि वे आश्रम के प्रधान, स्वभाव से ब्राह्मणों के अधिपति, सत्यवादी, दीन, अनाथ, विपन्नों को शरण देने वाले थे । जाबालि सिद्धिमार्ग के उपदेशक, प्रज्ञाचक्र की नाभि सभी विद्याओं के तीर्थ, साधुता के जन्मस्थान तप के कोश, आर्जव के क्षेत्र और पुण्यों की उत्पत्ति स्थान थे ।[57] दिवाकर मित्र को बाण अवलोकितेश्वर के रूप में प्रदर्शित

करता है । उन्हें बाण वृद्ध से भी आदर पाने योग्य, धर्म से भी पूजित, ज्ञान के भी ज्ञेय, जप के जन्य, तपस्या के तत्व, सदाचार के निवास, सर्वज्ञता के सर्वस्व, दाक्षिण्य के दाक्ष्य कहा है ।[58] इस प्रकार बाण ने अपने साहित्य में आचार्य की योग्यता पर विशेष बल दिया है । चीनी यात्री ने विश्वविद्यालय के आचार्यों की योग्यताओं के विषय में कहता है कि वे सभी अपने-अपने विषयों में पारंगत थे ।[59]

विद्यार्थियों की योग्यता के विषय में बाण विशेष उल्लेख नहीं करता । चन्द्रापीड के विषय में कहता है कि आचार्यगण, चन्द्रापीड ऐसे सुपात्र शिष्य मिलने के कारण अत्यन्त उत्साही होकर शिक्षा प्रदान किया ।[60] ह्वेनसांग के अनुसार विद्यार्थियों के दो भेद थे, माणव और ब्रह्मचारी । माणव वे थे जो भविष्य में संघ की शिक्षा ले लेते थे और ब्रह्मचारी वे थे जो प्रव्रजित नहीं होना चाहते थे ।[61] ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में विद्यार्थियों की योग्यता के अनुसार कई श्रेणियाँ होती थी । नैष्ठिक ब्रह्मचारी को उत्तम विद्यार्थी माना गया है जो कभी विवाह नहीं करता था और अपने व्रत का पालन करके निरन्तर गुरु की सेवा में तत्पर रहता था और अत्यन्त दुर्लभ विद्या प्राप्त करके जीवन को सफल बनाता था ।[62] इस प्रकार समाज में आचार्य और शिष्य की योग्यता को विशेष महत्व दिया जाता था। ह्वेनसांग कहता है कि विद्यार्थी गुरु द्वारा माँगी गई दक्षिणा प्रदान करता था ।[63] पूर्वमध्यकालीन मानसोल्लास से भी ज्ञात होता है कि राजकुमार अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद आचार्य को वस्त्र, स्वर्ण, भूमि और कभी कभी गाँव दक्षिणा में प्रदान किया करते थे ।[64]

बाण के समय की शिक्षा की मुख्य विशेषता यह थी कि प्राचीन परम्परा से हटकर विश्वविद्यालयीय शिक्षा का विकास हुआ जो राजाओं, सामन्तों और धनी व्यापारियों के आर्थिक सहयोग से पुष्पित एवं पल्लवित हुए ।

साहित्य

शिक्षा के विशद वर्णन के पश्चात् आवश्यक है कि बाण के समकालीन साहित्य का विवेचन किया जाय जिससे समाज की साहित्यिक अभिरुचि का ज्ञान हो सके। बाण के पूर्व कालिदास ने गुप्त युग में जिस साहित्यिक सृजन का सूत्रपात किया था वह बाण के समय भी यत्र-तत्र उल्लेखों के साथ दिखाई पड़ता है। बाण के अपने साहित्य हर्षचरित और कादम्बरी के अलावा चण्डीशतक जैसी स्तुतिपरक रचनाओं से समाज की साहित्यिक अभिरुचि का ज्ञान तो होता है ही, साथ में अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं से समाज को नई दिशा प्रदान की।

काव्य

काव्य रचना के क्षेत्र में भारवि (500-550 ईसवी) का उल्लेख किया जा सकता है। जिन्होंने महाभारत पर आधारित "किरातार्जुनीयम्" नामक काव्य की रचना की। भारवि के पश्चात् भट्टि के भट्टिकाव्य का उल्लेख किया जा सकता है। भट्टि के अनुसार उन्होंने श्रीधर सेन द्वारा शासित वलभी में इस काव्य की रचना की। भट्टि का समय 610-15 ईसवी के आस-पास ठहरता है।[65] यह 22 सर्गों का महाकाव्य चार काण्डों प्रकीर्ण, अधिकार, सुबन्त और तिङन्त में विभाजित है। इसमें राम के जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। कुमारदास (517-26 ईसवी) के "जानकीहरण" में रामायण की कथा वर्णित है। यह 22 सर्गों का महाकाव्य है।[66] माघ का समय सातवीं शताब्दी ईसवी माना जाता है। इनका काव्य "शिशुपाल वध" 20 सर्गों में महाभारत की मूलकथा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ और कृष्ण के द्वारा शिशुपाल के वध का वर्णन करता है।[67] इस काव्य में राजनैतिक स्थिति, सेना-प्रयाण, गोष्ठियाँ, युद्ध-कला आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है।

नाटक

बाण के पूर्ववर्ती कवि के रूप में विशाखदत्त का उल्लेख किया जा सकता है।

इनका समय छठी शताब्दी ईसवी के उत्तरार्द्ध में मौखरि शासक अवन्तिवर्मा के काल में माना जाता है ।[68] विशाखदत्त के प्रसिद्ध नाटक मुद्राराक्षस की कथावस्तु ऐतिहासिक प्रतीत होती है । इसमें चाणक्य द्वारा नन्दवंश के उन्मूलन और चन्द्रगुप्त मौर्य के सिंहासनारोहण का विस्तृत विवेचन है । बाण के आश्रयदाता सम्राट् हर्ष (606 - 648 ई0) की तीन नाटिकाएँ भी साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं । उनके रूपक रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द हैं । "रत्नावली" चार अंकों की नाटिका है जिसमें उदयन और सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली की प्रेम कथा का वर्णन है । इसी प्रकार "प्रियदर्शिका" भी चार अंकों की नाटिका है जिसमें उदयन और दृढ़वर्मन की पुत्री प्रियदर्शिका की प्रणय कथा का वर्णन है । नागानन्द नाटक पाँच अंकों का है । इसमें जीमूतवाहन और मलयवती की प्रणय कथा और जीमूतवाहन द्वारा गरुड़ के सर्प भक्षण त्याग की त्यागमय कथा निबद्ध है । इस नाटक में बौद्ध धर्म की झलक मिलती है । हर्ष के पश्चात् भवभूति (700 ईसवी) के नाटक उत्तररामचरित, महावीरचरित और मालतीमाधव का उल्लेख किया जा सकता है ।[69] भवभूति के नाटकों से तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक विषयों पर प्रकाश पड़ता है । उत्तर रामचरित और महावीरचरित नाटक राम की कथा पर आधारित है जबकि मालतीमाधव में मार्मिक प्रणय कथा का प्रणयन किया गया है । आठवीं शताब्दी ईसवी में भट्टनारायण द्वारा लिखित "वेणीसंहार" नाटक छः अंकों में महाभारत की कथा को निबद्ध करता है ।

गीतिकाव्य

गीतिकाव्य के कवियों में भर्तृहरि को बाण के समकालीन माना जाता है । इनकी अन्तिम समय सीमा 651 ईसवी मानी जाती है ।[70] इनकी रचनाओं में नीतिशतक, शृंगारशतक और वैराग्यशतक को माना जाता है । इनकी रचनाओं से सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक विषयों पर प्रकाश पड़ता है । भर्तृहरि के बाद "अमरुशतक" का उल्लेख किया जा सकता है । इनकी कोई निश्चित तिथि नहीं है

किन्तु वामन (800 ईसवी) ने इनके पद्यों को उद्धृत किया है जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ये आठवीं शताब्दी ईसवी के पूर्व हुए थे ।[71]

गीतिकाव्यों की श्रेणी में धार्मिक गीतिकाव्यों की एक लम्बी परम्परा रही है । बाण ने "चण्डीशतक" नामक स्तोत्र की रचना करके इस परम्परा को आगे बढ़ाया । बाण के समय उनके श्वसुर मयूर ने गौड़ी शैली में "सूर्यशतक" की रचना की जिसमें सूर्य की स्तुति की गई है । विद्वानों का मत है कि बाण और मयूर में काव्य-रचना को लेकर प्रतिद्वन्द्विता रहती थी । मयूर ने कुष्ठ रोग से निवृत्ति के लिए जब "सूर्यशतक" की रचना की तो उनकी प्रेरणा से बाण "चण्डीशतक" को पद्यबद्ध किया। मयूर की दो और रचनाएँ बताई जाती हैं - मयूर शतक और आर्यामुक्तमाल । किन्तु विद्वान् ऐसा मानते हैं कि सूर्यशतक और मयूरशतक दो भिन्न रचनाएँ नहीं हैं अपितु दोनों एक ही रचना के नाम हैं ।[72] बाण का समकालीन मातंग दिवाकर नामक कवि था जिसके विषय में कीथ का मत है कि उसके कुछ ही श्लोक संस्कृत साहित्य में उपलब्ध हैं ।[73] इसी श्रेणी में सर्वज्ञमित्र और बौद्ध देवी तारा की स्तुति में "स्रग्धरा-स्तोत्र" भी उल्लेखनीय है ।[74]

ऐतिहासिक काव्य

बाण के हर्षचरित के बाद ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा की शुरुआत हो गयी किन्तु बाण के समकालीन किसी कवि ने ऐतिहासिक काव्य की रचना नहीं की बाण के बाद सबसे पहले वाक्पतिराज ने महाराष्ट्रीय प्राकृत में "गउडवहो" (गौड़-वध) की रचना की । वाक्पतिराज कन्नौज के राजा यशोवर्मा के आश्रित और भवभूति के समकालीन थे ।[75] विद्वानों का मत है कि 740 ईसवी में कश्मीर के राजा ललितादित्य द्वारा यशोवर्मा की मृत्यु हो गयी । संभवतः इसी घटना के कारण वाक्पति राज ने अपनी रचना को अधूरा ही छोड़ दिया । यदि इसे यशोवर्मा के मृत्यु के बाद की कृति माना जाय तो इसका समय 750 ई0 के आस-पास बैठता है ।[76]

गद्य काव्य

बाण हर्षचरित में "वासवदत्ता" का उल्लेख करते हैं ।[77] पी०वी० काणे के अनुसार सुबन्धु बाण के पूर्ववर्ती थे ।[78] बाण के पश्चात् गद्य-काव्य के क्षेत्र में दण्डी का उल्लेख किया जा सकता है । दण्डी ।सातवीं शताब्दी ईसवी का उत्तरार्द्ध और आठवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध। की प्रमुख दो रचनाएँ "काव्यादर्श" एवं "दशकुमार-चरित" हैं । "काव्यादर्श" अलंकार शास्त्र का ग्रन्थ है और दशकुमारचरित गद्य काव्य। दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका में 5 उच्छ्वास और उत्तरपीठिका में 8 उच्छ्वास हैं । इसमें तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण किया गया है । राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों पर इस ग्रन्थ से प्रकाश पड़ता है ।

व्याकरण

बाण के समकालीन भर्तृहरि ।मृत्यु 651। ईसवी। ने व्याकरण पर "वाक्यप्रदीय" नामक ग्रन्थ की रचना की । इसमें तीन काण्ड हैं, तीनों में कुल श्लोक संख्या 1964 है । कहा जाता है कि इन्होंने महाभाष्य पर "त्रिपदी" नामक टीका भी लिखी थी किन्तु इसका एक एक अंश ही अब बचा है जो बर्लिन के ग्रन्थागार में सुरक्षित है।[79] इस प्रकार बाण के समय व्याकरण सम्बन्धी रचनाओं से शिक्षा एवं साहित्य की उन्नति का आभास लगाया जा सकता है ।

चिकित्साशास्त्र

चिकित्सा के क्षेत्र में चरक और सुश्रुत के बाद वाग्भट नामक आचार्य का उल्लेख किया जा सकता है । इसका समय सातवीं शताब्दी ईसवी के मध्य कहीं ठहरता है। इनकी दो रचनाएँ "अष्टांगसंग्रह" और "अष्टांगहृदय संहिता" मानी जाती हैं ।[80] इसके अलावा "रसरत्नाकर" का उल्लेख किया जा सकता है जिसके लेखक नागार्जुन के नाम से विख्यात है । इसका समय 7-8 वीं शताब्दी ईसवी माना जाता है ।[81] इसमें पारे के प्रयोग का विस्तृत विवेचन किया गया है । आठवीं शताब्दी ईसवी में माधवकर ने "रुग्विनिश्चय" नामक ग्रन्थ लिखा ।

ज्योतिष

वराहमिहिर का आविर्भाव छठी शताब्दी ईसवी में हुआ । इनकी मृत्यु 587 ईसवी में हुई थी । इनका सिद्धान्त ज्योतिष सम्बन्ध ग्रन्थ "पंचसिद्धान्तिका" है । वराहमिहिर के बाद 748 ई0 के लगभग लल्ल ने "शिष्यधीवृद्धितन्त्र" नामक ग्रन्थ की रचना की । सातवीं शताब्दी ईसवी में ब्रह्मगुप्त द्वारा लिखित "ब्रह्म-स्फुटसिद्धान्त" और "खण्डखाद्यक" नामक ग्रन्थों का उल्लेख किया जा सकता है । फलित ज्योतिष में वराहमिहिर के पुत्र पृथुयशस् (600 ईसवी) ने "होराशत्पंचिका" नामक ग्रन्थ की रचना की ।

धर्मशास्त्र

बाण के समकालीन कुछ स्मृतियों की रचना भी की गई । नारद स्मृति को विद्वान् सातवीं शताब्दी ईसवी की रचना मानते हैं क्योंकि बाण इससे परिचित हैं । असहाय ने आठवीं शताब्दी में इस पर टीका लिखी थी ।[82] बृहस्पति स्मृति खण्डित अवस्था में ही उपलब्ध है । यह लगभग मनु पर एक वार्तिक है और उसकी पूर्ति करती है । इसका समय छठीं या सातवीं शताब्दी में रखा जा सकता है ।[83]

बौद्ध साहित्य

बाण के समय सातवीं शताब्दी ईसवी के आस-पास बौद्ध साहित्य का भी विकास हुआ । सप्तम शताब्दी में शान्तिदेव को माध्यमिक सिद्धान्त का प्रतिपादक माना जाता है । इनकी रचनाएं "बोधिचर्यावतार" तथा "शिक्षासमुच्चय" हैं । दिङ्नाग का समय कुछ लोग पाँचवीं शताब्दी मानते हैं और कुछ लोग 520 और 600 ईसवी के मध्य स्वीकार करते हैं ।[84] धर्मकीर्ति (छठीं या सातवीं शताब्दी ईसवी) ने "न्यायबिन्दु" नामक एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा । आठवीं शताब्दी में शांतरक्षित ने "तत्वसंग्रह" नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें "प्रतिद्वन्द्वी दार्शनिक सम्प्रदायों का खण्डन है ।

सन्दर्भ

1. रघुवंश : 5.17
2. कामसूत्र : 1.3, 1.15
3. हर्षचरित : 3, 143–44.
4. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 168–69.
5. दशकुमारचरित : प्रथम उच्छ्वास, पृ0 38–39.
6. वाटर्स : ह्वेनसांग ट्रेवेल्स इन इण्डिया, 1, पृ0 154–55.
7. पंचमुखी आर0एस0 : कर्नाटक इन्स्क्रिप्शन्स, पृ0 3.
8. वही : पृ0 9.
9. याजदानी, जी0 : दकन का प्राचीन इतिहास, पृ0 225.
10. अग्रवाल, के0के0 : इन्स्क्रिप्शन्स आफ द मौखरीज लेटर गुप्ताज, पुष्यभूतिज एण्ड यशोवर्मन आफ कन्नौज, "बांसखेड़ा ताम्रपत्र अभिलेख", पृ0 177.
11. वही : पूर्वोद्धरित, "मधुबन ताम्रपत्र अभिलेख", पृ0 182.
12. हर्षचरित : 2, पृ0 135.
13. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 159–60.
14. वही : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 154–55.

15. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 155.

16. रेकर्ड्स ऑफ द बुद्धिस्ट रिलीजन : पृ0 165.

17. हर्षचरित : 2, पृ0 113.

18. वही : 3, पृ0 146.

19. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 460-61.

20. दास, एस0के0 : द एजूकेशनल सिस्टम ऑफ द एन्शिएन्ट हिन्दूज पृ0 194.

21. कादम्बरी ।पूर्व भाग। : पृ0 113.

22. यादव, बी0एन0आर0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 403.

23. वही : पृ0 402.

24. वही : पृ0 402.

25. हर्षचरित : 3, पृ0 143-44.

26. कावेल एण्ड टॉमस : हर्षचरित, पृ0 32.

27. हर्षचरित : 2, पृ0 77.

28. कावेल एण्ड टॉमस : पृ0 33-34.

29. हर्षचरित : 3, पृ0 165.

30. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 340.

31. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 2, पृ0 47.

32. अग्रवाल, के0के0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 177, 182.

33. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 2, पृ0 160-61.

34. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 85-88.

35. हर्षचरित : 8, पृ0 422-24.

36. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 167.

37. बील, : पूर्वोद्धरित, पृ0 69-70.

38. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, 1, पृ0 318-19.

39. वही : पृ0 322-25

40. बील, : पूर्वोद्धरित, पृ0 77-80.

41. वाटर्स : पूर्वोद्धरित, 2, पृ0 79.

42. वही : पृ0 136.

43. वही : पृ0 191-92.

44. वही : पृ0 179-80

45. अल्तेकर, ए0एस0 : एजूकेशन इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृ0 115.

46. वही : पृ0 116.

47. वही : पृ0 266.

48. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 2, पृ0 164.

49. एपि0 इण्डिका : 20, 43.

50. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 2, पृ0 180.

51. वही : पृ0 165.

52. वही : पृ0 165.

53. वही : 2.165

54. वही : पृ0 160.

55. वही : 2, पृ0 246.

56. हर्षचरित : 1, पृ0 69-71.

57. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 91-99.

58. हर्षचरित : 8, पृ0 425.

59. वाटर्स : पूर्वो0 2, पृ0 165.

60. कादम्बरी (पूर्व भाग) : पृ0 168.

61. बील : पृ0 106-06.

62. हारीत स्मृति : पूर्वोद्धरित 3.13-15.

63. वाटर्स : पूर्वोद्धरित 1, पृ0 160.

64. मानसोल्लास : 84, पृ0 12.

65. कीथ, ए0बी0 : संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु0 मंगलदेव शास्त्री), पृ0 143.

66. वही : पृ0 146-47.

67. सूर्यकान्त : संस्कृत वाङ्मय का इतिहास, पृ0 186.

68. वही : पृ0 227.

69. वही : पृ0 230.

70. वही : पृ0 247.

71. वही : पृ0 249.

72. क्वाकेनवास : द संस्कृत पोएम्स ऑव मयूर (कोलम्बिया क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, कृष्णमाचार्य, पृ0 316-17.

73. कीथ, ए0बी0 : क्लासिकल लिटरेचर, पृ0 120-21.

74. सूर्यकान्त : पूर्वोद्धरित, पृ0 254.

75. राजतरंगिणी : पूर्वोद्धरित, पृ0 4/144.

76. सूर्यकान्त : पूर्वोद्धरित, पृ0 262.

77. हर्षचरित : 1, श्लोक.

78. काणे, पी0वी0 : कादम्बरी, भूमिका पृ0 178.

79. सूर्यकान्त : पूर्वो0, पृ0 322.

80. सूर्यकान्त : पूर्वो0, पृ0 334.

81. वही : पृ0 334.

82. कीथ, ए0बी0 : पूर्वोद्धरित, पृ0 561.

83. वही : पृ0 561.

84. वही : पृ0 402.

-------::0::-------

सन्दर्भ ग्रन्थ

सन्दर्भ-सूची

मूल-ग्रन्थ

अर्थशास्त्र : ।हिन्दी अनुवाद। वाचस्पति शास्त्री गैरोला, वाराणसी, 1978.

अमरकोश : सम्पादक - डॉ० सत्यदेव मिश्र, मलाया विश्वविद्यालय क्वालालम्पुर, मलेशिया, 1972.

अनेकार्थसंग्रह कोश : सम्पादक - जगन्नाथ शास्त्री होशिंग, वाराणसी-1969.

अभिज्ञानशाकुन्तलम् : सम्पादक - डॉ० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी, आगरा-1978.

आर्यमंजुश्रीमूलकल्प : सम्पादक - गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम्, 1925.

उत्तररामचरितम् : सम्पादक, - डॉ० लाल रमा यदुपाल सिंह, इलाहाबाद - 1989.

कादम्बरी : सम्पादक - काशीनाथ पाण्डुरंगपरब, नई दिल्ली-1985.

: एम०आर० काले, संस्कृत व्याख्या एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित ।पूर्वार्द्ध।, वाराणसी.

: चन्द्रकला विद्योतिनी टीका, वाराणसी.

कामसूत्र : सम्पादक - दुर्गा प्रसाद, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई.

कामन्दकनीतिसार : सम्पादक - आर० मित्र, बिब्लियोथिका इण्डिका, 1884.

कात्यायनस्मृति : सम्पादक - नारायण चन्द्र बंद्योपाध्याय, कलकत्ता, 1917.

काव्यमीमांसा : ।हिन्दी अनुवाद। डॉ० गंगा सागर राय, वाराणसी, 1964.

किरातार्जुनीयम् : मल्लिनाथ टीका सहित, बम्बई, संवत् 1981.

कुमारसंभवम् : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1927.

गौतम स्मृति : सैक्रेड बुक आॅव द ईस्ट, आक्सफोर्ड, 1897.

गौतम धर्मसूत्र : हरदत्त टीका सहित, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, 1910.

चण्डीशतक : सम्पादक - गोस्वामी कपिल देव गिरि, वाराणसी - 1983.

जातक : सम्पादक - फाउल्स बोल 1877-97 ।हिन्दी अनुवाद। भदन्त आनन्द कौसल्यायन.

दशकुमारचरित : ।हिन्दी अनुवाद। श्री केदार नाथ शर्मा, वाराणसी - 1978.

नारद स्मृति : सम्पादक - जौली, कलकत्ता 1885.

नागानन्द : ।टीका। बलदेव उपाध्याय, वाराणसी-1986.

पराशर स्मृति : बम्बई, 1911.

पारस्कर गृह्यसूत्र : गुजराती प्रेस संस्करण 1917.

पार्वती-परिणय : ।टीका। डाॅ0 रमापति मिश्र, वाराणसी-1984.

प्रियदर्शिका : ।हिन्दी अनुवाद। रामचन्द्र मिश्र, वाराणसी-1976.

बौधायन धर्मसूत्र : आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, 1910.

भागवत महापुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्वत् 2042.

मनुस्मृति : ।हिन्दी अनुवाद। रामेश्वर भट्ट, दिल्ली-1985.

मृच्छकटिक : एम0आर0 काले, वाराणसी-1972.

मुद्राराक्षस : सम्पादक - आर0के0 ध्रुव, पूना, 1930.

मालविकाग्निमित्र : सम्पादक - एस0 कृष्णराव, मद्रास 1930.

मानसोल्लास : गायकवाड ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा-1939.

महाभारत : गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 2044.

यशस्तिलक : सम्पादक - शिवदत्त, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई.

याज्ञवल्क्यस्मृति : संस्कृत व्याख्या - नारायण राम आचार्य, दिल्ली-1985.

रघुवंश : ।टीका। नारायण राम आचार्य, वाराणसी-1987.

रत्नावली : सम्पादक - डॉ0 बैजनाथ पाण्डेय, वाराणसी-1980.

वृहत् संहिता : सम्पादक - सुधाकर द्विवेदी, वाराणसी-1895.

वायु पुराण : सम्पादक - राजेन्द्र लाल मित्र, कलकत्ता-1880.

विष्णु पुराण : गीता प्रेस गोरखपुर सं0 2009.

विष्णुधर्मोत्तरपुराण : वेंकटेश प्रेस, बम्बई.

वृहस्पतिस्मृति : बड़ौदा-1941.

शिशुपाल वध : वेंकटेश प्रेस, बम्बई, सं0 1982.

शुक्रनीतिसार : ।अंग्रेजी अनुवाद। पी0के0 सरकार, इलाहाबाद-1923.

संस्कार-प्रकाश : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

स्वप्नवासवदत्तम् : ।हिन्दी-टीका। जगन्नाथ शास्त्री होशिंग, वाराणसी-1982.

हलायुध कोश : सम्पादक - जयशंकर जोशी, लखनऊ, 1967.

हर्षचरित : ।हिन्दी अनुवाद। आचार्य जगन्नाथ पाठक, वाराणसी, 1986.

: सम्पादक - काशीनाथ पाण्डुरंग परब, बम्बई-1912.

सहायक ग्रन्थ-सूची

अग्रवाल, वासुदेव शरण : हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना, 1964.

: कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वाराणसी, 1970.

अल्तेकर, ए0एस0 : एजूकेशन इन एंशियण्ट इण्डिया, वाराणसी-1948.

: प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, इलाहाबाद-1987.

उडराफ, जॉन : इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्र शास्त्र, मद्रास, 1956.

काणे, पी0वी0 : हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, पूना 1930.